

Volume 2, Issue 2, 2021

ISSN: 2322-0694

प्रलकीर्ति (Pratnakīrti)

(An-online half yearly peer-reviewed journal)

“प्रलकीर्तिमपावृणु”

Editors

Lala Shankar Gayawal

Priyavrat Mishra



Pratnakīrti Oriental Research Institute
Vārāṇasī, U.P., India

(Estd. 2004)

© Pratnakirti Oriental Research Institute

Shedule for papers

First issue deadline:	30 April
Information about acceptance/rejection	31 May
Publication	30 June
Second issue deadline:	30 September
Information about acceptance/rejection	31 October
Publication	31 December

Membership:

Annual Membership: Rs. 1000

Three year membership: Rs. 2500

Institutional: 5 Years Rs. 15000

Publisher:

Pratnakirti Oriental Research Institute

Phone: +91-9415697016

E-Mail: editor.pratnakirti@gmail.com

Website: <https://pratnakirti.com/index.eng.html>

Mailing Address:

Arazi No.-469, Satyam Nagar Colony

Bhagwanpur, B.H.U.

Varanasi, Uttar Pradesh, PIN-221005, India

Editorial Board

Editors in Chief

Lala Shankar Gayawal	R. D. Government. Girls P. G. Collage, Bharatpur, Rajasthan
Priyavrat Mishra	Adarsh Sanskrit P. G. College, Darbhanga, Bihar

Reviewers Committee

Bhagirathi Nand	Shri L. B. S. Central University, New Delhi
Saroj Kaushal	J. N. V. University, Jodhapur, Rajasthan
S. Prakash Chaudhary	Deptt. of Higher Education, Rajasthan
Pradeep Jain	Urdu Writer & Critic, Muzaffar Nagar, Uttar Pradesh
Pramod Bharatiya	Municipal P. G. College, Musoorie, Uttarakhand
Purnachandra Upadhyay	Government P. G. College, Bundi, Rajasthan
Pratap Kumar Mishra	Pratnakirti Oriental Research Institute, Varanasi, Uttar Pradesh

Editorial Board

Rakesh Dash	R.K. Mission Vivekanand Educational & Research Institute, Beluru, Kolakata, West Bengal
Nandighosh Mahapatra	Central Sanskrit University, Sadashiv Campus, Puri, Odisha
Ashutosh Pareek	S.P.R. Chauhan Govt. P.G. College, Ajmer, Rajasthan
Pankaja Ghai Kaushik	L. S. R. College for Women, Delhi University, Delhi
Ranjan Lata	D. D. U. University, Gorakhpur, Uttar Pradesh
Shaikh Abdul Ghani	Scholar of Sanskrit and Urdu, Bhongir, Telangana
Umesh Kumar Singh	School of Indic Studies, Institute of Advanced Sciences, Dartmouth, USA

सम्पादकीय

‘प्रलकीर्तिमपावृणु’ और ‘विश्वबन्धुत्वविस्तारकं संस्कृतम्’; संस्थान के इन ध्येय-वाक्यों को ध्यान में रख यह पत्रिका शोध के उन उदासीन पक्षों को विश्व-समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध है, जो वर्तमान की एक ‘प्रमुख’ ‘अनुपेक्षणीय’ माँग है। अनुसन्धान के प्रकार अनेक हैं पर शब्द-मर्यादा से अगर अनुसन्धान शब्द का अन्वाख्यान किया जाए तो वाङ्मय में निहित जो अनदेखी और अनसुनी बातें हैं उनका उद्धार करके समाज के सामने प्रस्तुत करना अनुसन्धान का प्रधान लक्ष्य है। इस परम्परा को ध्येय मानकर ‘प्रलकीर्ति’ प्रबुद्ध लेखकों को और सुधी पाठकों से आग्रह करती है कि पत्रिका के उद्देश्यों के अधधीन विषयों, वाङ्मयस्थ गुह्य विद्याओं को, टीका-सम्पत्ति को, अज्ञात लेखकों और उनकी कृतियों को ढूँढकर, उस अमूल्य निधि से विश्व-समुदाय का परिचय कराएँ जिससे प्राच्यविद्या के गौरव की अभिवृद्धि में भारतीय-मनीषा का योगदान प्रस्फुटित हो।

यह प्रसन्नता का विषय है कि इस अंक में इन तमाम बातों, तथ्यों और उद्देश्यों को ध्यान में रख; प्रबुद्ध लेखकों ने ऐसी गुणवत्तापूर्ण सामग्रियों का निर्माण किया है। इस अङ्क में संस्कृत, हिन्दी, तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में निबद्ध लेखों का संग्रह किया गया है। संस्थान के स्थापना-उद्देश्यों के अनुरूप संस्कृत-फ़ारसी तथा संस्कृत-उर्दू के भाषिक तथा साहित्यिक अन्तःसम्बन्धों पर प्राविधिक शोध एवं अनुसन्धान हेतु इस अंक में हमने एक उर्दू लेख भी समाहित किया था किन्तु पत्रिका की अन्ताराष्ट्रीय गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए जब इसे L^AT_EX की टाइपसेटिंग में ढालने का प्रयास किया गया तो बहुत प्रयत्नों के बाद भी अभी तक ऐसा कर पाना सम्भव नहीं हो पाया। आशा है कि आने वाले अंकों के लिए हम इस समस्या का समाधान ढूँढ सकेंगे। संस्कृत-फ़ारसी तथा संस्कृत-उर्दू दोनों ही भाषा समुच्चयों पर अधिकार रखने वाले सुधीजनों से आग्रह है कि वे उर्दू में लिखे लेख भी भेजें।

इस अंक में एक स्तम्भ और शुरू किया गया है - ‘वाकोवाक्यम् / बहसो मुवाहिस’ शीर्षक से। इसके अन्तर्गत ‘प्रलकीर्ति’ अथवा प्राच्यविद्या-विषयों या संस्कृत-विद्या से सम्बन्धित शोध-अनुसन्धान-परक अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्रियों पर लेखकों की स्वतन्त्र टिप्पणी, प्रतिटिप्पणी, वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर, साक्षात्कार आदि आमन्त्रित किए जाएँगे। इसी प्रकार जीवित या दिवंगत प्राच्यविद्या-सेवियों से जुड़े संस्मरण, उनकी शोध-अनुसन्धान-दृष्टि/कार्य-प्रविधि आदि से सम्बन्धित संस्मरणात्मक आलेख प्रकाशित किए जाएँगे।

‘कृति-परिचय/रिव्यू/समीक्षा’ शीर्षक स्तम्भ का उद्देश्य यद्यपि कि प्रकट है तथापि इस सन्दर्भ में हम ध्यान दिलाना चाहेंगे कि वर्तमान में प्रकाशित पुस्तकों पर ‘रिव्यू’ को ही हम हिन्दी में ‘कृति-परिचय’ के रूप में लेते हैं। ‘समीक्षा’ से हमारा आशय पुस्तक के गुण-दोष से लेकर उसकी प्रतिपाद्य-सामग्री के चातुर्दिक और सार्वभौम अध्ययन से है। इस रूप में संस्थान तथा पत्रिका के उद्देश्यों के अधधीन विषयों पर प्रकाशित वर्तमान पुस्तकों पर उपरिवत् ‘रिव्यू’ या ‘कृति-परिचय’ तथा ‘समीक्षा’ के रूप में सामग्री प्रकाशित की जाती है। इस अंक में हिन्दी से संस्कृत में अनूदित एक उपन्यास पर दो आलेख ‘कृति-परिचय’ के रूप में प्रकाशित किए जा रहे हैं।

सम्पादकीय

‘संस्थान की गतिविधियाँ’ शीर्षक में इस संस्थान से सम्बन्धित क्रिया-कलापों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस अंक में वर्ष 2021 ई० में संस्थान द्वारा सम्पादित शोध-अनुसन्धान, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

‘प्रकाशकीय’ स्तम्भ में ‘प्रत्नकीर्ति के लेखकों से अपील’ शीर्षक आलेख में संस्थान की दो बड़ी और महत्वाकांक्षी परियोजनाओं से इस पत्रिका को जोड़ा गया है। इसके अनुसार ‘प्रत्नकीर्ति’-पत्रिका में प्रकाशित शोध-अनुसन्धान-परक सामग्रियों को संस्थान के ‘संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास’ (लगभग 30 भागों में सम्पूर्ण) तथा ‘लौकिक-संस्कृत-साहित्य-विश्वकोष’ (लगभग 30 भागों में सम्पूर्ण) में किस प्रकार समाहित किया जा सकता है, या किया जा सकेगा और इस रूप में लेखकों को किन-किन बातों का ध्यान रख कर ‘प्रत्नकीर्ति’ हेतु आलेख तैयार करने हैं,.... इत्यादि से सम्बन्धित तथ्य विस्तार से बतलाए गए हैं। लेखक इस अपील को अवश्य पढ़ें और अपने आलेखों/शोधपत्रों द्वारा इन परियोजनाओं में सम्मिलित हों।

इस अंक-परक महायज्ञ में अनेक ऋत्विजों का परिश्रम सम्मिलित है। प्रथम तो समीक्षक-मण्डल के सभी आदरणीय सदस्यों का आभार, कि प्राप्त लेखों को गुणवत्ता के आधार पर प्रकाशन हेतु संस्तुत किया, पश्चात् सम्पादक-मण्डल के सभी सदस्यों का, कि बड़े परिश्रम से लेखों की भाषा, शैली, वर्तनी, प्रविधि आदि व्यवस्थित की। इस पत्रिका के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी सुधी-महानुभावों को सश्रद्ध स्नेहाञ्जलि प्रदान कर, अग्रिम अंक हेतु लेखकों का आह्वान करते हुए वाणी को यहीं विराम देते हैं।

31 दिसम्बर, 2021

लालाशंकर गयावाल
प्रियव्रत मिश्र

प्रकाशकीय 'प्रलकीर्ति' के लेखकों से अपील

1 परिचय

आदरणीय विद्वज्जन, 'प्रलकीर्ति-प्राच्य-शोध-संस्थान' के सम्मानित सदस्य-गण, 'प्रलकीर्ति'-पत्रिका के लेखक, प्राच्यविद्या एवं विषयों के अध्येता तथा सेवक-वृन्द!

विदित हो कि अपने स्थापन-वर्ष से ही यह संस्थान 'लौकिक-संस्कृतसाहित्य-विश्वकोश' के निर्माण हेतु प्रयत्नशील है और सीमित संसाधनों के बावजूद इस दिशा में कार्यरत है। इस कोश में लौकिक संस्कृत-साहित्य की समस्त दृश्य-श्रव्य-विधाओं, अंग-उपांगों समेत समग्र काव्य, छन्द एवं नाट्यशास्त्र, (रचनाकार एवं रचना), इन पर टीका, टीकाओं पर टीका, इनके आश्रयदाता आदि तथा इत्यादि से सम्बन्धित प्रविष्टियाँ संकलित की जानी हैं। संस्थान के दो सदस्यों के अथक परिश्रम स्वरूप आज तक इस विश्वकोष हेतु 5000 से अधिक प्रविष्टियाँ जुटाई जा चुकी हैं और अपनी प्रविधि में कार्ड-विधि द्वारा सुरक्षित एवं अद्यतन रूप में संकलित हैं।

प्रस्तुत विश्वकोश का निर्माण निम्नलिखित दो प्रविधियों के अन्तर्गत विचाराधीन है—

1. संस्थान इस परियोजना को अपने स्तर पर पूर्ववत् अपनी रूपरेखा, प्रविधि और संसाधनों के अन्तर्गत सञ्चालित करेगा और विश्वकोश का निर्माण करता रहेगा।
2. उपरिवत् किन्तु निम्नलिखित पृष्ठों पर अंकित नियमों के अनुरूप अनुकूल प्रविष्टियाँ (समय-समय पर संशोधित/परिमार्जित शोधपत्र/आलेखों से प्राप्त सामग्री) मिलने पर इन्हें विश्वकोश में समाहित किया जाएगा।

उपर्युक्त बिन्दु संख्या-2 के आलोक में; अब जबकि संस्थान एक नए स्वरूप में संगठित, पंजीकृत और स्वल्प ही सही; आंशिक संसाधनों से सज्जित है, समय आ गया है कि इसकी अन्यान्य परियोजनाओं में इसके विविध सदस्यों, 'प्रलकीर्ति'-पत्रिका के लेखकों को अनुरूप/अनुकूल अवसर दिया जाए। इसके अन्तर्गत यह संस्थान अपने समस्त विद्वान् सदस्यों तथा इस पत्रिका के लेखकों को यह सूचित करता है कि—

“वे अपने शोध-क्षेत्र के अनुरूप विधा/विषय के अन्तर्गत सम्बन्धित विधा/विषय/कवि अथवा उनके साहित्य आदि पर शोध-पत्र/आलेख के माध्यम से उपर्युक्त विश्वकोश के निर्माण में अपना योगदान दे सकते हैं।”

विद्वान् सदस्यों का यह योगदान संस्कृत-विद्या को उनका योगदान तो होगा ही स्वयं उनके भी यश और अर्थ; दोनों प्रकार के लाभ का कारण होगा। यश-लाभ पर विशेष नहीं कहना, अर्थ-लाभ के सन्दर्भ सूचित करना है कि —

प्रकाशकीय

“प्रलकीर्ति’-पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का उपयोग यदि ‘संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास’ और ‘लौकिक-संस्कृत-साहित्य-विश्वकोश’ तथा ‘विश्वकोश एप्’ में होता है तो इसका पारिश्रमिक (रॉयल्टी) तीनों स्तर पर पृथक्-पृथक्, भारत-सरकार एवं संस्थान के तत्कालीन नियमों के अनुरूप लेखकों को देय होगा।”

अधुना इस संस्थान के विद्वान् सदस्यों तथा सार्वभौम संस्कृत-सामज के व्यक्तिमात्र से यह प्रार्थना है कि उपर्युक्त के आलोक में और निम्नलिखित तथ्यों के सापेक्ष; अपने-अपने शोध-क्षेत्र के अनुरूप विधा/विषय के अन्तर्गत सम्बन्धित विधा/विषय/कवि/उनके साहित्य आदि पर शोध-पत्र/आलेख/सम्बन्धित-सामग्री प्रेषित कर इस बृहत्काय सारस्वत-यज्ञ की सम्पूर्ति में सहायक बनें।

2 प्रविधि

उपर्युक्त परियोजनाओं में सम्मिलित की जाने वाली प्रविष्टियाँ प्रथम स्तर पर ‘प्रलकीर्ति’ (ऑन-लाइन पीयर् रिव्यूड् जर्नल) में एक शोधपत्र/शोध-आलेख (कवि/कृति-परिचय, कवि/कृति-विवरण, कवि/कृति-विश्लेषण, कृतियों पर टीका, टीकाओं पर टीका, समीक्षा, आलोचना, तुलना, टिप्पणी, नोट, कवियों के आश्रयदाता आदि परक) के रूप में प्रकाश्य होंगी।

‘प्रलकीर्ति’ में प्रकाशित यह सामग्री कालान्तर में (सामग्री के मूल-लेखक या उसके अभाव में इस पर कार्य करने वाले सह-लेखक द्वारा) संशोधित/परिमार्जित अवस्था में ‘संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास’ में समाहित की जाएगी।

‘बृहद् इतिहास’ में प्रकाशित सामग्री कालान्तर में (सामग्री के मूल-लेखक या उसके अभाव में इस पर कार्य करने वाले सह-लेखक द्वारा) संशोधित/परिमार्जित अवस्था में ‘विश्वकोश’ में समाहित की जाएगी।

‘विश्वकोश’ में प्रकाशित सामग्री कालान्तर में (सामग्री के मूल-लेखक या उसके अभाव में इस पर कार्य करने वाले सह-लेखक द्वारा) संशोधित/परिमार्जित अवस्था में ‘विश्वकोश-एप्’ में समाहित की जाएगी।

इस प्रकार सम्मानित विद्वान् सदस्यों तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के विद्वानों का यह योगदान संस्थान की तीन विशिष्ट परियोजनाओं में शामिल की जाएँगी। अर्थात् विद्वानों का उपरिवत् एक योगदान (शोधपत्र/आलेख) संस्थान की तीन परियोजनाओं की पूर्ति में सहायता प्रदान करेगा। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है—

‘प्रलकीर्ति’-पत्रिका में सम्बन्धित विषय पर शोधपत्र/आलेख

↓

‘प्रलकीर्ति’ में प्रकाशित सामग्री का ‘संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास’ में उपयोग

↓

‘संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास’ में प्रकाशित सामग्री का
‘लौकिक-संस्कृत-साहित्य-विश्वकोश’ में उपयोग

↓

‘लौकिक-संस्कृत-साहित्य-विश्वकोश’ में प्रकाशित सामग्री का
‘लौकिक-संस्कृत-साहित्य-वेब-अप्लीकेशन’ में उपयोग

3 शोधपत्र/आलेख/सामग्री-निर्माण प्रविधि

संस्थान की षण्मासिक पत्रिका ‘प्रत्नकीर्ति’ प्राच्यविद्या, भाषा एवं विषयों पर गुणवत्तापूर्ण सामग्री प्रकाशित करने हेतु समर्पित है किन्तु इसमें प्रकाशित ‘संस्कृत-साहित्य’ से सम्बन्धित उपयुक्त सामग्रियों का उपयोग; उपर्युक्त परियोजनाओं के संचालन में किया जाना है। अतः लेखकों से निवेदन होगा कि यदि वह इन परियोजनाओं में सम्मिलित होने हेतु सामग्री भेज रहे हैं तो कृपया आश्वस्त हो लें कि—

1. इस प्रकार के किसी भी शोधपत्र/आलेख को लिखने से पूर्व कृपया यह सुनिश्चित कर लें कि यह शोधपत्र/आलेख निम्नलिखित (अगले पृष्ठों पर उल्लिखित) तथ्यों से अवगत हो कर लिखा गया है।
2. कि शोधपत्र/आलेख/प्रकाश्य-सामग्री की भाषा हिन्दी है। (संस्कृत, अंग्रेजी या उर्दू में प्राप्त सामग्री उपर्युक्त अथवा निम्नलिखित परियोजनाओं में शामिल नहीं की जाएगी। सामग्री के अनुवाद की दशा में अनुवादक को सह-लेखक/अनुवादक के रूप में रखा जाएगा।)
3. शोधपत्र/आलेख ‘प्रत्नकीर्ति’ में प्रेषित करने से पूर्व कृपया स्पष्ट शब्दों में लिखें कि शोधपत्र/आलेख निम्नलिखित में किस कालखण्ड हेतु भेजा जा रहा है—

- ❏ ‘ज्ञात एवं विश्लेषित कवि/साहित्य’ कालखण्ड हेतु
- ❏ ‘आधुनिक संस्कृत-कवि/साहित्य’ कालखण्ड हेतु
- ❏ ‘अद्यतन कवि/साहित्य’ कालखण्ड हेतु

4 कवियों का वर्गीकरण

हालाँकि ‘संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास’ शीर्षक संस्थान की परियोजना में संस्कृत-साहित्य के काल और इनके कवियों का वर्गीकरण कई रूपों और सम्प्रत्ययों में किया गया है किन्तु यहाँ उनका उल्लेख न करते हुए लेखकों की सुविधा हेतु सरलीकृत वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है (प्राप्त प्रविष्टियों को विविध परियोजनाओं के सम्पादक उन-उन कालखण्डों और वर्गों में समाहित कर लेंगे)-

4.1 ज्ञात एवं विश्लेषित कवि : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

1. प्राचीन एवं मध्यकालीन ऐसे कवि एवं उनका साहित्य, जिन पर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने असुन्धान-परक निष्कर्ष स्थापित किए हैं और यह निष्कर्ष विश्व-स्तर पर मान्य हैं; अथवा प्रारम्भिक अनुसन्धान किए हैं और तथ्य किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा,

प्रकाशकीय

विवादित रहा, या अग्रिम अध्ययन की अपेक्षा रखता है;- ऐसे कवि और उनके काव्य से सम्बन्धित डाटा उपर्युक्त विद्वानों के प्रकाशित सामग्रियों और इन पर अद्यतन अध्ययनों से एकत्रित की जाएगी।

2. प्राचीन एवं मध्यकालीन ऐसे कवि जिन पर और जिनके साहित्य पर अध्ययन/विश्लेषण नहीं हुआ है उन पर सम्बन्धित क्षेत्र के विद्वानों से तत्परक अध्ययन/शोध/निष्कर्ष आमन्त्रित किए जाएँगे/ किए जाने हैं।
3. इसके अलावा ऐसे प्राचीन एवं मध्यकालीन कवियों और उनकी रचनाओं पर संस्थान के विविध-सदस्यों, पत्रिका के लेखकों से विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं। इन आलेखों को 'शोध-पत्र' के रूप में प्रथमतः 'प्रलकीर्ति'-पत्रिका में प्रकाशित किया जाएगा।
4. 'प्रलकीर्ति' में प्रकाशित इन शोधपत्रों पर सार्वजनिक संस्कृत-क्षेत्र से प्राप्त समीक्षा/आलोचना/टिप्पणी-आदि परक विचारों के सापेक्ष इन शोधपत्रों को संशोधित/अद्यतन कर 'संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास' (संस्थान की एक महत्वाकांक्षी पूर्व परियोजना) के सम्बन्धित भाग तथा खण्ड में इसी विद्वान् के नाम से समाहित कर दिया जाएगा।
5. 'संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास' के सम्बन्धित भाग/खण्ड में समाहित इस आलेख को पुनः संशोधित/अद्यतन और प्रविधियों से सुसंस्कृत कर उपर्युक्त 'विश्वकोश' में प्रकाशित किया जाएगा।
6. 'विश्वकोश' में प्रकाशित यह सम्बन्धित आलेख पुनः 'विश्वकोश-एप्' में समाहित कर पश्चात् वेब-साइट पर प्रकाशित किया जाएगा।
7. उपर्युक्त समस्त रूपों में प्रकाशित शोध-सामग्री/शोध-आलेख; उसी विद्वान् के नाम से प्रस्तुत किया जाता रहेगा जिसके द्वारा सामग्री प्रथमतः 'प्रलकीर्ति'-पत्रिका में लिखी/प्रकाशित की गई थी। लेकिन शर्त यह होगा कि-

सम्बन्धित विद्वान् प्रत्येक चरण में-

1. यदि आवश्यक प्रतीत हुआ और 'प्रलकीर्ति'-पत्रिका के सम्पादक-मण्डल/रिव्यूवर्स सम्बन्धित प्रकाश्य सामग्री में अपेक्षित संशोधन का सुझाव देते हैं तो लेखक उन सुझावों के आलोक में सामग्री प्रस्तुत करेगा।
2. 'संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास' के सम्बन्धित भाग तथा खण्ड के सम्पादकों द्वारा इस सामग्री को उपर्युक्त ग्रन्थ/भाग/खण्ड में प्रकाशित करने से पूर्व यदि 'प्रलकीर्ति' में प्रकाशित इस आलेख पर समय-समय पर सार्वजनिक संस्कृत-समाज द्वारा उठाई गई आपत्तियों/आलोचनाओं/टिप्पणियों आदि के मद्देनज़र; और-
3. 'संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास' की प्रविधियों के अनुरूप इसे संशोधित/परिमार्जित करने का सुझाव देते हैं तो विद्वान् लेखक इन सुझावों और प्रविधियों के अनुरूप सामग्री पुनः प्रस्तुत करेगा।
4. 'संस्कृत-साहित्य का बृहद् इतिहास' के सम्बन्धित भाग/खण्ड में प्रकाशित सामग्री को 'लौकिक-संस्कृत-साहित्य-विश्वकोश' में प्रकाशित किए जाते समय 'विश्वकोश' के सम्पादक-मण्डल द्वारा सुझायी गई प्रविधियों के अनुरूप प्रकाश्य सामग्री को विद्वान् लेखक तद्वत् पुनः प्रस्तुत करेगा।

अन्यथा की दशा में—

1. यदि विद्वान् लेखक अपनी पूर्व प्रकाशित सामग्री को समय-समय पर और सम्बन्धित परियोजनाओं (बृहद् इतिहास, विश्वकोष, वेब-एप्) के सम्पादकों के सुझावों के अनुरूप संशोधित नहीं करता/ किन्हीं कारणों से संशोधन हेतु उपलब्ध नहीं होता तो ऐसी प्रविष्टियों (कवि, रचना आदि) को प्रथम उपर्युक्त विद्वान् के नाम से और पुनः इन प्रविष्टियों पर कार्य करने वाले अन्य विद्वानों के नाम से संयुक्त रूप में प्रकाशित किया जाएगा।
2. उपरिवत् संशोधित/परिमार्जित प्रविष्टियों के बावजूद यदि सम्बन्धित परियोजनाओं के सम्पादक/सम्पादक-मण्डल को उचित प्रतीत हुआ तो वह/वे इन प्रविष्टियों में अन्य बौद्धिक उपलब्धियों (सम्बन्धित विषय/क्षेत्र के विद्वानों के कर्तृत्व/विचार/निष्कर्ष आदि) को उचित प्रविधि के अन्तर्गत प्रकाशित कर सकेंगे। किन्तु मूल प्रविष्टि के लेखक का नाम यथावत् अंकित करेंगे।

4.2 आधुनिक संस्कृत-कवि : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

सम्बन्धित तथ्य पर दृष्टि की भिन्नता हो सकती है, किन्तु इन परियोजनाओं के संचालक की अपनी मान्यता है कि 'आधुनिक-संस्कृत-साहित्य' के परिसीमन का अंतिम दौर 1857-1947 ई. है।

इस कालखण्ड में हुए और वर्तमान संस्कृत-कवियों और उनके साहित्य पर प्रविष्टियों से सम्बन्धित नीति-नियम उपरिवत् 'ज्ञात एवं विश्लेषित कवि- व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' में विवेचित नीति-नियमों के अनुरूप ही होंगे किन्तु उनके अतिरिक्त कुछ आवश्यक बिन्दु और ध्यातव्य होंगे—

1. इस कालखण्ड के कवियों के कर्तृत्व पर प्रविष्टियाँ लिखे जाते समय किसी कृति का सांगोपांग विश्लेषण; समसामयिक राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रीय, सामाजिक/नैतिक/ राजनैतिक/धार्मिक/आर्थिक/ परिस्थितियों/मुद्दों/समस्याओं आदि के समानान्तर किया जाना चाहिए।
2. समसामयिक परिस्थितियों से कृति के प्रभावित होने की दशा में सम्बन्धित तथ्य पर कवि की दृष्टि/योगदान/प्रभाव आदि का स्पष्ट (सकारात्मक या नकारात्मक) मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
3. समसामयिक परिस्थितियों से कृति के प्रभावित न होने की दशा में, या इनसे इतर विषयों पर कृति के अवस्थित होने पर कवि के देश-काल-परिस्थितियों और उपर्युक्त सामयिक मुद्दों के आलोक में कृति का स्पष्ट (सकारात्मक या नकारात्मक) मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
4. उपर्युक्त रूप में कृति के मूल्यांकन से प्राप्त निष्कर्षों द्वारा सम्बन्धित कृति का संस्कृत-साहित्य के इतिहास में स्थान/मूल्य/महत्त्व/योगदान का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में अंकित किया जाना चाहिए।

प्रकाशकीय

5. कलात्मक पक्षों (भाषा/शैली/छन्द-विशेष/प्रयोग-विशेष आदि) पर केन्द्रित कृतियों के विश्लेषण के समय देश-काल-परिस्थितियों से इन पक्षों की सापेक्षता, आवश्यकता, उद्देश्य आदि पर पैनी नज़र रखते हुए कृति का स्पष्ट (सकारात्मक या नकारात्मक) मूल्यांकन किया जाना चाहिए और इस मूल्यांकन से प्राप्त निष्कर्ष के आलोक में कृति का संस्कृत-साहित्य के इतिहास में स्पष्ट स्थान/मूल्य/महत्त्व/योगदान दर्शाना चाहिए।

4.3 अद्यतन कवि : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

इस कालखण्ड का परिसीमन 1948 ई० से लेकर आज के दिनांक तक है। इस कालखण्ड में हुए और वर्तमान संस्कृत-कवियों और उनके साहित्य पर प्रविष्टियों से सम्बन्धित नीति-नियम उपरिवत् 'ज्ञात एवं विश्लेषित कवि : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' तथा 'आधुनिक संस्कृत-कवि: व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' में विवेचित नीति-नियमों के अनुरूप ही होंगे किन्तु उनके अतिरिक्त कुछ आवश्यक बिन्दु और ध्यातव्य होंगे—

1. शोध-पत्र/आलेख या किसी भी रूप में लिखित प्रकाश्य सामग्री में विवेच्य कवि को प्राप्त/उपलब्ध पुरस्कार/पुरस्कारों, सम्मान आदि का विवरण प्रस्तुत न किया जाए। यदि पुरस्कारों के उल्लेख बिना कवि का कवित्व या उसकी लोक-स्वीकार्यता स्थापित न हो पा रही हो तो एक पंक्ति में 'विविध पुरस्कारों से पुरस्कृत' इस वाक्यांश को वाक्य में समाहित कर काम चलाया जाना चाहिए।
2. यह ध्यातव्य है कि भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा ने हर युग में कविता की परिभाषा की, गुणवत्ता के आधार पर उसके भेद-प्रभेद गिने किन्तु पिछली तीन हज़ार वर्षों की इस परम्परा ने कहीं भी यह नियम नहीं बनाया कि किन परिस्थितियों में 'कविता' को 'कविता' नहीं कहेंगे।
3. इसका एकमात्र कारण कविता का 'सहृदय-संवेद्य' होना है जो भाषा, शैली और प्रविधि के सभी मानकों को तोड़ कर; चंद उन पंक्तियों को भी 'कविता' का दर्जा दे देता है जो काव्यशास्त्रीय नियमों में 'कविता' नहीं कहे जा सकते। ऐसी कविताओं के 'कविता' होने की भी अपनी एक अलग प्रविधि होती है और यह प्रविधि समय की अपेक्षा रखती है। ऐसी कविताएँ जन-मानस में एक लम्बे समय तक जीवित और समाहृत रहती हैं।
4. इन तथ्यों के आलोक में 'अद्यतन कवि, व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' पर आलेख/प्रविष्टियाँ लिखे जाते समय उपर्युक्त समस्त नीति-नियम अपनाए जाँएँगे, सिवाय इसके कि—

- ❖ 1970 ई० तक प्रकाशित कवि/कृतियों से सम्बन्धित आलेख/प्रविष्टियाँ 'बृहद् इतिहास' तथा 'विश्वकोश' परियोजनाओं में समाहित की जाएँगी।
- ❖ 1970 ई० के बाद प्रकाशित कवि/कृतियों से सम्बन्धित आलेख/प्रविष्टियाँ 'प्रत्न-कीर्ति' में केवल लेख की तरह प्रकाशित होंगी।
- ❖ इन्हें 'संस्कृत साहित्य के बृहद् इतिहास' में दर्ज नहीं किया जाएगा।
- ❖ इन्हें 'लौकिक संस्कृत-साहित्य-विश्वकोष' में दर्ज नहीं किया जाएगा।

प्रकाशकीय

यह (उपर्युक्त) अपूर्ण सारस्वत-यज्ञ आगे आने वाली संस्कृत-पीढियों के लिए छोड़ा जाएगा कि वह स्वयं अपनी युगीन परिस्थितियों, जीवन और तत्सम्बन्धी मूल्यों के सापेक्ष और मानकों के अनुरूप उस काल तक बची और बच रही कविताओं पर कार्य करे।

अस्तु, आशा है संस्थान के सदस्य, 'प्रत्नकीर्ति'-पत्रिका के विद्वान् लेखक उपर्युक्त तथ्यों से भली-भाँति परिचित हो कर सम्बन्धित परियोजनाओं हेतु अपने आलेख प्रस्तुत करेंगे। इस क्रम में; उपर्युक्त परियोजनाओं से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के शंका-समाधान हेतु लेखक संस्थान से या अधोहस्ताक्षरी से सम्पर्क कर सकते हैं।

31 दिसम्बर, 2021

प्रताप कुमार मिश्र
सचिव; प्रत्नकीर्ति

विषय सूची

सम्पादकीय	I
प्रकाशकीय	i
शोधलेख	1
भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च	1
राहुलमाझिः	
पण्डित प्रेमनारायण द्विवेदी की साहित्य-सम्पदा	15
नौनिहाल गौतम	
A Biographical Study on the Forgotten Sanskrit Scholar: Baboo Krishnanandan Singh.....	28
Amit Kumar Chandrana	
Characteristics of Hero or Heroine of Messenger Poem	33
Asim Halder	
कलिकाले कलिविडम्बनकाव्यस्य उपादेयता	41
गणेशपण्डितः	
संस्कृतवाङ्मये शब्दार्थहरणविषयिणी अवधारणा	46
भास्कर चटर्जी	
सुखबोधिन्नुसृत्य अहोरात्र इत्यत्र समासविमर्शः	52
अरुण भट्टः	
लघुचन्द्रिकाप्रदर्शितदिशा बौद्धतार्किकमतदूषणे	55
पी० आर० वासुदेवन्	
वर्तमान संस्कृत-साहित्य का विशिष्ट नाटक : 'प्रशान्तराघवम्'	58
तेज प्रकाश	
व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा	67
शशी मथुरिया एवं पूर्णचन्द्र उपाध्याय	

Revival of the Ancient Indian Gurukul System as per Scriptures	75
<i>Arunender Thakur Anupama Ryali</i>	
आर्षशास्त्रोक्त कर्मसिद्धान्त : एक विश्लेषणात्मक समीक्षा	86
<i>आशुतोष पारीक</i>	
अभिज्ञानशाकुन्तले मैत्रीसम्बन्धः	95
<i>मीनाक्षी हालदार</i>	
वाकोवाक्यम्/बहसो मुबाहिस	101
पण्डित वासुदेव द्विवेदी और एक मैथिली कहानी 'अगिलही'	101
<i>प्रताप कुमार मिश्र</i>	
कृति-परिचय/रिव्यू/समीक्षा	108
'बालचन्द्रः' बलचनमा का संस्कृत-अनुवाद	108
<i>गुंजन गर्ग</i>	
हिन्दी-उपन्यास 'बलचनमा' का संस्कृत-अनुवाद	111
<i>आशुतोष पारीक</i>	
संस्थान की गतिविधियाँ	115
वर्ष 2021 ई० में प्रबुकीर्ति द्वारा आयोजित ज्ञान-विज्ञान परक उल्लेखनीय कार्यक्रम : एक संक्षिप्त विवरण	115
<i>विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी</i>	

भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च

राहुलमाइतिः*

सारांश

शोधपत्रेऽस्मिन् आचार्यस्य भरतमल्लिकस्य परिचयः विस्तरशः लिख्यते। अज्ञातोऽयं लेखक आजीवनं संस्कृतसाहित्यम् असेवत। वङ्गीयः अयं विद्वान् सर्वेषु शास्त्रेषु पारङ्गत आसीत्। तेषु तेषु विषयेषु तत्कृतय एव तस्य सर्वशास्त्रपारङ्गतत्वं प्रतिपादयन्ति। अद्यत्वे संस्कृतसेविनो भरतमल्लिकेन न तथा परिचिताः। अतः आचार्यस्य देशः कालः कृतयश्च यथातथ्यं लिख्यन्ते। प्राप्ततथ्यैः तस्य सप्तदशशतकीयत्वं दर्शितम्। तल्लिखितानां कृतीनां च संक्षेपपरिचयः पत्रे उपस्थापितः येन अन्यशोधच्छात्राणाम् आचार्यविषये इतोऽपि आग्रहः स्यात् इति। पत्रमिदं सर्वान् भरतमल्लिकं परिचययेत् इति आशास्महे।

मुख्यशब्द : भरतमल्लिकः, भरतसेनः, कारकोल्लासः, बङ्गीयविद्वान्, सुबोधटीका

1 ग्रन्थकर्तुः परिचयः

व्याकरणसम्प्रदाये सन्ति अगणिताः आचार्याः ये प्राचीनकालादेव व्याकरणशास्त्रं सेवमानाः सन्ति। पाणिन्यादिभ्यः आरभ्य अद्यावधि व्याकरणदर्शनस्य या आचार्यपरम्परा विद्यते सा अत्यन्तं सुदृढा। बहवः आचार्याः, ये स्वकृतिभिः संस्कृतव्याकरणं प्रकाशितवन्तः तेषु केचन अत्यन्तं प्रमुखाः परिचिताश्च यथा नागेशकौण्डभट्टदीक्षितादयः। अन्ये च केचन आचार्याः अप्रसिद्धाः। तेषु अप्रसिद्धाचार्येषु कश्चन सकलशास्त्रनिष्णातः पण्डितप्रकाण्डः आसीत् भरतमल्लिकः। अद्यत्वे जनाः भरतमल्लिकस्य नाम एव न जानन्ति इति महतः खेदस्य विषयः। वहता कालेन च विस्मृतिपथं गताः भरतमल्लिकस्य कृतयः। अद्यत्वे किञ्चिदेव ज्ञातुं शक्यते आचार्यस्य विषये। वंशपरिचयादिकं यत् प्राप्यते तदपि अन्यग्रन्थकारोक्तिभिः एव ज्ञातुं शक्यम्। ये तावत् तत्परवर्तिनः शास्त्रकाराः तेषां ग्रन्थे यावत् सत्यम् उपलब्धं तदेव प्रमाणीकृत्य तस्य देशकालकृतीनां परिचयः प्रस्तूयते।

2 ग्रन्थकर्तुः देशः

बङ्गलिप्याम् उपलभ्यमानाः तल्लिखितग्रन्था एव तस्य बङ्गीयत्वं प्रमापयन्ति। तथापि बङ्गभूमेः कं प्रदेशम् अलङ्कार अयं पण्डितः इति निर्णेतुं काश्चन युक्तयः प्रदर्श्यन्ते-

1. जानकीनाथशास्त्रिणा कारकोल्लासग्रन्थस्य भूमिकायां लिखितं¹-
वर्धमाननगरस्य श्रीखण्डग्रामे आसीत् तस्य निवासः।

* शोधच्छात्रः, संस्कृतदर्शनविभागः, रामकृष्णमिशन्-विवेकानन्द-शैक्षणिक-शोधसंस्थानम्, बेलुडमठः, हावडा, बङ्गः

¹ कारकोल्लासः, पृ० 2

2. कुलदर्पणग्रन्थे² ग्रन्थकारः इत्यमाचख्यौ-
वर्धमाननगरस्य धात्रीग्रामे आसन् भरतमल्लिकः तस्य पूर्वजाश्च ।
3. भरतमल्लिकविरचितायां द्रुतबोधिनीटीकायां राज्ञः कल्याणमल्लस्य नाम उपलभ्यते तस्य मतपोषकत्वेन । स च कल्याणमल्लः आसीत् भूरशुटपरगणायाः महीपालः, अतः भरतमल्लिकोऽपि भूरशुटपरगणायां वसति स्म इति वक्तुं शक्यते । तस्मिन् समये भूरशुटपरगणा अद्यत्वे हाओडा-हुगली-वर्धमाननगरेषु विभाजितः वर्तते । अतः हुगलीवर्धमानप्रदेशयोः क्वचित् ग्रन्थकर्तुः निवासः आसीत् ।
4. भट्टिकाव्यमाश्रितायाः तट्टीकायाः मुग्धबोधिन्याः मातृकाविवरणे तु तस्य निवासः हुगली-नगरस्य काचरापाडा इति उक्तं ग्रन्थकर्त्रा³ ।
5. गोपालकृष्णरायेण तस्य अम्बष्ठसम्बादिकायां तु भरतमल्लिकस्य ग्रामः पिट्ङ्या इति आम्नातः-

एवन्तत्कुलसम्भूतो भिषक् भरतमल्लिकः ।
पिट्ङ्या-ग्रामनिवासी स शास्त्रज्ञः पण्डितः सुधीः ॥

6. गुरुपदहालदारः व्याकरणदर्शनेर इतिहास इति आख्ये स्वकीयग्रन्थे उक्तवान् यत् वर्धमाननगरमेव भरतमल्लिकस्य जन्मस्थानमासीत् ।⁴
7. सुरेशचन्द्रबनर्जी-महोदयेनापि स्वकीयप्रबन्धे⁵ कथितं भरतमल्लिकस्य निवासः वर्धमाननगरमिति ।

अतः एभिः प्रमाणैः वक्तुं शक्यते यद् बङ्गप्रदेशस्य वर्धमाननगरे पिट्ङ्यां श्रीखण्डे धात्रीग्रामे वा तस्य जन्म अभूदिति ।

3 ग्रन्थकर्तुः वंशपरिचयः

तस्य पूर्वजानां विषये यावत् तथ्यमुपलब्धं तेन ज्ञातुं शक्यते /ज्ञायते यत् हरिहरखानवंशप्रसू-तस्य अस्य पिता आसीत् महान् वैद्यः गौराङ्गमल्लिकः । अस्योल्लेखं भरताचार्यः स्वलिखितेषु सर्वेषु ग्रन्थेषु अकरोत् । तद्यथा लिखति- “वैद्यगौराङ्गपुत्रश्रीभरतेन विपश्चिता” इति । स्वीय-द्रुतबोधव्याकरणस्य टीकायामप्युक्तं तेन- “इति सद्द्वैद्यहरिहरखानवंशसंभवगौराङ्गमल्लिकात्म-जमहामहोपाध्यायश्रीभरतसेनकृतायां द्रुतबोधटीकायां तिङन्तप्रकरणं समाप्तमिति ।”

अमरकोषटीकायाः मुग्धबोधिन्याः मङ्गलश्लोके अपि श्लोकितं ग्रन्थकृता-

नत्वेशं कुरुतेऽम्बष्ठगौराङ्गमल्लिकात्मजः ।
टीकामरकोषस्य भरतो मुग्धबोधिनीम् ॥

अन्यत्रापि त्रैलोक्यनाथभट्टाचार्यः स्वीये ऐतिहासिकप्रबन्धमालाख्ये ग्रन्थे कारिकां लिलेख-

² कुलदर्पणम्, पृ० 130

³ Cat. of the Skt. Mss. in the library of the Indian Office. Vol.I; Julius Eggeling, p.-262.

⁴ व्याकरणदर्शनेर इतिहास, पृ० 461

⁵ एकवर्णार्थसंग्रहः of Bharat Mallik, Indian Historical Quarterly, Vol. 36, page-29

कुलवितरणविद्यावैभवश्रेष्ठगोष्ठी वरुहरिहरखानख्यातवंशप्रसूतः ।
विदितचरितधीरश्रीलगौराङ्गसूनुर्व्यधितभरतसेनो बालबोधार्थमेतत् ॥

इत्थं ज्ञायते यत् हरिहरखानस्यैव वंशजः आसीत् भरतमल्लिकः । इतोपि स्पष्टं भवति चन्द्रप्र-
भायाः सम्पादकेन विनोदलालसेनेन यल्लिख्यते- इति हरिहरखानस्यान्वयं प्रसिद्धम् । जगति
भरतसेनस्तस्य पुत्रप्रपौत्रः इत्यतः । अतः तस्य वंशपरम्परायां हरिहरप्रभृतयः प्रतिष्ठिताः विद्वांसः
वैद्याः आसन्निति ज्ञायते । जानकीनाथसाहित्यशास्त्री चतुर्विंशत्याधिको नविंशतमे वर्षे संस्कृत-
साहित्यपरिषत्पक्षतः कारकोल्लासाख्यं कारिकाग्रन्थं प्रकाशितवान् । तत्र तेन आचार्यस्य वंश-
परम्परायाः या तालिका प्राप्ता सा अत्रोल्लिख्यते-हरिहरखानः-गोपीनाथः-वनमाली-गौराङ्गः-
भरतः-रामचन्द्रः-कृष्णरामः-रामरामः-रामजीवनः-कृष्णजीवनः-केवलरामः-राजकिशोरः-हरिनाथः-
सूर्यनारायणः-ज्योतिर्मयः ।

तस्य वंशपरिचयविषये यानि तथ्यानि प्राप्तानि तानि सम्यगालोच्य एतन्निर्णेतुं शक्यते यत्
धन्वन्तरिगोत्रे हरिहरखानस्य वंशे वैद्यकुले गौराङ्गमल्लिकस्य औरसत्वेन जातोऽयं विद्वान् भर-
तमल्लिकः ।

4 ग्रन्थकर्तुः कालः

कस्मिन् समये भरतमल्लिकः बङ्गभूमिं शुशोभ इति स्पष्टं वक्तुं न शक्यते । तथापि प्राप्ततथ्य-
पर्यालोचनेन अन्येषाम् आचार्याणाम् उद्धृतिभिः भरतमल्लिकस्य सप्तदशशतकीयत्वं मानयितुं
शक्यम् । आङ्गलाचार्येण ऑउफ्रेक्ट महोदयेन क्याटालगस् क्याटालोगुरुमिति ग्रन्थे⁶ शतवर्षपूर्-
वत्वम् आचार्यस्येति उक्तं परन्तु तत्र तेन न किमपि प्रमाणं दत्तम् । विश्वकोषग्रन्थस्य सम्पादकः
उपसर्गवृत्त्याः अन्तिमं श्लोकं वीक्ष्य तस्य 1758 शकाब्दभवत्वं स्वीकरोति, अत्रापि तेन युक्तिः
न प्रदर्शिता अतः द्वयमपि तत्त्वं प्रमाणाभावात् अङ्गीकर्तुं न शक्यते ।

भरतमल्लिकस्यैव वंशीयः ज्योतिर्मयमल्लिकः इत्यमुद्धरति यत्, विनोदलालसम्पादितस्य
चन्द्रप्रभाग्रन्थस्य भूमिकायां भरतमल्लिकः स्वयं लिखति-

भरतमल्लिकस्य स्वहस्तलिखितपुस्तकसमाप्तिः । शकाब्दा 1597 ॥

1597 शकाब्दः इत्युक्ते 1675 ख्रीस्ताब्दः अर्थात् सप्तदशशतकस्य मध्याह्ने अयमाचार्यः स्वीय-
ग्रन्थान् ग्रन्थयाञ्चकार । यतो हि चन्द्रप्रभाग्रन्थस्य मातृका नोपलभ्यते अतः इदमपि सन्देहास्पदं
भवति । परन्तु कविचन्द्राख्यः विद्वान् 1583 शकाब्दे, 1661 ख्रीस्ताब्दे चिकित्सारत्नावलीं
लिखितवान्, यत्र तेनोच्यते-

गङ्गातरङ्गलसदङ्गविहङ्गभृङ्गरङ्गस्फुरत्सततगुञ्जितमञ्जुकुञ्जे ।
दीर्घाङ्गनामनगरे कृतगुम्फनोऽयं ग्रन्थः कृशानुवसुवाणशशाङ्कशाके ॥

अयमेव कविचन्द्रः भरतमल्लिकरचितायां चन्द्रप्रभायामुल्लिखति-

⁶ Cataloguous Catalogorum, p.-396

राहुलमाइतिः

भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च

रामेश्वरः स्वदैवेन दत्तवंशभुवः सुताम् ।
कविचन्द्रस्य जग्राह दिग्ङ्गोऽपत्यवर्जितः ॥

ग्रन्थे तस्य प्रकरणं तत्पुत्रपरिचयमुक्तवैव समाप्तिं याति- “राघवो दत्तदीगङ्गकविवल्लभजाप-
तिः ।” अन्यत्रापि ग्रन्थे कविचन्द्रः भरतेन स्मृतः, तत्रापि तत्प्रातुषुत्रस्य परिचयमात्रेण लेखकः
श्रान्तः-

रामजीवनदासोऽयं दैवाद्दीगङ्गवासिनः ।
कविचन्द्रस्य दत्तस्य कन्यकां परिणीतवान् ॥

इत्यतः एव ज्ञायते यत् कविचन्द्रस्य समयः एव भरतमल्लिकस्य कालः । अतः चन्द्रप्रभाग्रन्थस्य
रचनाकालः 1675 ख्रीस्ताब्दः इति दोषग्रस्तं नास्ति ।

अन्यदपि प्रामाणिकं तथ्यमस्ति यत् बङ्गीयसाहित्यपरिषदि द्रुतबोधव्याकरणस्य एका मा-
तृका⁷ उपलब्धा यत्र मातृकारचनाकालः 1581 शकाब्दः इति लिखितं वर्तते । इयमेव भरत-
मल्लिकेन लिखितग्रन्थानां पुष्पिकासु प्राचीनतमा अस्ति । ग्रन्थस्य पुष्पिकायां लिखितमस्ति-

“प्रकीर्णपादः ॥ हरिहरखानकुलेन्दुर्वेद्यो गौराङ्गमल्लिकः ख्यातः । तस्य तनुद्भव एत-
च्चक्रे भरतो नृपाज्ञातः ॥ इति सद्द्वैद्य-गौराङ्गमल्लिकात्मज-श्री-भरतसेनविरचितं द्रुत-
बोधव्याकरणं समाप्तम् । शुभमस्तु शकाब्दाः 1581 ॥ श्रीसहदेवदासस्य पुस्तकमि-
दम् ।”

एतैः प्रमाणैः ज्ञायते यत् भरतमल्लिकः 1650-1680 ख्रीस्ताब्दाभ्यन्तरे एव स्वकीयान् ग्र-
न्थान् रचयामास । यदि इत्थं विचिन्त्यते यत् बाल्ये स्वाध्यायाय विंशतिवर्षात्मककालः स्वीकृतः
भरतमल्लिकेन तर्हि 1630 ख्रीस्ताब्दसामीप्ये एव कदाचित् तस्य जन्म अभूदिति वक्तुं शक्यते ।

एवञ्च 1924 ख्रीस्ताब्दे प्रकाशिते कारकोल्लासग्रन्थे भरतमल्लिकस्य या वंशतालिका प्रा-
प्ता तत्र यदि द्वयोः पूर्वजयोः विंशतिवर्षात्मकं व्यवधानं स्यात् तथापि तस्य ततः द्विशतवर्षपूर्वत्वं
तु सिद्ध्यत्येव । तेनापि तस्य 1725 ख्रीस्ताब्दसमीपभवत्वं सिध्यति । अस्मिन् विषये अन्य-
देकं प्रमाणम् इत्थम् उपलभ्यते- भरतमल्लिकविरचितायाः अमरकोषटीकायाः एका प्राचीना
पाण्डुलिपिः संस्कृतसाहित्यपरिषदि उपलभ्यते यत्रान्ते भरतमल्लिकः स्वयमित्थं लिखति-

शरयुगलरसैकख्यातशाके घटेने निजतनयसुखार्थं पाठकानां सुतृप्त्यै ।
व्यरचि भरतसेनेनेति या कोषटीका लिपिमलभत सेयं लिङ्गसंग्राहकल्पे ॥

अस्याः कारिकायाः अन्वयः इत्थमस्ति- शरयुगलरसैकख्यातशाके घटेने निजतनयसुखार्थं पा-
ठकानां सुतृप्तये भरतसेनेन या कोषटीका व्यरचि सेयं लिङ्गसंग्राहकल्पे लिपिमलभत । शरयु-
गलरसैकख्यातशाके⁸ इत्यस्य संख्यायां स्थानान्तरेण 1625 शकाब्दकालः निर्धार्यते । 1625

⁷ Sans. Mss. No.-88f of the Vangiya Sahitya Parishad, Calcutta, There are marginal
notes probably from the Drutabodhini; on fol.24a there is a note: जीवोप्याह तत्रैकस्यामेव
क्रियायामिप्सिततममीप्सितञ्चेति कथं द्वयं स्यात्.....

⁸ शरः =5, युगलम् =2, रस =6, एक =1। संख्यायाः वामगतिः । 1625 शाके इति शकाब्दे

शकाब्दे इत्यस्य पुनः 1703 ख्रीस्ताब्दे इत्यर्थः । अत्र अमरकोषस्य या टीका तेन लिखिता सा अत्यन्तं गम्भीरा समृद्धा वर्तते येन एतत्तस्य वृद्धवयसः कार्यमिति ज्ञायते । अतः 1703 ख्रीस्ताब्दात् प्रागेव अयमाचार्यः आसीत् इति वक्तुं शक्यते । इतो अपि अन्यत् प्रमाणमस्ति चन्द्रप्रभाख्ये ग्रन्थे—

परो भरतमल्लीको द्विजवैद्याङ्घ्रिसेवकः ।
भूरिश्रेष्ठमहीपालसभापण्डितविश्रुतः ॥
वैद्यानामाज्ञया योऽमुं कुरुते कुलपञ्जिकां
चकार चापरान् ग्रन्थान् द्रुतबोधैकान् बहून् ॥

अत्र तेन उक्तं यत् स भूरिश्रेष्ठमहीपालस्य सभायां पण्डितः आसीत् । आउफ्रेक्ट-महोदयेन भरतमल्लिकः कल्याणमल्लस्य सभापण्डितत्वेन उक्तमस्ति । अतः इत्थं भवितुमर्हति यत् युववयसि भरतमल्लिकः कल्याणमल्लस्य सभायां पण्डितो भवेत् अनन्तरं वृद्धावस्थायां चन्द्रप्रभारत्नप्रभादीनि पुस्तकानि रचितानि स्युः । यतोहि कुलपञ्जिकासदृशग्रन्थाः बाल्ये एव लिखितुं न शक्यन्ते । यदि इत्थं चिन्त्यते यत् पञ्चाशत्-तमे वयसि तेन चन्द्रप्रभा रचिता तर्हि (1597-50) 1547 शकाब्दे तस्य जननमभूत्, अर्थात् 1625 ख्रीस्ताब्दं यावत् ।

यद्यपि याथार्थिकं वक्तुं न शक्यते तथापि एभिः प्रमाणैः इदमेव निर्णेतुं शक्यते यत् भरतमल्लिकस्य सम्भवः 1625-1630 ख्रीस्ताब्दाभ्यन्तरे एव क्वचित् अभवत् । एवञ्च तस्य ये ग्रन्थाः ते अपि 1650-1680 ख्रीस्ताब्दाभ्यन्तरे एव रचिताः सन्ति । अतः भरतमल्लिकस्य जननं सप्तदशशतकस्य प्रथमभागे एव अभवत् इति निर्विवादेन स्वीकर्तुं शक्यते ।

5 भरतमल्लिकस्य कृतयः

सप्तदशशतकीयः अयमाचार्यः आसीत् सर्वशास्त्रपारङ्गतः । सकलप्रसिद्धसंस्कृतमहाकाव्येषु तल्लिखिताः टीकाः एव साहित्यपारङ्गतत्वं निदर्शयन्ति । न केवलं काव्यनिष्णातः अपितु व्याकरणशास्त्रमपि आचार्यस्य हस्तामलकवत् आसीत् इति वक्तुं पार्यते । अत्यन्तं महत्वपूर्णमपि विषयं सारल्येन उपस्थापयितुं प्रयतते आचार्यः । भरतमल्लिकेन आजीवनं बहवः ग्रन्थाः ग्रन्थिताः । तेषु ग्रन्थेषु केचन उपलभ्यन्ते, केचन अद्यावधि नावाप्यन्ते । केवलं कर्णपथमात्रमागच्छन्ति । केषाञ्चित् प्रकाशनं जातम् । केचित्तु अद्यापि अप्रकाशिताः एव वर्तन्ते । के च ते ग्रन्थाः इति विषये अन्वेषणेन त्रिषु स्थलेषु तद्विचित्रग्रन्थानामुल्लेखः लब्धः । कालक्रमेण तदुच्यते ।

5.1 थियोडोर ऑफ्रेक्टमहोदयानां मतम्

थियोडोर ऑफ्रेक्टमहोदयेन (Theodor Aufrecht) विरचिते सूचीपत्रे⁹ अपि भरतमल्लिकस्य कृतीनामुल्लेखः कृतः । तन्मते भरतमल्लिकस्य एताः कृतयः सन्ति—

⁹ Catalogous Catalogorum, Leipzig, 1891

राहुलमाइति:

भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च

1. उपसर्गवृत्तिः
2. एकवर्णार्थसंग्रहः
3. कारकोल्लासः
4. किरातार्जुनीयटीका
5. कुमारसम्भवटीका
6. घटखर्परटीका
7. द्रुतबोधव्याकरणम्, तस्य स्वोपज्ञवृत्तिः
द्रुतबोधिनीटीका
8. द्विरूपध्वनिसंग्रहः
9. नलोदयटीका
10. नैषधीयटीका
11. मुग्धबोधिन्याख्या अमरकोषटीका
12. भट्टिकाव्यटीका
13. मेघदूतटीका
14. वैद्यकूलतत्त्वम्
15. शिशुपालवधटीका
16. सुखलेखनम्।

5.2 जानकीनाथशास्त्रिणां मतम्

आचार्यः जानकीनाथशास्त्री कारकोल्लासस्य पञ्चभ्यो मातृकाभ्यः शुद्धपाठं निर्णय 1924 ख्री-
स्ताब्दे संस्कृतसाहित्यपरिषद्पक्षतः कारकोल्लासग्रन्थम् अप्रकाशयत्। तत्र तेन ग्रन्थभूमिकायां
भरतमल्लिकस्य ये ग्रन्थाः उल्लिखिताः तेषां नामानि—

1. उपसर्गवृत्तिः
2. एकवर्णार्थसंग्रहः
3. किरातार्जुनीयमहाकाव्यस्य टीका
4. कुमारसम्भवमहाकाव्यस्य टीका
5. घटखर्परकाव्योपरि टीका
6. द्रुतबोधव्याकरणम्
7. द्रुतबोधव्याकरणस्य द्रुतबोधिनीटीका
8. द्विरूपध्वनिसंग्रहः
9. नलोदयमहाकाव्यस्य टीका
10. नैषधीयचरितमहाकाव्यस्य टीका
11. अमरकोषस्य मुग्धबोधिनी टीका
12. भट्टिकाव्योपरि मुग्धबोधिनी टीका
13. मेघदूतस्य टीका
14. चन्द्रप्रभा इत्याख्यः वैद्यकूलग्रन्थः
15. रत्नप्रभा इत्याख्यः वैद्यकूलग्रन्थः
16. शिशुपालवधस्य टीका
17. सुखलेखनम्
18. बालबोधिनी
19. रत्नकौमुदी वैद्यग्रन्थः
20. सारकौमुदीति वैद्यग्रन्थः
21. कारकोल्लासः

5.3 सुरेशचन्द्रबनर्जी-महोदयानां मतम्

1960 ख्रीस्ताब्दे सुरेशचन्द्रबनर्जी-महोदयेन The Indian Historical Quarterly इति
पत्रिकायाः षट्त्रिंशत्संख्यायाम् “एकवर्णार्थसंग्रहः आफ भरतमल्लिक” इति निबन्धे भरत-
विरचिताः ये ग्रन्थाः उल्लिखिताः ते—

1. उपसर्गवृत्तिः
2. कारकोल्लासः
3. गणपाठः
4. द्रुतबोधव्याकरणम्
5. द्रुतबोधव्याकरणस्यैव द्रुतबोधिनीटीका
6. सुखलेखनम्
7. किरातार्जुनीयटीका
8. कुमारभार्गवीयटीका
9. कुमारसम्भवटीका
10. घटखर्परटीका

- | | |
|---------------------------------|---------------------------------------|
| 11. नलोदयप्रकाशः | 14. शिशुपालबधटीका |
| 12. नैषधीयटीका | 15. मुग्धबोधिन्याख्या अमरकोषटीका |
| 13. रघुवंशमहाकाव्यस्य सुबोधटीका | 16. वैद्यकुलतत्त्वम् राठीकुलपञ्जिका । |

क्वचिदेव विदुषां मध्ये तल्लिखितग्रन्थेषु पार्थक्यं दृश्यते परन्तु न तेन पाण्डित्यं हीयते । उक्ततथैः ज्ञायते यत् भरतमल्लिकः आसीत् साहित्यिकः, वैयाकरणः, कोषकारः, वैद्यश्च । अतः तल्लिखितग्रन्थानां सामान्येन परिचयः प्रदीयते, येन अन्येषां विदुषाम् अस्य आचार्यस्य विषये ज्ञानेप्सा किञ्चित् वर्द्धतात् इति ।

6 भरत-लिखित-ग्रन्थानां परिचयः

मौलिकग्रन्थाः टीकाग्रन्थाश्चेति भेदेन भरतमल्लिकस्य ग्रन्थाः द्विधा विभज्यन्ते । मौलिकग्रन्थेषु अन्यतमाः यथा— द्रुतबोधव्याकरणम्, एकवर्णार्थसंग्रहः, द्विरूपध्वनिकोषः, उपसर्गवृत्तिः, सुखलेखनम् इति । टीकाग्रन्थेषु प्रसिद्धाः भर्तृहरेः भट्टिकाव्याश्रिता मुग्धबोधिनी टीका, अमरसिंहस्य अमरकोषाश्रिता मुग्धबोधिनीटीका, कालिदासस्य मेघदूतमुपजीव्य मेघदूतटीका इत्येताः टीकाः । इतोऽपि “वैद्यकुलतत्त्वं” बङ्गप्रदेशस्य महान्तं वैद्यसम्प्रदायं परिचाययति । अधुना तल्लिखितानाम् उपलभ्यमानानामेव ग्रन्थानां विषये स्वल्पं लिख्यते । ये ग्रन्थास्तु नाममात्रेण कर्णपथमागच्छन्ति तेषां विषये इतोऽपि अनुसन्धानं कर्तव्यं वर्तते ।

6.1 कोषग्रन्थाः

प्राचीनकालादेव बङ्गदेशे कोषग्रन्थकाराणां प्राभूत्यं दृश्यते । आभारतं ये अत्यन्तं प्रसिद्धाः कोषग्रन्थकाराः आसन् तेष्वधिकाधिकाः वङ्गीयाः एव आसन् । बहवस्तु कोषग्रन्थेषु टीकां लिलिखुः, केचन च स्वकीयकोषग्रन्थमपि रचयाञ्चक्रुः । भरतमल्लिकः अपि कोषग्रन्थरचनायां मूर्धन्यः आसीत् । तेन स्वकीयकोषग्रन्थत्वेन एकवर्णार्थसंग्रहः, द्विरूपध्वनिकोषश्च इति द्वौ कोषग्रन्थौ ग्रन्थितौ । एवञ्च अमरसिंहविरचितस्य अमरकोषस्य टीका च लिखिता ।

6.2 एकवर्णार्थसंग्रहः

अस्य ग्रन्थस्य एका एव मातृका इन्डिया अफिस् लण्डन इत्यत्र¹⁰ संगृहीता वर्तते । तत्र एक-षष्ठीसंख्यकाः कारिकाः सन्ति । अस्मिन् ग्रन्थे यथाक्रमं स्वरवर्णा व्यञ्जनवर्णाश्च सन्ति । तेषाञ्च के अर्थाः सन्ति, तदत्र लिखितं रचयित्रा । तत्रापि ग्रन्थान्ते उवाच स्वयम्—

ख्यातानामेकवर्णानामर्थानां क्रियतां कृतः ।
संग्रहोऽयं परे त्वर्थाः ज्ञेयास्तन्त्रान्तरेक्षणात् ॥

¹⁰ बनर्जी सुरेशचन्द्रः, एकवर्णार्थसंग्रहः आफ भरतमल्लिक, दि इण्डियान् हिस्टोरिकाल कोयाटर्लि, 36-संख्या, 1960, पृ० 29

राहुलमाइति:

भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च

अर्थात् एकोऽपि वर्णः बहून् अर्थान् व्यनक्ति, तेषु अर्थेषु केषाञ्चिदेव उल्लेखः मयात्र कृतः । इतोऽपि सन्ति बहवः अर्थाः तज्ज्ञानाय शास्त्रान्तरं द्रष्टव्यमिति । अनेनैव वचनेन भरतमल्लिकस्य विनयात्मकः स्वभावः ध्वन्यते । यद्यपि सन्ति बहवः कोषग्रन्थाः संस्कृतजगति, परन्तु इत्यम् एकवर्णानां कोषस्तु तत्र दुर्लभः । शब्दकल्पद्रुमकारेण राधाकान्तदेववाहादूरेण अपि स्वग्रन्थे एकवर्णार्थसंग्रहाख्यः ग्रन्थः स्मृतः- “सः स्याद्विष्णौ हरे सर्पे । इति भरतैकार्थसंग्रहः” इति । अर्थात् एतेनैव ज्ञायते अस्य ग्रन्थस्य प्रसिद्धिः । अस्य ग्रन्थस्य एकमुदाहरणं यथा-

उः शिवे स्यादव्ययं तु अनुकम्पानियोगयोः

सम्बोधनरुक्तिः पादपूरण इष्यते ।

ऊ रक्षायामव्ययं तु वाक्यारम्भानुकम्पयोः ॥

अस्यार्थः ह्रस्वोकारेण शिवः द्योत्यते । किञ्च उ इत्यव्ययेन अनुकम्पा, नियोगः, सम्बोधनम् इत्येताः अर्थाः द्योतिताः भवन्ति । उकारश्च पादपूरणार्थे अपि क्वचित् प्रयुज्यते इति । दीर्घोकारश्च रक्षार्थे नियुज्यते, ऊ-इत्यव्ययेन तु वाक्यारम्भः अपि दृश्यते । तस्य अनुकम्पार्थः अपि क्वचित् भवति ।

6.3 द्विरूपध्वनिसंग्रहः

पूर्वमेव उक्तं यत् भरतमल्लिकविरचितौ द्वौ कोषग्रन्थौ स्तः । तयोरेकः अयं द्विरूपध्वनिसंग्रहः । अयं ग्रन्थः क्वचित् द्विरूपकोषः इत्याख्यया अपि प्रसिद्धः ।¹¹ जानकीनाथशास्त्रिणा तु द्विरूपध्वनिसंग्रहः इत्येव लिखितं स्वप्रकाशनायाम् । परन्तु राधाकान्तदेववाहादूरेण स्वीयशब्दकल्पद्रुमग्रन्थे द्विरूपकोषनाम्नैव उद्धृतः अयं ग्रन्थः । स्वयं भरतमल्लिकः अपि पुष्पिकायां द्विरूपकोषः, द्विरूपध्वनिसंग्रहश्च इत्युभयमेवोक्तवान्-

हरिहरखानकुलाब्जद्युमणैर्गौराङ्गल्लिकाल्मजः ।

भरतो द्विरूपकोषं चक्रे विदुषां विनियोगतः ।

इति भरतसेनकृतो द्विरूपध्वनिसंग्रहः समाप्तः ।¹²

द्विरूपध्वनिसंग्रहग्रन्थे तेषां शब्दानाम् अर्थनिरूपणं कृतं ग्रन्थकर्त्रा ययोः शब्दयोः उच्चारणे बहु साम्यमस्ति । अर्थात् तादृशाः शब्दाः सन्ति, येषाम् अक्षरानुपूर्व्यां प्रायः समानता वर्तते । यद्यपि ग्रन्थनामानुसारं द्वयोः शब्दयोः उच्चारणसाम्यमेव ग्राह्यं तथापि क्वचित् दृश्यते यत् त्रयाणां चतुर्णां शब्दानामपि ग्रन्थे ग्रहणं कृतमाचार्येण । यद्यपि ग्रन्थकारेण ग्रन्थान्ते उक्तं-

द्विरूपाः कतिचित् शब्दाः प्रसिद्धाः कथिता मया ।

अपरे बहवो ज्ञेयाः प्रोयगेण मनीषिणाम् ।

¹¹ बनर्जी सुरेशचन्द्रः, एकवर्णार्थसंग्रहः अफ भरतमल्लिकः, दि इण्डियान् हिस्टोरिकाल कोयाटार्लि, संख्या-36, 1960, पृ० 29

¹² Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute इति पत्रिकायाः द्विरूपध्वनिसंग्रहनिबन्धः, सुरेशचन्द्र-बनर्जी

अर्थात् केषाञ्चित् एव शब्दानामत्र विवरणं क्रियते, एतानतरिच्यापि ये द्विरूपाः शब्दाः सन्ति, तेषां ज्ञानम् अन्यग्रन्थेभ्यः भवेद् इति । तथापि अस्मिन् ग्रन्थे 275 संख्यकाः कारिकाः सन्ति । द्वाभ्यां विशेषाभ्यां भूषितः अयं ग्रन्थः । प्रथमस्तावत् द्विरूपध्वनिनां कोषः स्वल्पसंख्यकाः सन्ति, तेषु अपि अयं नावीन्यं भजते । द्वितीयः विशेषस्तु, ग्रन्थः अयं कारिकात्मकः वर्तते । अतः एतादृशा ग्रन्थाः संस्कृतवाङ्मये दुर्लभाः सन्ति । यद्यपि अद्यत्वे अस्य तावान् प्रचारः नास्ति, तथापि तस्मिन्काले अस्य प्रसारः आसीत् इति वक्तुं शक्यते, यतो हि शब्दकल्पद्रुमाख्ये कोषग्रन्थे, राधाकान्तदेववाहादूरेण अयं ग्रन्थः बहुधा स्मृतः । तद्यथा—

१. अत्तिका¹³— स्त्री, (अत्ति + स्वार्थे कन्) अन्तिका । नाव्योक्तौ ज्येष्ठा भगिनी । इति भरतः द्विरूपकोषश्च ।

२. सची¹⁴— दन्त्यादिश्च तत्र सचते प्याययति इन्द्रमिति ष च ड सेचने पूर्व्वन इः ईप च । इत्यमरटीकायां भरतः सचिः शचीति भरतद्विरूपकोषश्च ।

३. गौरा¹⁵— गौरादिगणेवर्णवाचिनः एव गौरशब्दस्यग्रहणात् अत्र विशुद्धार्थपरत्वे टाप् । गौरी । इतिद्विरूपकोषः ।

४. शुनाशीरः¹⁶— शीनाशीरौ वायुसूर्ये अस्य स्तः इति । अर्श-आदित्वात् अच् इन्द्रः । इति भरतद्विरूपकोषः ।

एवमादिभिः उद्धरणैः ज्ञायते यत् भरतमल्लिकेन द्विरूपकोषः लिखितः, स च अत्यन्तं प्रसिद्ध आसीत् । ग्रन्थस्था एका कारिका अत्र उदाह्रियते—

कृत्तिवासः कृत्तिवासौ नारायणनारायणौ ।
पद्मनाभः पद्मनाभिर्मथुरामथुरापि च ॥

6.4 अमरकोशस्य मुग्धबोधिनीटीका

संस्कृतजगति ये कोषग्रन्थाः अद्यत्वे अपि देदीप्यमानाः सन्ति, तेषु मूर्धन्यः अमरसिंहस्य नामलिङ्गानुशासनम् यत् अमरकोषनाम्ना अपि परिचितः । अतः विदुषां प्रवृत्तिरेवासीत् अस्मिन् ग्रन्थे टीकारचनयाम् । सर्वानन्दः, वृहस्पतिः, रायमुकुटः, भरतमल्लिकः, रमानाथविद्यावाचस्पति, त्रिलोचनदासः, परमानन्दचक्रवर्ती, नारायणविद्याविनोदाचार्यः, गोपालचक्रवर्ती, रामकृष्णभट्टाचार्य-प्रभृतयः वङ्गीयविद्वांसः अस्मिन् ग्रन्थे टीकां लिखितवन्तः ।

एतेषु भरतमल्लिकेन रचिता मुग्धबोधिनी-टीका अत्यन्तं प्रसिद्धा वर्तते, येन शब्दकल्पद्रुमकारः तां टीकामुदाहरति । टीका इयम् प्रारभ्यते भरतमल्लिकस्य अनेन वचसा—

नत्वेशं कुरुतेऽम्बष्ठः गौराङ्गमल्लिकात्मजः ।
टीकाममरकोषस्य भरतो मुग्धबोधिनीम् ॥
यः पाणिन्यादिभिरत्र टीकाः कृता महद्भिर्बहुभिर्महत्यः ।
ताभिः प्रहृष्यन्ति न मौग्धबोधास्तेषां नियोगेन ममोद्यमोऽयं ॥

¹³ शब्दकल्पद्रुम, प्रथमभागः, पृ० 31

¹⁴ शब्दकल्पद्रुम, पञ्चमखण्डः, पृ० 220

¹⁵ शब्दकल्पद्रुम, द्वितीयखण्डः, पृ० 372

¹⁶ शब्दकल्पद्रुम, पञ्चमखण्डः, पृ० 123

समाप्तिं च याति अनया उक्त्या-

इति नानाग्रन्थदृष्ट्या मुग्धबोधानुसारतः ।
सामान्यकाण्डे व्याख्यानं चक्रे भरतमल्लिकः ॥
इति हरिहरखानस्यान्वयवायप्रसूतो मुरहरपदसेवासक्तगौराङ्गजातः ।
अमरविहितकोषं मुग्धबोधानुसाराद् व्यवृत भरतसेनः पूर्वटीकादिदृष्ट्या ॥

टीकामिमां बहवः ग्रन्थकाराः स्वकीये ग्रन्थे उपयुक्तवन्तः, तद्यथा राधाकान्तदेवेन स्वीये शब्द-
कल्पद्रुमे केभ्यः कोषग्रन्थेभ्यः टीकाभ्यश्च शब्दाः संगृहीताः इत्येतेषाम् आवली दत्ता । तत्रैव
भरतमल्लिकविरचितायाः मुग्धबोधिन्याः उल्लेखः कृतः ।¹⁷ एवञ्च ग्रन्थे बहुत्र शब्दानाम् अर्थ-
निर्णयप्रसङ्गे भरतमुद्धरति आचार्यः । तादृशस्थलानि कानिचन-

१. शुनाशीरो¹⁸- द्वितालव्यः शुनासीरो द्विदन्त्यकः तालव्यादिर्दन्त्यमध्यः शुनासीरश्च दृश्यते ॥
इत्यमरटीकायां भरतः ॥

२. उद्गीथः¹⁹- सामवेदभेदः । प्रणवः । इत्यमरटीकायां भरतः ।

३. उद्गूर्णम्²⁰- उद्यतम् । इत्यमरः ॥ उत्तोल्यधृतवस्त्रादि । इति भरतः ।

४. उद्दित²¹- बद्धः । इत्यमरटीकायां भरतः ।

५. उद्भानम्²²- चुल्ली इति अमरटीकायां भरतः

६. उद्युक्तः²³- उद्यमयुक्तः । उद्योगविशिष्टः । इत्यमरटीकायां भरतः ।

अतः एभिः प्रमाणैः ज्ञायते यत् कीदृशं माहात्म्यमासीत् भरतमल्लिकविरचितायाः मुग्धबोधि-
न्याः । परन्तु महतः खेदस्य विषयः, अद्यत्वे संस्कृतज्ञा भरतमल्लिकस्य नाम एव न जानन्ति,
का कथा तद्विचितायाः । प्रायः सर्वेषु प्रसिद्धमहाकाव्येषु भरतमल्लिकपादैः टीका विलिखिता
वर्तते । एतेनैव आचार्यस्य साहित्यज्ञानम् अनुमापयितुं शक्यते । मल्लिनाथादयः केचन एव
तादृशः विद्वांसः आसन् ये पञ्चमहाकाव्येषु टीकां लिखितवन्तः । अतः तस्यामेव कोटौ भरत-
मल्लिकः अन्तर्यामि । तासां टीकानां विषये स्वल्पमुच्यते अत्र-

6.5 भट्टिकाव्यस्य मुग्धबोधिनीटीका

भट्टिकाव्यमाश्रित्य भरतमल्लिकेन विरचितायाः टीकायाः आख्या मुग्धबोधिनी इति । टीकारम्भे
एव भरतः उक्तवान्-

नत्वा शङ्करमम्बष्ठगौराङ्गमल्लिकात्मजः ।
भट्टिटीकां प्रकुरुते भरतो मुग्धबोधिनीं ।
विहिता पाणिनीयाद्यैः पठनीयादिबोधिकाः ।

¹⁷ श.कल्प., प्रथमखण्डः, पृ० 17

¹⁸ उपरिवत्, पञ्चमकाण्डः, पृ० 123

¹⁹ उपरिवत्, प्रथमकाण्डः-पृ० 240

²⁰ उपरिवत्

²¹ उपरिवत्

²² उपरिवत्, पृ० 241

²³ उपरिवत्, पृ० 242

भट्टिका मम त्वेषा मौग्धबोधार्थमुद्यमः ।
कविकल्पद्रुमोक्तानां धातूनामनुबन्धतः ।²⁴

भट्टिकाव्योपरि अद्यावधि याः टीकाः लिखिताः, तासु अन्यतमा इयम् । अस्याः सरला भाषा, ग्रन्थावबोधने उपकरोति अस्मान् । वोपदेवविरचितस्य कविकल्पद्रुमग्रन्थस्य उल्लेखः कृतः भरतमल्लिकेन, येन ज्ञायते अत्र ग्रन्थे तदुक्तधातूनामेव निर्देशः तेन कृतः । अस्य ग्रन्थस्य मातृका इण्डिया-अफिस इत्यत्र उपलभ्यते । तेषां मातृकासूचीग्रन्थे अस्य ग्रन्थस्य उल्लेखः अस्ति ।

6.6 महाकाव्यानां सुबोधटीका

रघुवंशादिषु पञ्चमहाकाव्येषु भरतमल्लिकरचितायाः टीकायाः सुबोधः इत्येव नाम आसीत् । तत्र कुमारसम्भवस्य सप्तमकाण्डपर्यन्तस्यैव भरतेन टीका लिखिता । तन्मते कुमारसम्भवस्य मूलग्रन्थे अपि षोडशसर्गाः एव सन्ति । अन्तिमाष्टौ सर्गाः नैवोपलभ्यन्ते, यत्र अष्टमसर्गारम्भप्रसङ्गे उक्तं यत् स्वयं पार्वती एव ताः अनशत् । कथयति—

तस्य शेषाष्टसर्गस्य सञ्चारोभूत्र दैवतः ।
पाठोऽष्टमस्य सर्गस्य देवीशापान्न विद्यते ॥

माघविरचितस्य शिशुपालवधमहाकाव्यस्यापि सुबोधाख्या टीका भरतमल्लिकेन विरचिता वर्तते । भरतमते ग्रन्थकर्ता माघः आसीत् कश्चिन् नृपः । टीकायामस्यां बहूनां प्राचीनटीकाकाराणां मुद्गतिः वर्तते, येन शिशुपालवधमहाकाव्यस्योपरि लिखितानां टीकाकाराणां विषये ज्ञायते । अत्र टीकायां दण्डपाणिः, धृतिकारः, पद्मनाभः, वलदासः, भागीरथः, भावदत्तः, मधुसूदनः, वल्लभप्रभृतयः अत्र उल्लिखिताः सन्ति । श्रीहर्षरचितस्य नैषधीयचरितस्य कियान् भागः व्याख्यात इति विषये अस्ति सन्देहः, यतो हि अद्यत्वे तु प्रथमतः तृतीयसर्गपर्यन्तस्यैव व्याख्या मुद्रितरूपेण उपलभ्यते ।

6.7 कुलग्रन्थः वैद्यग्रन्थश्च

आचार्येण वैद्यसम्प्रदायमाश्रित्य द्वौ कुलग्रन्थौ लिखितौ आस्ताम् । पूर्वम् इयं रीतिरासीत् यत् प्रसिद्धजनानां वंशतालिका लिख्यते स्म । तदनुकरणेनैव ग्रन्थकृता रत्नप्रभाचन्द्रप्रभाख्यौ वैद्यकुलग्रन्थौ लिखितौ । ततश्च निजजातौ वैद्यः अयं पण्डितः चिकित्साशास्त्रमाश्रित्यापि रत्नकौमुदीं सारकौमुदीं च प्रणीतवान् ।

रत्नप्रभा चन्द्रप्रभा च— तस्य स्वकीयग्रन्थेषु रत्नप्रभाचन्द्रप्रभाख्यौ द्वौ वैद्यकुलग्रन्थौ स्तः । द्वौ अपि ग्रन्थौ अद्यत्वे प्रकाशितौ वर्तते । अत्र ग्रन्थे संस्कृतभाषया कारिकारूपेण वङ्गीयवैद्यसमाजस्य परिचयः लिखितः रचयित्रा । जातौ वैद्यः आसीत् अयमाचार्यः अतः स्वीयवंशपरिचयादिकमपि अस्मिन् ग्रन्थे उपलभ्यते । अयं ग्रन्थः तस्य वृद्धवयसः फलमस्ति । यतो हि ग्रन्थे तत्पौत्रादीनां नामानि अपि उभलभ्यन्ते । एवञ्च स्वविषये लिखति अत्र—

²⁴ भट्टिकाव्यम्, जयमङ्गलामुग्धबोधिन्यौ टीकोपेते, प्रथमभागः, संस्कृत-कालेज, कलकाता, 1928 ई०

राहुलमाइति:

भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च

वैद्यानामाज्ञया योऽमुं कुरुते कुलपञ्जिकाम् ।
चकार चापरान् ग्रन्थान् द्रुतबोधादिकान् बहून् ॥

रत्नकौमुदी सारकौमुदी च- भरतमल्लिकः जातौ वैद्यः आसीत्, अतः चिकित्साशास्त्रमाश्रित्यापि तेन द्वौ ग्रन्थौ लिखितौ । येन ज्ञायते सः संस्कृतपण्डितस्सन्नपि स्वजीविकां न त्यक्तवान् । तद्रचितायां रत्नकौमुद्यां सारकौमुद्यां च बहूनि वैद्यकतत्त्वानि निहितानि सन्ति ।

6.8 व्याकरणग्रन्थाः

तद्रचितं द्रुतबोधव्याकरणमेव ग्रन्थकर्तुः वैय्याकरणत्वे प्रमाणमावहति । यद्यपि अद्यत्वे सः ग्रन्थः नोपलभ्यते तथापि अन्वेषणेन प्राप्तुं शक्यते इति आशास्महे । इतोऽपि व्याकरणमाश्रित्य केचन ग्रन्थाः तेन लिखिताः सन्ति, यथा- द्रुतबोधव्याकरणं द्रुतबोधिनी टीका च । वैद्यकुलग्रन्थे “रत्नप्रभायां” स्वविषये उक्तं ग्रन्थकर्त्रा -

वैद्यानामाज्ञया योऽमुं कुरुते कुलपञ्जिकाम् ।
चकार चापरान् ग्रन्थान् द्रुतबोधादिकान् बहून् ॥

अनेन एव ज्ञायते यत् तस्य सर्वासु कृतिषु द्रुतबोधव्याकरणमेव आसीत् श्रेष्ठं कार्यम् । यत्र ग्रन्थे तेन स्वयं व्याकरणसूत्राणि रचितानि, ग्रन्थस्य च द्रुतबोधिण्याख्या व्याख्या अपि लिखिता । अस्य व्याकरणस्योल्लेखः युधिष्ठीरमीमासकेनापि कृतः स्वग्रन्थे²⁵ अस्य ग्रन्थस्य एका मातृका इण्डिया-आफिस मध्ये लभ्यते । तत्रत्ये मातृकासूचिग्रन्थे²⁶ उक्तमस्मिन् विषये । अयं ग्रन्थः प्रारभ्यते अनेन मङ्गलश्लोकेन -

प्रणम्य शम्भुं भरतेन बालान् पदानि विज्ञापयितुं कियन्ति ।
स्वयंकृतस्य द्रुतबोधनाम्नो वितन्यते व्याकरणस्य टीका ॥

निखिलशिष्टैक्यावद्यतया प्रारिप्सितग्रन्थसमाप्तिप्रत्यूहनिरासार्थं स्वयंकृतस्य व्याकरणस्य वृत्तिं चिकीर्षुर्ग्रन्थकारः सकलगीर्वाणीशिरोमणिं श्रीभगवन्तं महादेवं प्रणमति अध्येतृशिक्षार्थं तदादौ निबध्नाति पद्येन -

प्रणम्य पार्वतीनाथं सर्वसिद्धप्रदायकं ।
द्रुतबोधं व्याकरणं भरतेन विरच्यते ॥

अस्मिन् ग्रन्थे सुप्प्रकरणम्, सन्धिप्रकरणम्, संज्ञापादः इत्यादीनि बहूनि प्रकरणानि सन्ति । परन्तु तत्र तद्धितप्रकरणं नास्ति ।

²⁵ संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथमखण्डः, पृ० 581

²⁶ Cat. of the Skt. Mss. in the library of the Indian Office. Vol.-I, Julius Eggeling, p.-255

उपसर्गवृत्तिः तद्रचितेषु ग्रन्थेषु अन्यतमः उपसर्गवृत्तिः । प्रपरेत्यादयः द्वाविंशतिः उपसर्गाः व्याकरणप्रसिद्धाः, तान् एव उपसर्गान् आश्रित्य लिखितः ग्रन्थः उपसर्गवृत्तिः । वृत्तिः विवरणमिति मेदिनीकोशः । अर्थात् उपसर्गणाम् अर्थनिर्णयविषयकः विवरणात्मकः ग्रन्थः अयम् । उपसर्गणां द्योतकत्ववाचकत्वविचारश्च अत्र चर्चितः ग्रन्थकृता ।

कारकोल्लासः व्याकरणदर्शनस्य कारकप्रकरणमाश्रित्य लिखितः ग्रन्थः, यत्र सप्ताधिकशतसंख्यकाः कारिकाः कारकविभक्तिप्रकरणं वैशद्येन विवृण्वन्ति । दिनेशचन्द्रभट्टाचार्यस्य मतं यत् अयं ग्रन्थः कस्यचित् बृहद्ग्रन्थस्य भागविशेषः, परमद्यावधि ग्रन्थस्य अन्यः भागः नोपलब्धः । परं मम मते अयं ग्रन्थः स्वतन्त्रः अथ लघुकायश्च । नायं कस्यचित् ग्रन्थस्य अंशविशेषः इति । इतोऽपि केचन ग्रन्थाः तत्र तत्र अन्यग्रन्थकारैः भरतमल्लिकविरचितत्वेन उक्ताः, तद्यथा - गुरुपदहालदारः स्वीये व्याकरणदर्शनेर-इतिहास-ग्रन्थे द्रुतबोधव्याकरणेन सह प्रसिद्धपदव्याकरणमपि भरतेन रचितमिति उक्तवान् । परन्तु प्रसिद्धव्याकरणस्य उल्लेखः न कुत्रापि उपलभ्यते । रघुवंशमहाकाव्यस्यापि टीका भरतमल्लिकेन लिखिता आसीत् इत्युक्तं सुरेशचन्द्रबनर्जी-महोदयेन । इतोऽपि तेन कुमारभार्गवीयटीकायाः अपि उल्लेखः कृतः यस्य रचयिता अपि भरतमल्लिकः आसीत् । एवञ्च गणपाठनाम्ना अपि कस्यचित् ग्रन्थस्य रचयिता भरतमल्लिकः एव इति तेन प्रोक्तं स्वीये प्रबन्धे ।²⁷

7 उपसंहारः

कारकोल्लासाख्यं ग्रन्थमाश्रित्य मया एम.फिल्. इत्युपाधये शोधकार्यं साधितं वर्तते । तदा एव अस्य आचार्यस्य विषये बहूनि तथ्यानि उपलब्धानि मया । अतः आचार्यस्य विषये अन्ये अपि जानीयुः इति एषणया मया अयं प्रबन्धः विरचितः । अनेन शोधपत्रेण अज्ञातः विद्वान् भरतमल्लिकः सर्वसमक्षमागच्छति इति मत्प्रचेष्टा वर्तते । अतः अस्य आचार्यस्य विषये यत्र यत्र तथ्यमुपलब्धं तेषां संकलनेन निर्मितः प्रबन्धः सर्वेषाम् उपकाराय कल्पेत इत्येव आशा । इति शम् ।

सहायक-ग्रन्थ-सूची

संस्कृत-हिन्दी-ग्रन्थाः

1. भरतमल्लिकः (लेखक), शास्त्री जानकीनाथः (सम्पा०), 1924 ई०, कारकोल्लासः, संस्कृतसाहित्यपरिषद्, कोलकाता.
2. मीमांसकः, युधिष्ठिरः, 1963 ई०, संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास (द्वितीय भाग), भारतीयप्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, अजमेर.

²⁷ बनर्जी सुरेशचन्द्रः, एकवर्णार्थसंग्रहः आफ भरतमल्लिक, दि इण्डियन् हिस्टोरिकल कोयटार्लि, संख्या-36, 1960, पृ० 29

राहुलमाइति:

भरतमल्लिकः तत्कृतयश्च

3. राजा-राधाकान्तादेव-बाहादुरः (लेखक), वसु-वरदाप्रसादः, वसु-हरिचरणश्च (सम्पादकौ), 1967 ई०, शब्दकल्पद्रुमः, 1-5 भाग, चौखम्बा संस्कृत सीरीज अफिस, वाराणसी., उ० प्र०
4. श्रीजीवगोस्वामी, 2006 ई०, हरिनामामृतव्याकरणम् (बालतोषणीटीकासमुपेतम्), (Digitization, Pdf Creation and uploading by Hari Prasad Dasa on 29- November-20:6),
5. अमरसिंहः, 1913 ई०, नामलिङ्गानुसानम् अमरकोश वा, (क्षीरस्वामिवरिचिता अमरकोशोद्धाटनटीकोपताः), ओका कृष्णाजीगोविन्दः, लअ प्रिन्टिङ् प्रेस, पुणे.
6. क्रमदीश्वरः (लेखक), साइनि रञ्जित सिङ् (सम्पा०), 2000 ई०, संक्षिप्तसारव्याकरणम्, भारतीयविद्याप्रकाशन, वाराणसी, उ० प्र०

आङ्गलग्रन्थाः पत्रिकाश्च

1. Julius Eggeling; 1887 A. D., Catalogue of the Sanskrit Manuscript; Library of The India Office, London.
2. Bhattacharya Dinesh Chandra; Bharta Mallika and His Patron; The Indian Historical Quarterly (Vol. XVIII, page- 168); 1942; Law Narendra Nath (Ed.) Kolkata.
3. Banerji Sures Chandra, Ekvarnartha-samgrha of Bharatamallika; The Indian Historical Quarterly (Vol. XXXVI, page- 29); March, 1960; Law Narendra Nath (Ed.) Kolkata.
4. Suresh Chandra Banerji, Dvirupa-Dhavni-Samgraha of Bharatamallika; Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute.
5. Aufrecht, Theodor, 1891 A. D., Cataloguous Catalogorum: An Alphabetical Register of Sanskrit Works and Authors; Leipzig.

बङ्गीयग्रन्थाः

1. हालदारः, गुरुपदः, 2006 ई०, व्याकरण दर्शनर इतिहास, संस्कृत बुक डीपो, कलकाता.
2. शर्ववर्मा, भट्टाचार्यः जानकीनाथः (सम्पा०), 1925 ई०, कलापव्याकरणम्, निवेदितालेन-स्थित-संस्कृतविद्यालयः, कलिकाता.
3. सेनशर्मा, त्रिभङ्गमोहनः (सम्पा०), 1942 ई०, कुलदर्पणम् वैद्यब्राह्मणकुलपञ्जिकासंग्रहः वा (प्रथमखण्डः), न्यू आर्ट प्रेस, बहरमपुर.

पण्डित प्रेमनारायण द्विवेदी की साहित्य-सम्पदा

नौनिहाल गौतम*

सारांश

मध्यप्रदेश के सागर नगर में 05.06.1922 को जन्मे, अनुवाद विधा के पारंगत कवि पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ने लगभग 21000 संस्कृत पद्यों की रचना की है। कवि की संस्कृत में कुछ मौलिक रचनाएँ, कुछ संस्कृत रूपान्तर हैं जबकि अधिकांश प्रसिद्ध कवियों की कृतियों के संस्कृत पद्यानुवाद हैं। उन्होंने हिन्दी में 'शनिचालीसा' और 'अपना सागर ताल बचाओ' कविताएँ भी लिखीं। उन्होंने हिन्दी के प्रायः सभी बड़े कवियों की रचनाओं को संस्कृत में अनूदित किया है। उन्होंने तुलसीदास आदि भारतीय कवियों के साथ ही कम्प्यूशियस आदि विदेशियों की रचनाओं का भी सुललित संस्कृत भाषा में पद्यानुवाद किया। देवकाव्य कहे जाने वाले वैदिक सूक्तों को संस्कृत पद्यों में उतारा तो बुन्देली बोली के देशज रसिया गीतों को भी संस्कृत में सहेज दिया है। मीरा, सुन्दरदास, जगन्नाथ, कबीर, महादेवी वर्मा, नारायण स्वामी, रसखान, हठी, आनन्दधन, रविदास, बुद्ध, सुकरात, कम्प्यूशियस, आगस्टाइन और एमरसन के काव्य और सद्बचनों के पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत संस्कृत पद्य अनुवाद प्रकाशित हैं। उन्हें 2005 ई० में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया और मृत्यूपरान्त 2009 ई० में श्रीमद्रामचरितमानसम् पर साहित्य अकादमी, दिल्ली का अनुवाद पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी रचनाएँ दूर्वा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। वे भक्ति साहित्य के मर्मज्ञ और अनुवाद विधा के पारंगत कवि थे। उन्होंने अपनी लेखनी से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। उनके साहित्य से अनुवाद की विस्तृत भूमिका निर्मित हुई है। उनका शोधग्रन्थ आचार का शास्त्रीय मार्ग प्रशस्त करता है। राधावल्लभ त्रिपाठी ने कवि द्विवेदी जी की प्रशंसा की है।

भारतवर्ष के हृदय प्रदेश मध्यप्रदेश में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर की भूमि सागर नगर में 05.06.1922 को जन्मे, अनुवाद विधा के पारंगत कवि पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ने लगभग 21000 संस्कृत पद्यों की रचना की है। उन्होंने परम्परागत पद्धति से शास्त्री, आचार्य तथा आधुनिक पद्धति से बी.ए., एम.ए. और पीएच.डी. उपाधियाँ प्राप्त कीं। काशी वास के समय उन्होंने स्वामी करपात्री जैसी विभूतियों को देखा-सुना था। विभिन्न शास्त्रों का उन्होंने जिन गुरुओं से ज्ञान प्राप्त किया उनके प्रति वे आजीवन कृतज्ञ बने रहे।

कुछ समय उन्होंने संसार से विरक्त होकर यायावर जीवन व्यतीत किया था। अध्यापन उनकी वृत्ति थी और संस्कृत में पद्यानुवाद करना उन्हें अच्छा लगता था। वे पारम्परिक पण्डित और आशु कवि थे। पारम्परिक पण्डित होते हुए भी वे रूढिवादी नहीं थे। महापुरुषों के प्रति उनके मन में सम्मान था। वे स्वयं भी आचरण एवं व्यवहार से महात्मा थे। भक्त कवियों के प्रति उनके मन में आत्मीय भाव था। उनकी ईश्वर के प्रति भी गहरी आस्था थी। शास्त्रज्ञान के साथ ही वे तैराकी और मल्लविद्या में दक्ष थे। धवल धौतवस्त्रों से परिवेष्टित सुदृढ दीर्घ काया उनके व्यक्तित्व को उभारती थी। गौसेवा और गोदुग्ध का पान उनकी जीवनचर्या के आजीवन अभिन्न अंग रहे। महापुरुषों की संगति और सत्साहित्य के अध्ययन का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे स्वयं अपने मन, वचन और कर्म से शास्त्रीय आचार का पालन करते थे। उनके व्यक्तित्व में भारतीय संस्कारों की गहरी छाप थी। उनका आचरण एवं व्यवहार शास्त्रीय आचारों से अनुशासित था।

* सहा० आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ० हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म०प्र०)

उन्होंने हिन्दी के प्रायः सभी बड़े कवियों की रचनाओं को संस्कृत में अनूदित किया है। उन्होंने तुलसीदास आदि भारतीय कवियों के साथ ही कन्फ्यूशियस आदि विदेशियों की रचनाओं का भी सुललित संस्कृत भाषा में पद्यानुवाद किया। देवकाव्य कहे जाने वाले वैदिक सूक्तों को संस्कृत पद्यों में उतारा तो बुन्देली बोली के देशज रसिया गीतों को भी संस्कृत में सहेज दिया है।

उन्हें 2005 ई० में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया और मृत्यूपरान्त 2009 ई० में श्रीमद्रामचरितमानसम् पर साहित्य अकादमी, दिल्ली का अनुवाद पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी रचनाएँ दूर्वा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। वे भक्ति साहित्य के मर्मज्ञ और अनुवाद विधा के पारंगत कवि थे। उन्होंने अपनी लेखनी से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। संस्कृत काव्य परम्परा के गंभीर अध्येता पं० द्विवेदी ने गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य को तो जैसे हृदयंगम ही कर लिया था। सत्साहित्य के वे गंभीर अध्येता थे। पं० द्विवेदी ने संस्कृत की सुदीर्घ काव्य परम्परा के गंभीर अध्येता होते हुए भी विदेशी सत्साहित्य को पढ़ा, समझा और परखा था। वे आधुनिकता को निरखते, परखते और भली-भाँति बूझते थे। भारतीय ज्ञान-परंपरा के मौन साधक द्विवेदी जी की अनुवाद कार्य में प्रवृत्ति 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' की तरह थी। उनका अधिकतर साहित्य मृत्यूपरान्त प्रकाशित हुआ जबकि कुछ अभी अप्रकाशित है। वे 28 अप्रैल 2006 को ब्रह्मलीन हो गए।

1 साहित्य सम्पदा

कवि पं० प्रेमनारायण द्विवेदी की संस्कृत में कुछ मौलिक रचनाएँ, कुछ संस्कृत रूपान्तर हैं जबकि अधिकांश प्रसिद्ध कवियों की कृतियों के संस्कृत पद्यानुवाद हैं। उन्होंने हिन्दी में 'शनि चालीसा' और 'अपना सागर ताल बचाओ' कविताएँ भी लिखीं। प्रकाशन के क्रम से उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

1.1 श्रीमद्रामचरितमानसम्

इसकी रचना 1977 ई० में पूर्ण हो चुकी थी किन्तु इसका प्रथम प्रकाशन 2005 ई० में हो सका। यह गोस्वामी तुलसीदास रचित श्रीरामचरितमानस का संस्कृत में पद्यानुवाद है। श्रीमद्रामचरितमानसम् के बालकाण्ड में 44, अयोध्याकाण्ड में 39, अरण्यकाण्ड में 10, किष्किन्धाकाण्ड में 6, सुन्दरकाण्ड में 10, लंकाकाण्ड में 24 और उत्तरकाण्ड में 24 सर्ग हैं। कुल सर्ग 157 तथा पद्यों की संख्या 7814 है।

ग्रन्थारम्भ में कवि ने 25 पद्यों में मंगलाचरण, सज्जनवन्दन किया है। भूमिका के रूप में डॉ० रमाकान्त शुक्ल का प्रास्ताविक तथा कवि का निवेदन प्रकाशित है। अनुवाद में दोहों की संख्या निर्दिष्ट की गयी है। इसमें स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, अनुष्टुप्, आर्या, मालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, वंशस्थ, रथोद्धता, भुजंगप्रयात, तोटक, प्रहर्षिणी, पंचचामर, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, शालिनी, पुष्पिताग्रा, स्वागता, शिखरिणी, गीतिका, हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ने गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित रामचरितमानस को अनुवाद का आधार बनाया है। यह सरस, रोचक और मर्मस्पर्शी अनुवाद है। भाषा प्रवाहपूर्ण है। शब्दचयन उपयुक्त है। शब्दाडम्बर का अभाव है। भावाभिव्यक्ति को प्रधानता दी गयी है। संस्कृत परम्परा के गम्भीर अध्येता पं० प्रेमनारायण द्विवेदी मूल ग्रन्थ के कथ्य की तह तक जाकर उसे अनुवाद में उतारने में सफल रहे हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-
रामचरितमानस-

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू ॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥¹

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

सतां समाजोऽखिलमङ्गलाय समुज्ज्वलो जङ्गमतीर्थराजः।
मन्दाकिनी यत्र च रामभक्तिः सरस्वती ब्रह्मविचारणा च ॥²

रामचरितमानस-

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई ॥³

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

हर्म्यस्य रामायुधराजितस्य शोभा प्रवक्तुं वचनैर्न शक्यते।
नवं सुरम्यं तुलसीकदम्बकं तत्रैव पश्यन् हनुमान् ननन्द च ॥⁴

2 काव्यसङ्ग्रहः

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली की लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला के अन्तर्गत क्रमांक-35 पर काव्यसङ्ग्रह ग्रन्थ प्रकाशित है। भूमिका के रूप में संस्थान के कुलपति और प्रधान संपादक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का पुरोवाक् और डॉ. ऋषभ भारद्वाज का सम्पादकीय है। इस ग्रन्थ में चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड स्तुतिकुसुममाला है। इसमें कवि की 28 स्तुतिपरक मौलिक रचनाएँ संकलित हैं। इनमें गणेश, शिव, दुर्गा, सरस्वती, सूर्य, हनुमान्, राम, कृष्ण आदि देवों के अष्टक, स्तुतियाँ हैं। इन स्तुतियों में लय और गत्यात्मकता के साथ ही ये गेयता भी है। इन्हें कुछ प्रसिद्ध गीतों की तर्ज पर भी गाया जा सकता है। स्वयं द्विवेदी जी अपने शिष्यों को ये स्तुतियाँ गाकर सुनाते थे, द्रष्टव्य-

¹ बालकाण्ड, 1.2

² श्रीमद्रामचरितमानसम्, पृ.-9

³ सुंदरकाण्ड, दोहा-5

⁴ श्रीमद्रामचरितमानसम्, पृ.-478

भज विश्वपतिं कमलारमणं
भज केशिनिषूदनमाशु हरिम् ।
भज माधवमार्तिहरं सततं
यदि वाञ्छसि जन्म निजं सफलम् ॥⁵

द्रुतमातपतापितभूमितले नहि धाव हरे नहि धाव हरे!
नवनीतमहो नयसे नय भो द्रुतमेहि पुनर्विहसन् निकटे ।
रुचिरं नवनीतयुतं स्वमुखं किल दर्शय सञ्चितपापहरम्
भवसिन्धुगतं परिपाहि पुनः किल देहि सुखं हर मे विपदम् ॥⁶

द्वितीय खण्ड स्फुटकाव्य है। इसमें कवि की विभिन्न विषयों पर 84 मौलिक रचनाएँ संकलित हैं। ये कविताएँ सहृदयों के हृदयाह्लाद तथा समाज के मार्गदर्शन की सामर्थ्य रखती हैं। इनमें ग्रीष्मादि ऋतुओं, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों, कार्गिल युद्ध जैसे संवेदनशील और चुनाव आदि समसामयिक विषयों पर रचनाएँ हैं, द्रष्टव्य-

कार्गिलक्षेत्रं कपटाद् रिपुणा निजाधिकारे नीतम् ।
तान् दूरयितुं देशशासकैः रक्षाबलमानीतम् ॥
तत्र शतघ्नीधरा निगूढाः प्रतिपक्षा विचरन्ति ।
गुप्तमदृश्याः सुदृढकोष्ठकाद् गुलिकाभिर्वर्षन्ति ॥⁷

काचकलितकुतुपात् किल मदिरां, पीत्वा जनः प्रमाद्यति रे!
को वा शृणुयाद् देशविपत्तिं, जनप्रतिनिधिः पश्यति रे! ॥⁸

तृतीय खण्ड अनूदितलघुकाव्यम् है। इसमें कवि ने इटालियन कवि ग्योवन्नी रैबॉनी आदि विभिन्न कवियों की रचनाओं का संस्कृत पद्यानुवाद किया है। रसिया गीत 'अकेली घेरी बन में आय, श्याम तेनें कैसी ठानी रे' का पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

एकाकिनीं श्याम वने कथं मां रुणत्सि मानिन्निवलां हि बालाम् ।
वृन्दावनं यामि ततो निवृत्ता, ह्येष्यामि वर्षावनमेव भूयः ॥⁹

चतुर्थ खण्ड वैदिकसूक्तसौरभम् है। इसमें कवि ने छः सूक्तों का संस्कृत पद्यानुवाद किया है। गुरु मुख से वेद-वेदाङ्ग का विधिवद् अध्ययन करने वाले द्विवेदी जी ने पुरुषसूक्त को अनुवाद में बोधगम्य बना दिया है। द्रष्टव्य-

ब्रह्माण्डमस्माच्च विराद्धरूपं, ब्रह्मा ततोऽभूत् पुरुषः परो यः ।
ससर्ज भूमिं च पुरश्च सर्वास्तासु प्रविष्टः स्वपुरीषु जीवः ॥¹⁰

⁵ काव्यसङ्ग्रहः, पृ.-27

⁶ उपरिवत्, पृ.-39

⁷ युद्धं ततः प्रवृत्तम्, श्लोक 2, 4, पृ.-57

⁸ जनः प्रमाद्यति, पृ.-107

⁹ एकाकिनीं, काव्यसंग्रह, पृ.-271

¹⁰ काव्यसंग्रह, पृ. 279

3 सप्तशतीसङ्ग्रहः

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली की लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला के अन्तर्गत क्रमांक-35 पर सप्तशतीसङ्ग्रह ग्रन्थ प्रकाशित है। भूमिका के रूप में संस्थान के कुलपति और प्रधान संपादक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का पुरोवाक् और डॉ० ऋषभ भारद्वाज का सम्पादकीय है। इस ग्रन्थ में दो सप्तशतियाँ प्रकाशित हैं- सदुक्तिसप्तशती और सौन्दर्यसप्तशती।

3.1 सदुक्तिसप्तशती

महापुरुष प्रकाशपुंज की तरह होते हैं। वे ज्ञान रूपी प्रकाश से लोक को प्रकाशित करते हैं। पुण्यभूमि भारत में वाल्मीकि, व्यास, महावीर, बुद्ध, रामानुज, निम्बार्क, वल्लभाचार्य, मध्व, चैतन्य, ज्ञानेश्वर, नानक, कबीर, सूर, तुलसी, तुकाराम, रामदास, रामतीर्थ, रामकृष्ण-परमहंस, विवेकानन्द आदि महापुरुष हुए हैं। इसी तरह बाहर भी सुकरात, प्लेटो, अरस्तु, फ्रांसिस, लात्सो, कन्प्यूशियस आदि महापुरुषों ने ज्ञान का प्रकाश फैलाया है। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने महापुरुषों की सदुक्तियों को सन्तवाणी नाम से संग्रहीत किया था। द्विवेदी जी ने उनमें से 706 लोकोपयोगी सदुक्तियों का संस्कृत में पद्यानुवाद कर 'सदुक्तिसप्तशती' नाम दिया है। पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद द्रष्टव्य है-

महत्सङ्गं सदा कुर्यात् सुखार्थमिह बुद्धिमान् ।
महावृक्षे खगाश्छायां लभन्तेऽथ फलानि च ॥
अविश्वासी चलो भीरुश्चिन्तावानिन्द्रियानुगः ।
संशयात्मा कदाचित् किं स्वप्नेऽपि सुखवान् भवेत् ॥¹¹

3.2 सौन्दर्यसप्तशती

सप्तशती परम्परा में गाथासप्तशती और आर्यासप्तशती लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। कवि बिहारी ने बिहारीसतसई से जो ख्याति पायी, वह प्रसिद्ध ही है। यह सौन्दर्यसप्तशती बिहारी की सतसई का संस्कृत पद्यानुवाद है। इसकी संक्षिप्त भूमिका स्वयं द्विवेदी जी ने लिख रखी थी। अनुवाद करते समय द्विवेदी जी मूल काव्य में निहित अर्थ की तह तक जाते हैं। कवि की विवक्षा अर्थात् कवि के कथन के अभिप्राय को आत्मसात् करके ही अनुवाद किये गये हैं। अनुवाद सहज भाव से किये गये हैं। द्विवेदी जी ने शिष्यों को बताया था कि कवि हृदय में छन्द सहज उतरता है, जबकि खींचतान से कृत्रिम लगता है।

दुरति न कुच विच कंचुकी, चुपरी सारी सेत ।
कवि आँखन के अरथ लौ, प्रगटि दिखाई देत ॥

बिहारी के इस दोहे का पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

¹¹ सदुक्तिसप्तशती, श्लोक-591, 592

विशुभ्रशाट्यां नवचोलवस्त्रे स्थूलावुरोजौ परिदीव्यतः स्म ।
कविप्रयुक्तेषु यथा सुवर्णेष्वर्थः स्वयं प्रस्फुटितोऽस्ति काव्ये ॥¹²

कनक कनक तैं सौ गुनी मादकता अधिकाय ।
उहि खाये बौरातु है, इहिं पाएँ बौराई ॥

इसके पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद में मूल काव्य का सौन्दर्य और शब्दालंकार सुरक्षित बना रहा है-

उक्तं ध्रुवं शतगुणं कनकान्मदस्य संवर्धनाय कनकं ह्यधिकं जगत्याम् ।
एकं नरस्तु मदवान् किल भक्षयित्वा लब्ध्वैव चैकमपरं भवति प्रमत्तः ॥¹³

4 तुलसीसूरकाव्यसङ्ग्रहः

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली की लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला के अन्तर्गत क्रमांक-70 पर तुलसीसूरकाव्यसङ्ग्रहः ग्रन्थ प्रकाशित है। भूमिका के रूप में संस्थान के कुलपति और प्रधान संपादक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का पुरोवाक् और डॉ. ऋषभ भारद्वाज का सम्पादकीय है। इस ग्रन्थ में दो खण्ड हैं जिनमें हिन्दी कवि तुलसीदास और सूरदास के काव्यों के संस्कृत पद्यानुवाद प्रकाशित हैं। मूल काव्य के तत्सम शब्दों को ग्रहण करने से द्विवेदी जी के अनुवाद में मूल काव्य का रसास्वाद किया जा सकता है। कहीं कहीं मूलकाव्य की लय में ही अनुवाद को भी पढ़ा जा सकता है। अनुवाद करने का उद्देश्य लोकप्रसार है अतः भाषा इतनी सरल है कि जिन पाठकों को प्रसंग पहले से ज्ञात है, वे संस्कृत में मूलकाव्य का भाव समझ सकते हैं।

प्रथम खण्ड- तुलसीकाव्यसङ्ग्रहः है। इस खण्ड में भक्तकवि गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं के पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत संस्कृत पद्य अनुवाद विनयपत्रिका, कवितावलिः, श्लोकावलिः, श्रीजानकीमङ्गलम्, श्रीपार्वतीमङ्गलम्, वैराग्यसन्दीपनी, वरवैरामायणम् और श्रीमद्हनुमद्वाहुकम् प्रकाशित हैं।

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्याणमय सुरतरु तुलसी तोर ॥
राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरै जो चाहसि उजियार ॥

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

श्रीजानकी यस्य विभाति वामतः, श्रीलक्ष्मणो दक्षिणतश्च राजते ।

¹² सौन्दर्यसप्तशती, श्लोक-189

¹³ उपरिवत्, श्लोक-192

ध्यातश्च यो मङ्गलमोदशान्तिदः, स एव रामस्तुलसीसुरद्रुमः ॥
रामनाममणिदीपं दधत स्वरसनाद्वारदेहल्याम् ।
अन्तर्बहिः प्रकाशं यदि वाञ्छथ तद् वदति तुलसी ॥¹⁴

त्वया सह वृषारूढो यदा यास्यति धूर्जटिः ।
हसिष्यन्ति नरा नार्यो मुखमाच्छाद्य पाणिभिः ॥
कुतर्ककोटिभिश्चेत्यं वदुर्वक्ति यथारुचि ।
न शैल इव वातेन चचालाऽद्रिसुतामनः ॥¹⁵

द्वितीय खण्ड- सूरकाव्यसङ्ग्रहः है। इस खण्ड में भक्तकवि सूरदास की रचनाओं के पं० प्रेम-नारायण द्विवेदी कृत संस्कृत पद्य अनुवाद सूररामचरितावलिः और सूरविनयपत्रिका प्रकाशित हैं।

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो ।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ।
एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परो ।
पारस गुण अवगुण नहीं चितवत कंचन करत खरो ।

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

चित्ते कदाप्यवगुणान् न निधेहि मे त्वं
ख्यातो यथाऽसि समदृक् च तथा विधेहि ।
पूजास्थले प्रणिहितं खलु लोहमेकं
दृष्टं जनैर्बधिकगेहगतं तथान्यत् ॥
न स्पर्शरत्नमिह नाथ करोति भेदं
स्वर्णं करोति सकलं सममेव सद्यः ॥¹⁶

5 विविधकाव्यसङ्ग्रहः

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली की लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला के अन्तर्गत क्रमांक-83 पर विविधकाव्यसङ्ग्रहः ग्रन्थ प्रकाशित है। भूमिका के रूप में संस्थान के कुलपति और प्रधान संपादक प्रो. परमेश्वर नारायण शास्त्री का पुरोवाक्, कवि-परिचय और सम्पादक डॉ. ऋषभ भारद्वाज का प्रास्ताविक है। इस ग्रन्थ में चार खण्ड हैं जिनमें भारतीय और विदेशी कवियों के काव्यों के संस्कृत पद्यानुवाद प्रकाशित हैं।

द्विवेदी जी ने प्रतिष्ठित कवियों के काव्यों का ही अनुवाद किया है जो उनकी साहित्यिक रुचि का भी परिचायक है। अनुवाद के लिए चुने गये काव्य भी अनुवादक की साहित्यिक

¹⁴ श्लोकावलिः, श्लोक 1, 6

¹⁵ श्रीपार्वतीमङ्गलम्, श्लोक 57-58

¹⁶ तुलसीसूरकाव्यसङ्ग्रहः, पृ.-329

रुचि को प्रकट करते हैं। द्विवेदी जी के अनुवाद में मूल काव्य का रसास्वाद किया जा सकता है। कहीं कहीं मूलकाव्य की लय में ही अनुवाद को भी पढ़ा जा सकता है। अनुवाद करने का उद्देश्य लोकप्रसार है, अतः भाषा इतनी सरल है कि जिन पाठकों को प्रसंग पहले से ज्ञात हैं, वे संस्कृत में मूलकाव्य के अर्थ तक पहुँच सकते हैं। कहीं तो अनुवाद मूल से भी बेहतर प्रतीत होता है। सहृदय स्वयं मूल व अनुवाद का एक साथ आस्वाद कर इसका अनुभव कर सकते हैं। संस्कृत के विशाल शब्दकोष के ज्ञान से द्विवेदी जी के लिए अनुवाद कार्य सुकर रहा।

प्रथम खण्ड- रहीमकाव्यसुषमा है। इस खण्ड में रहीम की रचनाओं के पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत संस्कृत-पद्य अनुवाद दोहावली, रहीम-सोरठा, रहीमशृङ्गारसोरठा, रहिमानवरवै, नगरशोभा, घनाक्षरीछन्दांसि प्रकाशित हैं। रहीमकाव्यसुषमा पर द्विवेदी द्वारा लिखित पाँच पृष्ठ का निवेदनम् भी आरम्भ में छपा है। मूलकाव्य और अनुवाद का एक साथ पाठ साहित्यरसिकों को अपूर्व मनस्तोष प्रदान करता है।

कहु रहीम कैसे बने, केर बेर को संग।
वे रस डोलत आपने, इनके फाटत अंग ॥

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

कदलीबदरीसङ्गः कथं क्षेमाय कल्पते।
दोलायते रसेनैका विदीर्णाङ्गी तथापरा ॥¹⁷

द्वितीय खण्ड- अश्रुकाव्यम् है। इस खण्ड में जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' काव्य का पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत संस्कृत पद्य अनुवाद अश्रुकाव्यम् प्रकाशित है। घनीभूत पीड़ा का काव्य के माध्यम से प्रकटीकरण है- आँसू काव्य। अनुवादक द्विवेदी जी मूलकाव्य में विद्यमान भावप्रवणता को संस्कृत में उतारने में सफल रहे हैं।

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई ॥

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

सा मे पीडा घनीभूता, मस्तके स्मृतिवत् स्थिता।
दुर्दिने बाष्पधारेवाधुना वर्षितुमागता ॥¹⁸

तृतीय खण्ड- स्फुटकाव्यानि है। इस खण्ड में मीरा, सुन्दरदास, जगन्नाथ, कबीर, महादेवी वर्मा, नारायण स्वामी, रसखान, हठी, आनन्दघन, रविदास, बुद्ध, सुकरात, कन्फ्यूशियस,

¹⁷ रहीमदोहावली, श्लोक-34

¹⁸ अश्रुकाव्यम्, 20

आगस्टाइन और एमरसन के काव्य और सद्वचनों के पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत संस्कृत पद्य अनुवाद प्रकाशित हैं।

निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

समीपं निन्दकं रक्ष कारयित्वाङ्गणे कुटीम् ।
विना तोयं विना फेनं स्वभावं क्षालयत्यसौ ॥¹⁹

चतुर्थ खण्ड- गद्यम् है। इस खण्ड में सात आलेख हैं। इनमें पं० प्रेमनारायण द्विवेदी का साहित्य-समीक्षक रूप दृष्टिगोचर होता है। आलोचना पर उनकी लेखनी कम ही चली किन्तु उनके समीक्षा के मानदण्ड उच्च थे। वे रामायण को काव्य का आदर्श रूप मानते थे। उन्होंने 'भारतीयकाव्यशास्त्रपरम्परा प्रयोजनं सौन्दर्यञ्च' लेख में रामायण के लिए लिखा है- 'काव्यमिदं गभीरं समग्रकाव्यगुणसम्पन्नम् अतिमधुरं च वर्तते।'²⁰

6 श्रीमद्हनुमद्वाहुकम्

श्रीमद्हनुमद्वाहुकम् में भूमिका के रूप में सम्पादक डॉ. ऋषभ भारद्वाज का निवेदन और कवि-परिचय है। द्विवेदी जी ने तुलसीदास जी के प्रायः सभी काव्यों का अनुवाद किया है। उनमें से एक है- हनुमद्वाहुक। इसके अनुवाद के अन्त में द्विवेदी जी ने गोस्वामी तुलसीदास के प्रति श्रद्धा प्रकट की है। इस पुस्तक में पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत पद्यानुवाद, उसके नीचे गोस्वामी तुलसीदास के हनुमद्वाहुक का मूल पाठ और फिर हिन्दी भावार्थ दिया गया है। इसमें पाठक मूल हिन्दी पाठ, संस्कृत पद्यानुवाद और हिन्दी भावार्थ का एक साथ आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। द्विवेदी जी की भी भावना इसी प्रकार के द्विभाषी (मूल व अनुवाद एक साथ) संस्करण की रही होगी। आस्था तर्क से परे हुआ करती है। स्वयं द्विवेदी जी ने इसके पाठ को कष्टनिवारण का साधन बतलाया था। भावपूर्ण मन से इसका उच्चारण एक अपूर्व ऊर्जा का संचार करता है। मल्लविद्या के अभ्यासी होने के कारण उनका श्री हनुमान् जी महाराज के प्रति आस्थावान् होना स्वाभाविक ही है। अनुवाद के लिए चुने गये काव्य भी अनुवादक की साहित्यिक रुचि को प्रकट करते हैं। द्विवेदी जी के अनुवाद में मूल काव्य का रसास्वाद किया जा सकता है। पद्यानुवाद में गेयता है। कहीं कहीं मूलकाव्य की लय में ही अनुवाद को भी पढ़ा जा सकता है। संस्कृत के विशाल शब्दकोष के ज्ञान से द्विवेदी जी के लिए अनुवाद कार्य सुकर रहा। साहित्यरसिक अनुवाद और मूलकाव्य देखें।

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी कृत अनुवाद-

¹⁹ विविधकाव्यसङ्ग्रहः, पृ.-104

²⁰ उपरिक्त, पृ.-224

सगौरीकः सानुचरः शूलपाणिर्लोकपालाः
 सीतारामलक्ष्मणाश्च सदानुकूलास्तस्य
 लोकस्य परलोकस्य कस्यापि भूमिपालस्य
 तुलसी वदति हृदये लालसा न तस्य ।
 बन्धमोक्षस्वामिनः करुणामहार्णवस्य
 केशरिक्शोरकस्य कृपया कपीशस्य
 देवसिद्धमुनयस्तं बालमिव लालयन्ति
 यस्य हृदि हनुमतो हुंकारो वायुपुत्रस्य ॥²¹

मूल पाठ-

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,
 लोकपाल सकल लखन राम जानकी ।
 लोक परलोक को बिसोक सो तिलोक ताहि,
 तुलसी तमाइ कहा काहू बीर आनकी ।
 केसरीकिसोर बंदीछोरेके नेवाजे सब,
 कीरति विमल कपि करुनानिधान की ।
 बालक ज्यों पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको,
 जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान की ॥

7 पद्यकादम्बरी

यह महाकवि बाणभट्ट की प्रसिद्ध गद्य रचना कादम्बरी का पद्य रूपान्तर है किन्तु यह रचना अभी अपूर्ण प्राप्त हुई है। इसमें कादम्बरी कथामुख तक के भाग को शीर्षकों के साथ लगभग 300 पद्यों में रूपान्तरित किया गया है। यह देववाणी परिषद्, दिल्ली से प्रकाशित अर्वाचीनसंस्कृतम् पत्रिका में 2021 में प्रकाशित हुई है। ग्रन्थारम्भ में ही द्विवेदी जी लिखते हैं-

‘प्रणम्य वाणीं मनसा प्रवीणां मनःस्थितां वादयतीं च वीणाम् ।
 बाणेन भावैर्ललितैः प्रवृद्धां कादम्बरीं तां रचयामि पद्यैः ॥’

8 अप्रकाशित साहित्य

कवि पं० प्रेमनारायण द्विवेदी का कुछ साहित्य अभी अप्रकाशित है। अप्रकाशित रचनाओं में श्रीहनुमद्गद्यकाव्यम् और विवाहपद्धतिः नाम ज्ञात हैं। अप्रकाशित साहित्य उनके पुत्र-पौत्रों के पास है। उनके पौत्र श्री सूर्यकान्त द्विवेदी ने पद्यकादम्बरी को खोजकर प्रकाशित करवाया है। कुछ स्फुट पद्यों के उल्लेख मिले किन्तु वे पद्य प्राप्त नहीं हो सके हैं। कवि द्विवेदी ने

²¹ श्रीमद्हनुमद्गाहकम्, छन्द-13

विद्यार्थियों के आग्रह पर श्लोक अन्त्याक्षरी प्रतियोगिताओं के लिए उन्हें विभिन्न अक्षरों से आरम्भ होने वाले पद्य भी रचकर दिये थे। वे अप्रकाशित हैं। जैसे द्विवेदी जी ने अध्यापन काल में श्री शक्ति मिश्र को निम्नलिखित श्लोक रचकर दिये थे-

णकारो मध्यभागे च प्रणवस्य विराजते ।
 प्रणवाज्जगदुत्पन्नं विभ्राजति नवं नवम् ॥
 णकारः शोभते चान्ते वीणावाद्ये मनोहरः ।
 ऋणन्ती शारदा वीणां कवीनां हृदि राजते ॥
 णकारो जैनमन्त्रेषु सर्वदादौ सुशोभते ।
 प्रणवस्य तथा मध्ये सोऽयं शान्तिप्रदो मतः ॥
 णकारश्चैव शस्त्राणां झणत्कारे प्रयुज्यते ।
 श्रूयते च झणत्कारो रणमध्ये भयावहः ॥

9 वैष्णवपुराणों में आचार-समीक्षा

पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ने 1964 में डॉ. वनमाला भवालकर के निर्देशन में पीएच.डी. उपाधि हेतु 'वैष्णवपुराणों में आचार-समीक्षा' शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया था। इसे पुस्तकाकार में 2018 में प्रकाशित किया गया है। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का प्राक्कथन, प्रो. कुसुम भूरिया की शुभाशंसा, प्रो. रमाकान्त पाण्डेय का पुरोवाक्, डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंहदेव की शुभाशंसा, संपादक डॉ. ऋषभ भारद्वाज का निवेदन और पं० प्रेमनारायण द्विवेदी का जीवन-परिचय दिया गया है।

इस पुस्तक में बारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में पुराण समालोचना, द्वितीय अध्याय में आचार समालोचना के अन्तर्गत आचार की परिभाषा और महत्त्व आदि हैं। तृतीय अध्याय में सदाचार के प्रेरक तत्त्वों का निरूपण है। चतुर्थ अध्याय में आचार के मूल तत्त्वों में सत्य, अहिंसा, शौच, अस्तेय, दम या मनःसंयम या इन्द्रिय संयम, दया, अनसूया, अकाम, अक्रोध और अलोभ का निरूपण है। पंचम अध्याय में वर्णों के आचार के अन्तर्गत वर्णों के आचारों को प्रोत्साहन, चारों वर्णों के आचार, आचारों से वर्णों का उत्थान, आचार के उत्कर्ष से अन्य जन्म में भी उच्च वर्ण प्राप्ति, कुत्सित आचारों से उच्च वर्ण से पतन, वर्णों का परस्पर व्यवहार और शिष्टाचार का निरूपण है। षष्ठ अध्याय में ब्रह्मचर्याश्रम के आचार के अन्तर्गत अध्ययन में आचार की आवश्यकता, ब्रह्मचारी के नित्य आचार, ब्रह्मचर्य साधन के नियम और ब्रह्मचारी के गुण आदि का निरूपण है। सप्तम अध्याय में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के आचार के अन्तर्गत वानप्रस्थ और तप का महत्त्व, यम, नियम और योगादि आचार, संन्यास ग्रहण में अपेक्षित आचार, संन्यासियों के विभाजन में आचार का महत्त्व, संन्यासी का सांसारिक आचार, चिन्तन, अव्यक्त लिंग संन्यासी, परोपकार आदि का निरूपण है। अष्टम अध्याय में गृहस्थाश्रम के नित्य आचारों का निरूपण है। इसमें गृहस्थाश्रम का आचार की दृष्टि से महत्त्व, शौचादि कृत्य, देवपूजन, पंच महायज्ञ, भोजन, अर्थोपार्जन और शयन आदि को बताया गया है। नवम अध्याय में गृहस्थाश्रम के पारिवारिक आचार तथा सामान्य शिष्टाचार हैं। इसमें आचार पालन में दम्पती, गृहिणी के कर्तव्य, माता-पिता के प्रति पुत्रों का

आचार, परिवार में पुरुष वर्ग का नारी के प्रति कर्तव्य, रक्षण, आदर, अवध्यता, सामाजिक सच्चरित्रता, पुरुष वर्ग की सच्चरित्रता, गृहस्थ के सामान्य शिष्टाचार और निषिद्ध आचार, गृहस्थ के रहन-सहन वेष-भूषा आदि का वर्णन है। दशम अध्याय में संस्कार, मृत्यु, श्राद्ध, प्रायश्चित्त संबंधी नैमित्तिक आचार हैं। एकादश अध्याय में अन्य नैमित्तिक व आध्यात्मिक आचारों का निरूपण है जिनमें यज्ञ, दान, पूर्त, व्रत, तीर्थ, आध्यात्मिक आचारों का वर्णन है। द्वादश अध्याय में उपसंहार है। अन्त में आधार ग्रन्थ सूची दी गयी है।

द्विवेदी जी दुरूह विषयों को भी सरल रूप में प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। वैदिक साहित्य, धर्मशास्त्र, आर्षकाव्य, पुराण साहित्य और अन्य ग्रन्थों के सन्दर्भों से यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक तथा उपादेय बन गया है। विभिन्न प्रकार की कुण्ठाओं और अतिचार से पीड़ित समाज को प्रामाणिक शास्त्रीय मार्ग दिखाने में समर्थ यह ग्रन्थ नितान्त उपयोगी होने से पठनीय और संग्रहणीय है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इसके प्राक्कथन में लिखा है कि 'इस कृति में उन्होंने वैष्णव पुराणों में प्रतिपादित आचारों की सर्वांगीण विवेचना तो की ही है, सदाचार के प्रेरक तत्त्वों तथा मूल तत्त्वों की गवेषणा भी करते हुए आचारमूलक जीवन के निष्कर्ष तथा ध्येयों की भी पहचान करायी है।'

10 शनिचालीसा

संतों, महापुरुषों के हृदय अत्यन्त कोमल होते हैं, वे दूसरों के दुःख को देखकर दुःखी हो जाते हैं। दीन-दुःखियों के कष्ट-निवारण के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते हैं। पूज्य पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ऐसे ही महापुरुष रहे हैं। वे जितने बड़े अध्येता, विद्वान् और ज्योतिष आदि शास्त्रों के पारंगत पंडित थे, उतने ही कोमल हृदय थे। दीन-दुःखियों की पीड़ाओं से वे मानो स्वयं कष्ट का अनुभव करते थे। दीन-दुःखी जनों के कष्ट-निवारण के लिए उन्होंने अपने ज्ञान को और काव्य रचने की क्षमता को माध्यम बनाया। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कुछ क्रूर ग्रह लोगों को भारी पीड़ा देने वाले होते हैं किन्तु उस पीड़ा से बचने के उपाय भी शास्त्रों में बताये गये हैं। शनि ऐसे ही ग्रह हैं जिनके नाम से भी लोग भयभीत हो जाते हैं। शनि के प्रकोप से बचने का सरल उपाय है- 'शनि चालीसा' का पाठ। इसी उपाय को सर्वसुलभ करने के लिए महान् साधक और ज्योतिषविद् पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ने शास्त्रों के गहन अनुशीलन पर आधारित इस 'शनिचालीसा' की रचना की है।

'अपना सागर ताल बचाओ' - यह एक लम्बी कविता है। यह सागर के प्रमुख जल-स्रोत रहे तालाब 'लाखा बंजारा झील' के पुनरुद्धार के लिए कवि द्वारा किया गया काव्यमय जन आह्वान है। यह अप्रकाशित है। इसका संगीतमय गायन हो सकता है।

11 पं० प्रेमनारायण द्विवेदी पर हुए शोधकार्य

कवि की रचनाओं पर डॉ. ऋषभ भारद्वाज ने शोध कार्य किया है। यह शोधप्रबन्ध 'संस्कृत के अर्वाचीन साहित्य के विकास में पं० प्रेमनारायण द्विवेदी का योगदान' शीर्षक से पुस्तकाकार में प्रकाशित है। इस पुस्तक का प्रकाशन सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली से हुआ है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन और केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर में भी द्विवेदी जी पर शोधकार्य हुए हैं।

शास्त्रीय परंपरा के अध्ययन और भारतीय परंपरा के संस्कारों से सम्पन्न पं० प्रेमनारायण द्विवेदी ने संस्कृत साहित्य को मौलिक और अनूदित साहित्य से समृद्ध किया है। राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास भाग- 4 (पृ. 2228-2230) में कवि द्विवेदी जी की प्रशंसा की है। उनके साहित्य से अनुवाद की विस्तृत भूमिका निर्मित हुई है। उनका शोधग्रन्थ आचार का शास्त्रीय मार्ग प्रशस्त करता है। उनके काव्य के मानदण्ड उच्च हैं और रामायण के आदर्श के अनुगामी हैं।

सहायक-ग्रन्थ-सूची

1. आचार्य विश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणिः, डॉ० नगेन्द्रः(सम्पा०), ध्वन्यालोकः, ज्ञानमण्डल-लिमिटेड, वाराणसी, 1996
2. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, शुक्ल डॉ० रमाकान्त (सम्पा०), श्रीमद्रामचरितमानसम्, देववाणी परिषद्, नई दिल्ली, 2005 ई०
3. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, भारद्वाज डॉ० ऋषभ (सम्पा०), काव्यसङ्ग्रहः (पं० प्रेमनारायणद्विवेदिरचनावलिः प्रथमो भागः), राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, नई दिल्ली, 2012 ई०
4. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, भारद्वाज डॉ० ऋषभ (सम्पा०), सप्तशतीसङ्ग्रहः (पं० प्रेमनारायणद्विवेदिरचनावलिः द्वितीयो भागः), राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, नई दिल्ली, 2012 ई०
5. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, भारद्वाज डॉ० ऋषभ (सम्पा०), तुलसीसूरकाव्यसङ्ग्रहः (पं० प्रेमनारायणद्विवेदिरचनावलिः तृतीयो भागः), राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, नई दिल्ली, 2013 ई०
6. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, भारद्वाज डॉ० ऋषभ (सम्पा०), विविधकाव्यसङ्ग्रहः (पं० प्रेमनारायणद्विवेदिरचनावलिः चतुर्थो भागः), राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, नई दिल्ली, 2017 ई०
7. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, भारद्वाज डॉ० ऋषभ (सम्पा०), श्रीमद्-हनुमद्वाहुकम्, एजुकेशनल बुक सर्विस, नई दिल्ली, 2018 ई०
8. द्विवेदी पं० प्रेमनारायण, भारद्वाज डॉ० ऋषभ (सम्पा०), श्रीमद्-हनुमद्वाहुकम्, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018 ई०
9. भारद्वाज, डॉ० ऋषभ, संस्कृत के अर्वाचीन साहित्य के विकास में पं० प्रेमनारायण द्विवेदी का योगदान, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2014 ई०
10. द्विवेदी, पं० प्रेमनारायण, 'पद्यकादम्बरी', अर्वाचीनसंस्कृतम् पत्रिका, अंक : 168-171, 2021 ई०, पृ. 205-241, देववाणी परिषद्, दिल्ली.
11. त्रिपाठी, राधावल्लभ, संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास खण्ड-4, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2018 ई०

A Biographical Study on the Forgotten Sanskrit Scholar: Baboo Krishnanandan Singh

Amit Kumar Chandrana*

Abstract

The present paper attempts to discuss the life and achievements of an underrated scholar, Baboo Krishnanandan Singh. The paper also takes into account the major works and other academic contributions of the present scholar under discussion. An eminent scholar of Sanskrit, Maithili and English, the founder of 'Harinandan Singh Memorial Trust' in memory of his father, the organizer of annual lectures by the prominent academicians of Mithila region under the shadow of his Trust, Baboo Krishnanandan Singh came up with some of the most valuable works in Sanskrit. A few reminiscences of his life presented in the paper make this study highly fascinating.

Keywords: Life, Achievements, Scholar, Reminiscences, Sanskrit

1 Introduction

Born on 20 July 1918, Baboo Krishnanandan Singh was the sixth generation of Maharaja Kumar Govind Singh, the son of Maharaja Madhav Singh (died in 1807) who had his origin in khandvala family. M. Kumar Govind Singh was given the ownership of Pariharpur Ragho province which later became Raghapur. Thus, Baboo Krishnanandan Singh was born at Raghapur. It was the time when many regional and national events such as Complete English Raj, Freedom Movements, Foreign-Native Movement (popularly known as 'bilainti-swadesi aandolana'), Sati Pratha, Bal Vivaha, Land Abolition, Casteism, Communalism, Partition of India, the beginning of the First World War, etc. took place.

His father, Late Baboo Harinandan Singh died as soon as he completed his childhood. He spent his youth under the guardianship of his grandfather, Late Baboo Yadunandan Singh. He remained a brilliant learner all his life. Being the son of khandvala

* Assistant Professor, Department of English, Sri Ramsundar Sanskrit Vishwavidya Pratisthan, Ramauli, Darbhanga

family, he automatically inherited the love and passion for art, culture, and literature. He just kept polishing, grooming and grafting these inherited gifts all his life. He had equal mastery over three languages namely Maithili, Sanskrit and English. All these languages were used by him not only during the oral conversations but also in his letters and other pieces of writings. He used to get up as early as 4 a.m. and go to his bed at sharp 10 p.m. Apart from his busy schedule; he would somehow manage a nap of fifteen minutes during the daytime. The basic reason behind such a hectic schedule was his relentless quest for knowledge. May that be farming, gardening, ornithology, prose & poetry, Nano sciences, yoga, management; he always had innumerable quarries that could be satisfied only with the help of books and scholars. Some of his important contacts included Late Dr. Rajendra Prasad, Late Smt. Indira Gandhi, Late Jay Prakash, Dinkar ji (the great poet), Late Dr. Karpoori Thakur, Late Lalit Baboo and many other eminent scholars and poets.

2 Social Contributions

As soon as Baboo Singh grew up and took charges from his grandfather, he established a primary and a secondary level school at Raghapur as he himself knew the value of education and wanted to overcome the struggle of the villagers as far as academic development of the children of his village and around was concerned. Soon, he also established a library and a post office in his village. Apart from these, he gifted land for the establishment of Nehra College, donated money in the establishment of Chandradhari Mithila College, Darbhanga. He also opened a school inside Raghapur Deorhi (small palace) where Pandit Bal Krishna Mishra was the teacher who taught innumerable students there. Baboo Singh also used to arrange food for all the students following the old tradition of gurukuls (schools) of India. Since his childhood, he vested great interest in the activities of Akhil Bharatiya Maithil Mahasabha (ABMM) and Akhil Bharatiya Maithili Sahitya Parishada (ABMSP). There was a time when the attraction of the Council for the political leaders had increased. The negative effect of such kind of intervention was quite apparent on Maithili language and literature. In order to overcome this effect and for the preservation of Maithili language and

literature, Baboo Krishnanandan Singh was selected as the Chairman of the Council in its session held at Madhubani in 1959. It was only because of his economic contribution that the publication of 'Parishad-patrika' started. He also provided land for the Council at Darbhanga. It was Baboo Singh who restarted the stand-up publication of 'Mithila Mihir' after convincing Maharaja Kameshwar Singh. He published innumerable copies of Mithilakshara with the help of Pandit Jivanath Jha and distributed among the Maithils free of cost just for the popularization of Maithili script.

Above all, his greatest contribution to the society was the establishment of 'Harinandan Singh Memorial Trust' in the memory of his father Late Baboo Harinandan Singh. This Trust was established in 1950 basically for the development of Maithili and Sanskrit languages. Around 25 books have been published by the Trust till date. It is the Trust that published the first dictionary of Maithili entitled as 'Mithila Bhasha Kosha', the first epic in Maithili entitled as 'Subhadraharana' and later, 'Radhaviraha'. Other important books include 'Mithilakshara Varnamala', 'Mithila Bhasha Vidyotana', 'Mithila Tatva Vimarsha', etc. In addition to this, he also used to organize 'Yadunandan Singh Vyakhyanamala' (Yadunandan Singh Lecture Series) almost every year in memory of his grandfather Late Baboo Yadunandan Singh under the shadow of this Trust. In these lecture series, he used to invite the well-known scholars of Mithila to deliver their lectures either in Maithili or Sanskrit. These scholars were also awarded for their intellect. Some of the important names who delivered their lecture in this series were Dr. Amar Nath Jha, Dr. Aditya Nath Jha, and Pandit Girindra Mohan Mishra. The Trust is still in existence under the supervision of his son, Baboo Ram Dutt Singh.

3 Academic Contributions

Baboo Krishnanandan Singh was not only a social reformer but also an eminent scholar and a poet. He had an encyclopedic knowledge on almost everything. He was a great worshipper of Rama, Sita, and Hanumana. His debut work is entitled as 'Sita-Ramayana' which appeared in 1989. This book exists in four volumes. This book attracts the researchers for several queries made and resolved from a

different angle. It also imagines the beauty of Mithila at the time of Sita. The scientific elements during the battle between Lord Rama and Ravana have been beautifully painted in this book. It also talks about the ideal forms of Dharmashashtra, Nitishashtra, and Rajaniti through the gossips between Guru Vashishtha and Guru Vishwamitra. Sita-Ramayana is, in fact, a picturesque representation of the social reformation, women empowerment, and the ultimate power of Goddess Sita, Lord Rama, and Lord Hanumana.

Another of his masterpieces appeared in 1972 entitled as 'Kamp-Karika'. As Dr. Ramanand Jha 'Raman' puts, "Baboo Krishnanandan Singh often used to invite scholars in his Deorhi and organized seminars there. These seminars used to enrich his intellect in many ways. It was only the effect of these seminars that his poetic intellect got up after long hibernation. But he never believed in raw pieces of writings. He gave importance to knowledge of the various subjects. He himself studied History and Geography. He would refer to the world history and say that the stability of mind can be attained only after the age of fifty. The knowledge related to the ways of the world is attained only after this age. Prior to this age, there is just the overflow of emotions in literary writings lacking the ideological stability. Late Singh proved his ideology." He writes:

“बाद पचास जे छल भावी, लिखबहु में हम मोन लगाबी, मन के आब हमहु नहि दाबी, नित्य अकवितहि कलम चलाबी।”

The best example of this ideology is 'Kamp-Karika'. He was only 16 years old when the severe earthquake took place in 1934 in Bihar. He had not completed a year of his married life. But he composed Kamp-Karika in 1972 where he paints his experiences and terror due to the earthquake after 36 years of the event. He writes:

“घर में एकसर हमही लाल, भेल विवाहो पुरल न साल,
जीवन यौवन पसरल थाल, बाँचल निश्चय कालक गाल।”

He always kept himself away from the pseudo-popularity. He says, "I would prefer the dramatic style only in Maithili drama."

The third book is 'Swadha Swaha Vashatakara' that appeared in 1987. This book also reveals his literary intellect and his knowledge on the subject matter to a greater extent. It talks about the policies, rules and regulations implemented by MM Mahesh Thakur during

the period of endangered Mithila. It also depicts a brief life sketch of MM Mahesh Thakur, the conversation between MM Mahesh Thakur and Akbar, his visit to Kashi, etc.

Apart from these, his translated work that can never be forgotten is 'BhavaBhatrighari' which got published in 1973. Under this title, he has translated three shatakas namely shringarshataka, nishataka, and vairayashataka. All the three volumes have been published separately.

Beside these masterpieces, his presentations on various sessions of Akhil Bharatiya Maithili Sahitya Parishad are also very important. He passed away on 15 January 2001.

List of his major works

- ❖ Kampa Karika (1972)
- ❖ BhavaBhatrighari (1973) [Translated work]
- ❖ Swadha Swaha Vashatakara (1987)
- ❖ Sita-Ramayana (1989)

To sum up, Baboo Krishnanandan Singh, despite this long gap, is still alive among his people, among his readers and in his works. It is never late to pay the due regards to someone who deserves that. It is the time when his works need to be reprinted and revisited. It is the time when Harinandan Singh Memorial Trust should revive its publications and lecture series. Recently, PG Centre, Saharsa in collaboration of Sahitya Akademi, New Delhi had organized a two day Birth Centenary Seminar on Raghavachary and Baboo Krishnanandan Singh on 27-28 August, 2021 which really deserves an appreciation and special mention. Such seminars must be encouraged in order to pay homage to the great soul.

References

1. Singh, R. (2021). Baboo 'Krishnanandan Singh: Jeevan o Rachnak Vaishishtha' (Unpublished)
2. Jha, Ramanand. (2021). 'Baboo Krishnanandan Singh' (Unpublished)
3. Singh, A Prasad. (1958). 'Maatik Deep', Publication: unknown
4. Oral Talk with Sri Ram Dutt Singh.

Characteristics of Hero or Heroine of Messenger Poem

Asim Halder*

Abstract

Tradition of messenger poem is an important one in Sanskrit literature. Though origin of this tradition is too old but it has gone a different way to bear some special characteristics by Kālidāsa. Among some characteristics of messenger poems of Sanskrit literature, characteristics of hero or heroine of messenger poem has been discussed here. Comparative study of some messenger poems and deconstruction of poetics and critical study of Purāna has been, briefly, done here to explore characteristics of hero or heroine of messenger poems.

Keywords: Ayuktimad-doṣa, Haṃsasandeśa, Sāhityadarpaṇa, Śrīmadabhāgavatapurāna

Meghadūta of Kālidāsa is oldest one among all messenger poems in history of Sanskrit literature. It's logical, psychological, neat and hearty description creates a different tradition in Sanskrit literature. More than 320 messenger poems are in this tradition. Though many of them are not available and some of them have been incompletely conserved. As Bhāmaha says in his Kāvyaḷaṅkāra that

अयुक्तिमद्यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दवः ।
तथा भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः ॥
अवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूरदेशविचारिणः ।
कथं दूत्यं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते ॥¹

In this statement he says about 'Ayuktimad-doṣa'. According to him, in messenger poems cloud, air, moon, koka bird, chakravāka bird, parrot etc. are used as a messenger, which is totally illogical, because as they are unable to speak, so their position of messenger is not supportable. From this statement of Bhāmaha we can assume that except the Meghadūta of kālidāsa probably mārutadūta, indudūta,

* Research Scholar, Central University of Himachal Pradesh

¹ Kāvyaḷaṅkāra of Bhāmaha, (1/42/-44), p.22.

bhramaradūta, hāritadūta, chakravākadūta, śukadūta were available in the period of Bhāmaha.

According to Bhāmaha as cloud, air, moon, koka bird, chakravāka bird, parrot etc. are not able to speak so they can't bear message to destination. And he clearly stated that if poet uses that type of messenger in his poem than that must be blameful. So he asks a question that 'कथं दूयं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते', means by which logic they (cloud etc.) become messenger as they are unable to speak. But Bhāmaha cleared his doubt after a verse of Meghadūta of Kālidāsa i.e

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्नुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥²

In this verse, Kālidāsa tries to say that as concupiscent persons (कामार्ताः) are not able to justify what should be and what should not be, So if those incautious (असतर्कः) message senders chose cloud etc. अवाचोऽव्यक्तवाचः as a messenger than this is not illogical. At last Bhāmaha accept this concept of Kālidāsa and says

यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते ।
तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते ॥³

Means in messenger poem if message sender is a wistful (उत्कण्ठितः) speaker like a mad, than there choice of cloud etc. as a messenger is supportable as Kālidāsa etc. important poets logically used much that type of messenger in their poems.

दूतः प्रधानं यस्मिन् तत्काव्यं दूतप्रधानं काव्यमिति । अनन्तरं दूतप्रधानं काव्यमित्यत्र 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योसंख्यानमिति' वार्तिकेन उत्तरपदलोपे दूतकाव्यम् इति सिध्यति.

Means in messenger poem, messenger must be a chief character. But in messenger poem, messenger neither becomes a hero or heroine nor he bears message to the destination. He always stays around the message sender. Only message sender expresses his sought (ईप्सित)

² Meghasandesa of Kālidāsa, p.236.

³ Kāvyaśāstra of bhāmaha, (1/42/-44), p.22.

and heart touching speech. His speech lights up the beauty of whole nature. This message sender always becomes a main character or hero or heroine of every messenger poem. And he chooses a creature (चेतनाविशिष्टप्राणी) or a senseless matter (चेतनाहीनपदार्थः) as a messenger. And he conveys his feeling and explains the way to his destination. Truly he must be a wistful speaker. This is the main characteristic of the hero or heroine of every messenger poem. If he is not so, than this poem may be blameful. Kālidāsa and Bhāmaha both established this characteristic of hero or heroine of every messenger poem in their work. Most of the post-Kālidāsa poets also supported this statement in their own poems. Viz. in Haṃsasandeśa of an unknown poet it is said that

युक्तायुक्तेष्वपिहि विदुषामर्थिना नो विवेकः ।⁴
न कस्मिन् विश्रम्भं दिशति हरिभक्तिप्रणयिता ॥8 ॥⁵

Means even being a wise (विदूषः), an erotic man (कामार्तः) can't justify what is logical and what is illogical. Similarly in Haṃsasandeśa of Rūpagosvāmi, poet says that

न तस्या दोषोऽयं यदिह विहगं प्रार्थितवती ।
न कस्मिन् विश्रम्भं दिशति हरिभक्तिप्रणयिता ॥8 ॥⁶

Her invitation to bird for messaging is not a blame, because a devoted lady of hari can't choice a decent (योग्यः) medium for messaging. Also in Uddhavasandeśa, Rūpagosvāmi says that

श्वासोल्लासैरथ तरलितः स्थूलनालीकमालः
पूर्णाः कुर्वन्नयनपयसां चक्रबालैः प्रणालीः ।
स्मारं स्मारं प्रणयनिविडां बल्लवीकेलिलक्ष्मीं
दीर्घोत्कण्ठाजटिलहृदयस्तत्र चित्रायितोऽभूत् ॥2 ॥
अन्तः स्वान्ते क्षणमथ परामृष्य पाराभिलाषी
कष्टाम्भोधेर्भवनशिखरे कुट्टिमान्तर्निविष्टः ।
सोत्कण्ठोऽभूदभिमतकथां शंसितुं कंसभेदी
नेदिष्ठाय प्रणयलहरीबद्धवागुद्धवाय ॥3 ॥⁷

⁴ Saṃskṛta ke sandeśkāvya, p.10.

⁵ Do

⁶ Do

⁷ Uddhabasandeśh, p.2-3.

In those verses the hero Śrīkṛiṣṇa has become wistful (उत्कण्ठितः) before sending his message. Śrīkṛiṣṇasārvaabhauma also says in Padāṅkadūtakāvya that

तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ण्य भूयः ।
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे ॥
प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनं । दौत्यं कर्तुं मुरहरपदो लक्षणं पङ्कजाक्षी ॥3 ॥⁸

In this verse Rādhā also becomes wistful by erotic love after lightning sound of cloud and chose a foot print like a lotus of Śrīkṛiṣṇa as messenger which is senseless, speechless, immobile and deaf-muted. In Pavanadūtakāvya Vādicandrasūri also says that

दूतं मोहात्पवनमहदं प्राहिणोदश्रुनेत्रः ।
प्रायो मोहो भवति भविनां बोधशून्यत्वहेतुः ॥1 ॥⁹

Means the fascinated (मोहग्रस्तः) hero with tear in his eyes, sent air as a messenger for messaging. Mostly the fascination (मोहः) becomes the cause of ignorance (बोधशून्यत्वम्). Ācārya veṅkatnātha also says in his Haṃsasandeśa that

कान्ताश्लेषादधिकसुभगः कामिनां दूतलाभः ॥4 ॥¹⁰

Means when Rāma chose a goose as a messenger, the poet says that getting of messenger by a wistful person is too joyful than embrace the lover. Also he says that

विश्लेषेण क्षुभितमनसां मेघशैलद्रुमादौ
याद्वादैर्न्यं भवति किमुत कापि संवेदनाहं ॥5 ॥¹¹

Means in the parting situation of lover cloud, mount, tree etc. immobile are also solicited by impatient penurious (दैर्न्यपीडितः) person as messenger. Hence choice of a alive goose as a messenger is more supportable. Vinayavijayagani also expressed same picture in his Indudūtakavyam that

दृष्ट्वा चैनं स परमगुरुध्यानसन्धानलीन-
स्वान्तः कान्तं तमिति रजनेः स्वागतं व्याजहार ।
सद्यः साक्षाद् गुरुपदयुगं नन्तुमुत्कण्ठितोऽपि,
द्रागेतेन स्थितिपरवशो वन्दनां प्रापयिष्यन् ॥9 ॥¹²

⁸ Saṃskṛta ke sandeśkāvya, p.10.

⁹ Do

¹⁰ Haṃsasandeśaḥ of ācāryaveṅkatanātha, p.4.

¹¹ Do

¹² Indudūtam, p.16.

In this verse poet also being a wistful, chose the moon as messenger. In Dūtaprativacanakāvyaṃ Dr. Icchārāma Dvivedī also used an adjective i.e. उत्कम् for hero of this poem. This adjective also directed same characteristic of hero, i.e. his wistfulness. e.g.

वर्षान्तेऽसौ कविकुलगुरोः प्रेषितो मेघदूतः
प्रत्यागच्छद् विदितचरितो मित्रभार्यागृहस्य ।
उत्कं यक्षं प्रियतमजने ह्यायतोच्छ्वासयुक्तं
मन्दं गर्जन् रघुवरगिरौ हालकाख्यापुरीतः ॥1 ॥¹³

In Kokilasandeśa Uddandāsvāmi also says so, that

तत्र द्वित्रान् प्रियसहचरीविप्रयोगातिदीर्घान्
कामार्तोऽयं शिव शिव समुल्लङ्घ्य मासान् कथञ्चित् ।
चैत्रारम्भे समुदितमधुश्रीकटाक्षाभिरामं
चूताङ्कुरास्वदनरसिकं कोकिलं सन्ददर्श ॥ 1.4 ॥¹⁴

In this poem, the poet also directed same characteristic of hero. Here, it is said that an erotic lover becomes too wistful after spending two months in absence of his lover. And in the starting of caitra month, he saw a cuckoo bird and chose him as a messenger. In Ghatakarparakāvyaṃ same characteristic of hero has been described. Such as

क्षिप्रं प्रसादयति सम्प्रति कोऽपि तानि
कान्तामुखानि रतिविग्रहकोपितानि ।
उत्कण्ठयन्ति पथिकाञ्जलदाः स्वनन्तः
शोकः समुद्भवति तद्वनितास्वनन्तः ॥5 ॥

In Cātakasandeśa, Mantittaśarmāśāstri also says that

कान्तां तां तु प्रकृतिललितां मद्द्वियोगाग््नितप्तं
स्मृत्वाप्यन्ते म्रियत इव मे चेतना किं करोमि ॥4 ॥¹⁵

The hero says in this verse that in absence of my lover my psyche (चेतना) internally died after remembrance to her, I don't know what should I do. In the same way Vijayakamalasūri says in his Cetodū-takāvyaṃ that

¹³ Dūtaprativacanam, p.4.

¹⁴ Kokilasandeśaḥ.

¹⁵ Cātakasandeśaḥ, p.136.

चेतः क्लीबं गतबलतया नैव कार्यक्षमं य-
 चैतन्येनापि हि विरहितं पुद्गलात्मत्वतो वा ।
 स व्यामूढस्तदपि सहसरोप्य पुंस्त्वं ययाचे
 कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥5 ॥¹⁶

In this verse, Kālidāsa's statement has been directly used as the last line. In the same way Meghavijaya Upādhyāya says in his Meghadū-tasamasyālekha that

क्रायं प्रायः पवनसलिलज्योतिषां संनिकायः
 क्रार्थश्चायं प्रवणकरणैर्यो विधेयः समर्थः ।
 हर्षोत्कर्षादिति स सहसा चिन्तयत्रूचिवांस्तं
 कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥5 ॥¹⁷

Mahāliṅgakavi in his Bhramaradūtakāvya uses a similar statement. That is

पुष्पप्रेक्षं मधुनवकणास्वादलोलः क्व भृङ्गः
 सन्देशार्थः क्व च विरहिणां प्रापणीयः प्रबुद्धैः ॥
 दूत्येनैनं तदपि कृपणः प्रेषयिष्यन् ययाचे
 युक्तयुक्तेष्वकुशलधियः प्रायशो ह्यार्तिमन्तः ॥5 ॥¹⁸

The verse of Kālidāsa 'धूमज्योतिः सलिलमरुतां.....चेतनाचेतनेषु' has been reflected in this verse. Both verse are bearing same meaning. Similarly Śrisiddhanātha Vidyāvāgiśa also describe the senseless situation of hero in his Padmadūtakāvyaṃ,

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरो विस्त्रलत्केशवेशा
 खिन्ना शीर्णा प्रियविरहतो बाह्यसंज्ञाविहीना ।
 संज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं कर्णहीनं
 दौत्यं कर्तुं कृतकरपुटा पङ्कजातं ययाचे ॥14 ॥¹⁹

Thus we can get much support against the statement both of Kālidāsa and Bhāmaha in various messenger poem. The author of Sāhityadarpaṇa Visvanātha explains the situation of frenzy (उन्मादः) in his Sāhityadarpaṇa that

¹⁶ Chetodūtam, p.2.

¹⁷ Meghadūtasamasyālekha, p.2.

¹⁸ Bhṛṅgadūtam, p.2.

¹⁹ Padmadūtam, p.8.

चित्तसंमोह उन्मादः कामशोकभयादिभिः ।
अस्थानहासरुदितगीतप्रलपनादिकृत् ॥²⁰

Means hypnosis (संमोहः) of psyche (चित्त) by wish (कामः) and fear (भयम्) is called frenzy (उन्मादः). In this situation person laughs, cries, sings, murmurs without any outer cause. Also Visvanātha explain the manner of frenzied (उन्मत्तः) person with an example of a text, such as

भ्रातद्विरफ भवता भ्रमता समन्तात्
प्राणाधिका प्रियतमा मम वीक्षिता किम् ॥
(झंकारमनुभूय सानन्दम्)
ब्रूषे किमोमिति सखे कथयमाशु तन्मे
किं किं व्यवस्यति कुतोऽस्ति च कीदृशीयम् ॥

In this explanation, Viswanātha also tries to say that by a wistful or likely manic speaker's the acceptance of cloud etc. as messenger is a very simple matter. Here we can say after the definition of frenzy of Viswanātha that if cloud etc. becomes messenger of the poem than the message sender must become wistful speaker like a mad.

47th chapter of 10th skandha of Śrīmadabhāgavatapurāna draws a beautiful account of messenger poem. Namely seeing Uddhava the messenger of Śrīkṛiṣṇa, in Gokula, herdswomen (गोप्यः) are express their pain of parting of śrīkṛiṣṇa. In deep thinking of Śrīkṛiṣṇa a herdswomen (गोपी) or Rādhā seeing a large black bee (भ्रमरः) think in delusion that he is the messenger of Śrīkṛiṣṇa, so she describe her painful situation after parting of Śrīkṛiṣṇa, e.g.

इति गोप्य हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।
कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥
गायन्तः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतहियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥
काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥²¹

And at last she gives a message to meet to Śrīkṛiṣṇa also. Thus in this chapter, a beautiful scene of Vipralambaśrīngāra has been explained. In Purāna also wistful person's or frenzied person's choice of cloud etc. as messenger is logically supported.

²⁰ Sāhityadarpaṇaḥ, (3/361), p.214-215).

²¹ Śrīmadbhāgavata, (10/47/9-11), p.858.

As a conclusion of whole review we can say that in messenger poem's hero or heroine or message sender is the chief character and messenger act as accessory. And main characteristic of hero or heroine or message sender is 'he must be wistful person or frenzied person like a mad.'

References

1. Unni N.P., (Editor), 2016 A. D., Meghasandeśa (Kālisāsa), Chinmaya International Sodha Sansthana, Kerālā.
2. Dāsa, Kriśṇa, (Editor), 2014 A. D., Śriuddhabasandeśḥ (Rupagosvāmiḥ), Kusumasarovaravāle, Mathurā.
3. Dhurandharavijayaḥ, Muniḥ, (Editor and commentator), 1946 A. D., Indudūtam (Vinayavijayaganikṛitam), Śrijainasāhityavardhakasavā, Śirapura.
4. Dvivedī, Dr. Icchārāma., 1989 A. D., Dūtaprativacanam, Devavāni-Pariṣad, Delhi.
5. Gupta, Kiśorilāla (Editor), 1995 A. D., Ghatakharparakāvya, Abhinava Prakāśana, Jhmāsi, M.P.
6. Śāstrī, Nityānanda (Editor), 1970 A. D., V. Y. Cetodūtam (Vijaykamalsūrikṛtam), Śrijain Ātmānandasavā, Bhāvanagara.
7. Śāstrī, Nityānanda (Editor), 1970 A. D., V. Y. Meghadūtasamasyālekhaḥ (Śrimeghavijayaviracitaḥ), Śrijain Ātmānandasavā, Bhāvanagara.
8. Tripāthī, Āśutoṣa Maṇi, 2011 A. D., Śandeśa kāvya paramparā meṃ cātakasandeśa ek adhyayana (Unpublished thesis), Vīra Bahadura Siṃha Pūrvāñcala visvavidyālaya, Jaunpura, U.P.
9. Upādhyāya, Pandita-Kanhaiyālāla (Editor). 1901 A. D., Śrimadabhāgavata. Tantraprabhāka-press, Muradābadaḥ, U.P.
10. Vidyāvāgiśa, Śrisiddhānātha. 1925 A. D., Padmadūtakāvyaṃ. Nūтана Bāṅgālā Yantra, Kolkata.

कलिकाले कलिविडम्बनकाव्यस्य उपादेयता

गणेशपण्डितः*

सारांश

शोधपत्ररचयित्रा नीलकण्ठदीक्षितस्य लोकचैतन्योद्बोधनात्मकम् उद्देश्यं महता यत्नेन प्रतिपादयिषितम् । कलिकालस्य प्रभावेण भारतीयसंस्कृतेः सनातनसंस्कृतेर्वा अमितेषु मानवीयजीवनमूल्यबोधात्मकतत्त्वेषु नितान्त-मुपादेयभूतानां निःस्वार्थपरता, गृहस्थाश्रमव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, नैतिकता चेत्यादीनां तत्त्वानां साम्प्रतिकयुगे अनुदिनं यदवमूल्यनम्, अवहेलनं, विडम्बनं वा दरीदृश्यते तत्सर्वं दर्शं दर्शं नितरां दूयते कवैश्चेतः, अपि चासीत् तत्प्रतीकाररूपेण स्वकाव्यगतप्रतिपाद्येन सावचेतयति प्रतिजनमिति सामाजिकी चेतनाऽस्य ननु अभिनन्दनीया । अपि च संसारेऽस्मिन् “तस्मै कर्मणे नमः” इति सर्वशास्त्रमतैक्यं कर्मप्राधान्यं प्रतिपादयता कविना सकारात्मक-चिन्तनं कर्तव्यकर्मनिर्वहणं च प्रति जनाः संप्रेरिताः । तदेवं काव्यस्यास्य यत्समसामयिकं वैशिष्ट्यमुपादेयत्वं वा तदेव शोधपत्रस्यास्य वैशिष्ट्यमिति- (सम्पादकौ)

मुख्यशब्द : कलिविडम्बन, नीलकण्ठदीक्षित, नीलकण्ठविजयचम्पू, मदुरै-पाण्ड्यराज

अथ कलिकालकवलिते कालखण्डे वर्तामहे वयम् । एतदनु कलेर्विडम्बनात्मकचित्रणे सिद्धहस्तस्य नीलकण्ठदीक्षितस्य काव्यानि कलियुगस्य चित्रणे पूर्णरूपेण सफलानि सन्तीति अस्मिन् शोधपत्रे सप्रमाणं निरूप्यते । संस्कृतवाङ्मये महाकवेः नीलकण्ठदीक्षितस्य काव्यानां न तथा प्रचारः यद्यपि वर्तते तथापि कलियुगस्य चित्रणे नीलकण्ठदीक्षितसमः नान्यः कश्चन संस्कृतक्षेत्रमवततारति सप्रमाणं निरूपयितुं शक्यते । सप्तदशे शतके द्रविडदेशे लब्धजन्मा असौ अप्पय्यदीक्षितेन्द्रस्य परम्पराप्राप्तः मदुरै-पाण्ड्यराजस्य प्रधानमन्त्री चासीत् । द्वात्रिंशत्सङ्ख्याकाः कृतयः अनेन संस्कृतेनैव विरचिताः सन्ति । परं नीलकण्ठविजयचम्पूः इतीदं तदीयं चम्पू-काव्यमात्रं चम्पूकाव्यगणनाप्रसङ्गे एव प्रसिद्धम् अभूत् लोके । कविस्तु समुद्रमथनप्रसङ्गमत्र गद्यपद्यात्मकरूपेण उपावर्णयत् । परं तदीया विशिष्टा अनितरसाधारणी च प्रतिभा तदीयासु शिष्टास्वपि कृतिषु विशेषतः उपलभ्यन्ते । कलिविडम्बनशतकम्, सभारञ्जनशतकम्, अन्या-पदेशतकम्, गङ्गावतरणम् इत्येतासु कृतिषु महाकविरसौ साम्प्रतिकीं कलिदशां सुस्पष्टमुपाव-र्णयत् । कलियुगे सर्वेषु क्षेत्रेषु परिदृश्यमानानां वैपरीत्यानां विडम्बनात्मकचित्रणे इदम्प्रथमतया औपचारिकप्रयासः अनेनैव महाकविना कृतः । संस्कृतवाङ्मये तत्रापि कलियुगे सामयिकस-माजस्य यथास्थितिं यथावत् निरूपयितुं नीलकण्ठदीक्षितमन्तरा नान्यः कश्चन प्रायतत इत्यपि उच्यते । कलेः दुष्प्रभावेण शैक्षिकाध्यात्मिकसामाजिकराजनैतिकादिषु विभिन्नेषु क्षेत्रेषु परिदृ-श्यमानाः अवगुणाः न्यूनताः वा अनेन सप्रमाणं सोदाहरणं च सप्तदशे शतके एव निरूपि-ताः आसन् । तन्नाम शतकचतुष्टयात् प्रागेव कविरयं कलेर्विडम्बनात्मकचित्रणमकरोत् इति तु निश्चप्रचम् । सामान्यतः कवयः लोकोत्तरवर्णनानिपुणाः सम्भवन्त्येव । परं कलिकालग्रस्तस्य लोकस्य यथावत् निरूपणं दाक्षिण्यवशात् नैव कुर्वन्ति ते । पुनः केचन कवयः प्रसङ्गवशात् तत्र तत्र कलियुगस्य दुष्प्रभावान् उल्लिखितवन्तः स्युरपि । परन्तु कलिचित्रणे नीलकण्ठसमो न कोऽपि कविरभूत् । कलिविडम्बनशतकस्य आद्ये श्लोके कविरसौ येन केन प्रकारेण सभायां विजयसम्पादनोपायाः के के? इति न्यरूपयत् । तद्यथा-

* सहायकाचार्यः, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, राजीवगान्धीपरिसरः, शृङ्गेरी, कर्नाटकम्-५७७१३९

गणेशपण्डितः

कलिकाले कलिविडम्बनकाव्यस्य उपादेयता

न भेत्तव्यं न बोद्धव्यं न श्राव्यं वादिनो वचः ।
झटिति प्रतिवक्तव्यं सभासु विजिगीषुभिः ॥01 ॥ इति

सामाजिकमाध्यमेषु मुक्तसंवादसभासु च यानि चर्चासत्राणि अद्यत्वे प्रचलन्ति, तानि क्वचित् एतादृशविगुणभूयिष्ठानि एव सन्दृश्यन्ते । “जिगीषुणा हियं त्यक्त्वा कार्यः कोलाहलो महान्” इत्यपि पञ्चमे श्लोके तत्रैव उच्यते । एतदनु अद्यत्वे सभासु तात्त्विकचिन्तनापेक्षया परस्परम् आरोपप्रत्यारोपरूपकोलाहलाः एव आधिक्येन नयनातिथयो सम्भवन्ति । पुनः वाममार्गेण विजयसम्पादनाय यतते अधिकाधिकलोकः न तु राजमार्गेण । कविरयं कलेः दुष्प्रभावेण स्वार्थसम्पादनाय प्रतिष्ठासम्पादनाय एव वा लेखकाः अध्यापकाः नैव प्रवर्तेरन् इति परोक्षम् उपादिशत् । तद्यथा-

पाठनैर्ग्रन्थनिर्माणैः प्रतिष्ठा तावदाप्यते ।
एवं च तथ्यव्युत्पत्तिरायुषोऽन्ते भवेन्न वा ॥06 ॥

एवं व्युत्पत्तिसम्पादनाय आत्मानुभूत्यै च कलौ नाधिकः आदरः दृश्यते इति सखेदमवदत् । पाठने असमर्थस्य शिक्षकस्य कक्ष्यागतचेष्टाः कीदृश्यः प्रवर्तन्ते इत्यत्र उच्यते । यथा-

वाच्यतां समयोऽतीतः स्पष्टमग्रे भविष्यति ।
इति पाठयतां ग्रन्थे सन्देहः कुत्र दृश्यते ॥08 ॥

लोकवञ्चकाः अपि लोके कथं कालमहिम्ना यशांसि धनानि च अर्जयन्ति इत्यत्र कविरसौ दृष्टान्तमदर्शयत् । यथा-

अविलम्बे कृत्यसिद्धौ मान्त्रिकैराप्यते यशः ।
विलम्बे कर्मबाहुल्यं विख्यायावाप्यते धनम् ॥11 ॥

दैवज्ञवेष्टं धृत्वा अटन्तः दाम्भिकाः कथं फलितविचारं उक्त्वा जनान् भ्रामयन्ति इत्यत्र निदर्शनं यथा-

आयुः प्रश्ने दीर्घमायुर्वाच्यं मौहूर्तिकैर्जनैः ।
जीवन्तो बहु मन्यन्ते मृताः प्रक्ष्यन्ति कं पुनः ॥16 ॥

सम्प्रति- "कोरोना" नामकेन रोगेण सम्पूर्णं विश्वं सम्पीडितं वर्तते । अयमेकः सपदि सङ्क्रमण-शीलः दीर्घरोगः इत्येव परिगण्यते । बहवो हि कोरोनायाः कारणेन भीताः सन्ति । अन्ये केचन कोरोनारोगनिर्गमनात्परमपि रोगविपरिणामैः लिप्ताः सन्तः दीर्घरोगिणो संवृत्ताः । एतादृशः रोगिणः भिषजां भाग्यहेतवः भवन्तीति नीलकण्ठेनैव सूपादितम् । यथोक्तं तेन-

स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्ति किञ्चन ।
कातरा दीर्घरोगाश्च भिषजां भाग्यहेतवः ॥23 ॥ इति ।

कलिकाले कलिविडम्बनकाव्यस्य उपादेयता

गणेशपण्डितः

केचन वैद्यकीयक्षेत्रस्थाः कोरोनाकालेऽपि रोगिणः भृशं लुण्ठन्ति इति श्रुतचरमेव । न केवलं वैद्यकीये अपि तु ज्यौतिषे तन्त्रविद्यायां चाटुकारितायां च एतादृशाः वञ्चकाः सर्वत्र नयनपथ-
मवतरन्ति इति कविना उच्यते । यथोक्तं तत्र-

दैवज्ञत्वं मान्त्रिकता भैषज्यं चाटुकौशलम् ।
एकैकमर्थलाभाय द्वित्रयोगस्तु दुर्लभः ॥31 ॥इति ।

कलौ काव्यरचनायाः फलान्यपि उक्तानि । यथा-

एकैव कविता पुंसां ग्रामायाश्चाय हस्तिने ।
अन्ततोऽन्नाय वस्त्राय ताम्बूलाय च कल्पते ॥36 ॥

धन्यो गृहस्थाश्रमः इति भावः आधुनिकेषु नैव अवलोक्यते । मातापित्रोः पालनादिकमपि भा-
रायते । पुनः रोगभीतिः सन्ततेः आधिक्यम् इत्यादिकम् एकैकमपि नरकापेक्षया अधिकपीडा-
दायकमिति आधुनिकाः मन्वते इति कविरगदत् । तद्यथा-

भार्ये द्वे बहवः पुत्रा दारिद्र्यं रोगसम्भवः ।
जीर्णो च मातापितरावेकैकं नरकाधिकम् ॥49 ॥

धनागमनेन सञ्जातः विकारः धनाभावेऽपि तथैव अनुवर्तते यथा लशुनस्य उग्रगन्धः इव इत्यत्र
उच्यते यथा-

श्रीर्मासमर्धमासं वा चेष्टित्वा विनिवर्तते ।
विकारस्तु तदारब्धो नित्यं लशुनगन्धवत् ॥65 ॥

कलौ कर्णेजपानामपि अभावो नास्तीति निरूपयति । पुनः शासकान् परितः अमूढक्षाः सर्वदा
विलसन्ति युगेऽस्मिन् इति प्रकृते श्लोके अवर्णयत् । तद्यथा-

गोकर्णे भद्रकर्णे च जपो दुष्कर्मनाशनः ।
राजकर्णे जपः सद्यः सर्वकर्मविनाशनः ॥72 ॥इति ।

श्रोत्रियाः सर्वेषु कालेषु पूज्याः स्तुत्याश्च । परमद्यत्वे अन्येषां सत्कारः सात्त्विकानां श्रोत्रि-
याणां च अवहेलना सामान्यमेवेति कविरुपावर्णयत् । यथा-

प्रदीयते विदुष्येकं कवौ दश नटे शतम् ।
सहस्रं दाम्भिके लोके श्रोत्रिये तु न किञ्चन ॥82 ॥

विद्वांसः न्यूनाः भविष्यन्ति पुनः पण्डितम्मन्याः मूर्खाः अधिकाः जायन्ते कलौ इति परिभाव्य
तत्तादृशानां सञ्जीवनौषधानि कानीति श्लोकमुखेन नीलकण्ठदीक्षितः एव अकथयत् । यथा-

कौपीनं भसितालेपो दर्भा रुद्राक्षमालिका ।
मौनमेकासनं चेति मूर्खसञ्जीवनानि षट् ॥86 ॥इति ।

गणेशपण्डितः

कलिकाले कलिविडम्बनकाव्यस्य उपादेयता

काषायवस्त्रादिकं धृत्वा हस्ते मालादिकं च संस्थाप्य मिथ्याजपं जपन्तः लोकवञ्चनां कुर्वाणाः
एव कलौ प्रचुरमात्रेण दृश्यन्ते इति तु कविवचनं सत्यमिति भाति । पुनरपि उक्तमेव । यथा-

सदा जपपटो हस्ते मध्ये मध्येऽक्षिमीलनम् ।
सर्वं ब्रह्मेति वादश्च सद्यः प्रत्ययहेतवः ॥90 ॥

स्वार्थसम्पादनाय मानवाः यत्किमपि कर्तुं सकाले नटितुं च प्रभवन्ति इत्यत्र अन्यः दृष्टान्तः
अपि दत्तः । तद्यथा-

आनन्दबाष्परोमाञ्चौ यस्य स्वेच्छावशंवदौ ।
किं तस्य साधनैरन्यैः किंकराः सर्वपार्थिवाः ॥93 ॥

कलौ खलानामप्यभावो न जायते । इमे परेषां न्यूनतायाः दोषाणां च पर्येषणायामेव सर्वदा
व्यापृताः भवन्ति न तु स्वन्यूनतानां दोषाणां वा अवगमने । एतादृशाः विधिना युगेऽस्मिन्
आधिक्येन सृष्टाः । तदप्युक्तम्-

परच्छिद्रेषु हृदयं परवार्तासु च श्रवः ।
परमर्मणि वाचं च खलानामसृजद्विधिः ॥98 ॥

कलौ विधिवैचित्र्येण च स्वाज्ञानज्ञानिनो विरलाः संवृत्ताः । वेदाः प्रमाणमिति पूर्वसूरिभिः समा-
म्नातम् । कलौ पत्नीवचनानि वेदवचनान्यन्ते । पुनः धनमूलजः धर्म एव अनुष्ठीयते । जनाः स्व-
प्रतिष्ठां स्वयमेव ख्यापयन्तो विहरन्ति । अतः “तस्मै श्रीकलये नमः” इति सोपहासमगदत्
कविः । तद्यथा-

यत्र भार्यागिरो वेदाः यत्र धर्मोऽर्थसाधनम् ।
यत्र स्वप्रतिभा मानं तस्मै श्रीकलये नमः ॥100 ॥

यद्यपि कलिकालकवलिते कालखण्डे वसामो वयं तथापि कालकालस्य तन्नाम परमेश्वरस्य
परमानुग्रहेण कलिकालस्य दुष्परिणामाः न्यूनीभवन्तीति भावोऽपि कलिविडम्बनान्ते कविरसौ
न्यरूपयत् । तद्यथा-

काममस्तु जगत्सर्वं कालस्यास्य वशंवदम् ।
कालकालप्रपन्नानां कालः किं नः करिष्यति ॥101 ॥

एवं कलिविडम्बने कविना प्रायः सर्वेषु क्षेत्रेषु परिदृश्यमानानि वैपरीत्यानि विडम्बनशैल्या
सुष्ठु उपपादितानि । तदीये गङ्गावतरणे कलिकल्मषसम्प्लुतं कालं जेतुं द्वौ उपायौ संसूचितौ ।
नलचरितस्य पारायणेन विश्वपाविन्याः काशीपुर्याः आश्रयणेन च कलिकालं जेतुं शक्यते इति
अवदत् । यथोक्तं तत्र-

कालं जेतुमुपायौ द्वौ कलिकल्मषसम्प्लुतम् ।
कथा वा निषधेशस्य काशी वा विश्वपाविनी ॥इति ।

एवम् एभिः कलिविडम्बनशतकान्तर्गतैः लोकैः विज्ञायते यत् कविरसौ साम्प्रतिकसमाजस्य
विडम्बनात्मकचित्रणपुरस्सरं सामाजिकचेतनां लोकेषु उज्जीवयितुमेव आजीवनं प्रायतत इति ।

कलिकाले कलिविडम्बनकाव्यस्य उपादेयता

गणेशपण्डितः

सहायकग्रन्थाः

1. काव्यमाला, भाग-5, संख्या-5, पुनर्मुद्रण- चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी.
2. महोपाध्याय ललितप्रभासगर (सम्पादक), 2006. ई., विश्व-संस्कृत-सूक्ति-कोश, नव-भारत प्रकाशन, जोधपुर, राज.

संस्कृतवाङ्मये शब्दार्थहरणविषयिणी अवधारणा

भास्कर चटर्जी*

सारांश

‘पुराणकविक्षुण्णे वर्त्मनि दुरापमस्यूष्टं वस्तु, ततश्च तदेव संस्कर्तुं प्रयतेत’ इति वचनमिदं साक्षात् प्रमाण-यति, सुप्राचीनायामस्यां विद्यापरम्परायामेव नास्ति किमपि वस्तुजातं यत् खलु सर्वथा नवीनं, कविभिः असंस्पृष्टं स्यात्। तथाहि कदाचिदपि यदा वयं किमपि वक्तुं लेखितुं वा प्रयतामहे तदवश्यं केनचित् पूर्वजेन आलोचितमेव दरीदृश्यते। किञ्च मानवानां मेधा अपि क्रमशः क्षयमाप्नोति। अतः नूतनं वस्तुजातं वयमुत्प्रेक्षितुमपि अक्षमाः वर्तामहे। एवं स्थितौ अद्यत्वे अनुकरणविदग्धाः मानवाः पूर्वलोचितानामेव विषयाणाम् अनुकरणं कर्तुं प्रवृत्ताः भवन्ति। कदाचित् इदम् अनुकरणण्डीमतिक्रम्य अपहरणे पर्यवस्यति। नेयं अधुनातनी प्रवृत्तिः, प्रत्युत बहुप्राचीनकालादेव अनुस्रियमानः आयाति अयं पन्थाः। “नास्त्यचौरः कविजनो” इति राजशेखरवचनं, “अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्रीरो विभाव्यते” इति वाणभद्रवचनञ्च तदेव प्रमाणयति। यद्यपि सर्वथा अयं मार्गः निन्दनीयः इत्यपि नास्ति, केषुचित् स्थलविशेषेषु ग्रहणीयो अपि भवति। अद्यत्वे प्लागारिजम् इत्युक्ते यदुच्यते इदं शब्दार्थ-हरणमपि तथैवेति कृत्वा वर्तमानप्रेक्षायां विषयस्यास्य आलोचनं मया प्रस्तुतम्। अनुसन्धानक्षेत्रे बहुप्रचलितोऽयं शब्दः Plagiarism इति। किमपि लेखनवेलायां यदा केनचित् अपरस्य कस्यचित् लेखकस्य लेखायाः, भाव-स्य, विचारस्य, विषयस्य वा तस्य अनुमतिं विना सन्दर्भस्योल्लेखं विना वा साक्षात् अनुकरणं क्रियते तदा तत् Plagiarism इति कथ्यते। तस्करवृत्तिः, शब्दार्थहरणमित्यादयः सन्ति अस्य पर्यायवाचिनः शब्दाः। ज्ञानतः वा भवतु अज्ञानतः वा अन्यैः अलोचितो विषयः सर्वथा परिहरणीयः। स्वप्रतिष्ठायै नवीनं किमपि सर्जनम् अपेक्षितम्, न तु चर्चितचर्वणम्। अद्यत्वे अनुसन्धानक्षेत्रे इयं चौर्यवृत्तिः आधिक्येन दृश्यते। तथाहि विश्वविद्यालयेषु शोधसम-र्पणात्परं संगणकेन शोधप्रबन्धस्य साधु परिशीलनं क्रियते अधुना। परं नेयं प्रवृत्तिः अधुनातनी, शास्त्रेषु एतद्विषये बहु आलोचनं दृश्यते। मुख्यतः ध्वन्यालोके काव्यमीमांसायाञ्च कवीनाम् एवं शब्दार्थहरणविषये, तस्य यौक्ति-कताविषये च प्रभूतं वर्णनं समुलभ्यते यद्धि अस्मद्प्रबन्धस्य विषयः। यद्यपि अत्र कवीनां विषये आलोचनमस्ति तथापि इदं तु सर्वविधलेखकानां कृते एव युक्तमिति धिया अधः सविस्तरमालोच्यते।

मुख्यशब्द : शब्दार्थहरणम्, आनन्दवर्धनः, राजशेखरः, आधुनिकप्रेक्षापटे शब्दार्थहरणम्

द्वयोः लेखकयोर्मध्ये लेखनसादृश्यं संवादः इति संज्ञया आलोचितम् आनन्दवर्धनेन। तत्रये सुमेधसां मध्ये संवादास्तु भवन्ति एव। यतो हि सर्वे लेखकाः सामाजिकाः एव, समाजस्य सर्वविधविषयाः, यैः ते आकृष्टाः क्लिष्टाः अभिभूताः विमुग्धाः तादृशः एव तेषां काव्येषु विष-यीभूताः भवन्तीति कृत्वा वर्णनावैचित्र्येषु सत्स्वपि लेखेषु विषयसादृश्यं स्यादिति किमत्राश्चर्यम्। ननु प्रभातस्य रक्तिमः सूर्यः, दिगन्तव्यापिमेघपुञ्जः, तारकामण्डितगगनम्, वर्षणमुखररात्रिः, सुविस्तृतं क्षेत्रम्, नद्याः कलतानः, विहगानां कलरवः इत्येते विषयाः कस्य वा न कविवरस्य चित्तं विमोहयन्तः तच्छृष्टिमप्यलंकर्तुं न प्रभवन्ति? वस्तुतः एतेष्वेव विमुग्धाः सन्तः काव्यं रचयितुं प्रवर्तन्ते कवयः अतः विषयसादृश्यं तु भवत्येव काव्येषु। परं यथा वर्णनाकौशलं, शब्दावली, उत वा अभिव्यक्तिः सर्वथा एकरूपाः न स्युरिति कविभिः अवश्यं विचार्यम्। यतो हि इमे विषयास्तु प्रतिभावत्सु परस्परभिन्नाः एव भवन्ति। अतः अत्रापि सादृश्याधिक्यं नाम अपहरणमेव। यद्वा भवतु, कविषु अयं संवादः त्रिविधः भवितुमर्हतीति आनन्दवर्धनम-तिः। तद्यथा शरीरिणां प्रतिबिम्बवत्, आलेख्याकारवत्, तुल्यदेहिवच्च। तथा हि— “संवादो

* शोधच्छात्रः, केन्द्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, भोपालपरिसरः

ह्यन्यसादृश्यं तत्पुनः प्रतिबिम्बवत् । आलेख्याकारवत्तुल्यं देहिवच्च शरीरिणाम् ॥¹” इत्युक्तं ध्वन्यालोके ।

प्रतिबिम्बवत्-संवादस्थले सदृशवस्तुद्वयं परस्परम् अभिन्नमेव । यथा हि स्वच्छदर्पणे जलाशये वा प्रतिफलितेन मानवानां चित्रेण सह प्रकृतस्य मानवस्य न कोपि भेदो दृश्यते । प्रतिबिम्बदर्शनेनैव बिम्बस्य साक्षात् दर्शनं भवति, दर्शनसमये बिम्बप्रतिबिम्बयोः पार्थक्यं मनागपि न भासते, बिम्बदर्शनेनैव प्रतिबिम्बदर्शनमपि जायते, वस्तुतः बिम्बादृते प्रतिबिम्बस्य किञ्चन साक्षात् अस्तित्वमेव न वर्तते । कविकर्मस्वपि यदि द्वयोः लेखयोर्मध्ये सादृश्यम् एवं भवति यत् एकस्मात् ऋते अपरस्य पृथगस्तित्वमेव न तिष्ठति, एकस्य आस्वादानेनैव भवति अपरस्यापि आस्वादनं, किञ्च प्रमादादयः अपि उभयत्र समानम्, एवं स्थले प्रतिबिम्बस्थानीयस्य लेखस्य न काचित् विशिष्टा मर्यदा भजते । बिम्बस्यैव रूपभेदः पुनरुक्तप्रायः इति कृत्वा सः सर्वथा अनादरणीयः भवति । तथाहि लोचनकारेण उक्तम् - “तत्र पूर्वं प्रतिबिम्बकल्पं काव्यवस्तु परिहर्तव्यं सुमतिना । यतस्तदन्यात्मतात्त्विकशरीरशून्यम् ॥²” इति ।

राजशेखरेणापि प्रोक्तं- अर्थः स एव सर्वो वाक्यान्तरविरचनापरं यत्र ।

तदपरमार्थविभेदं काव्यं प्रतिबिम्बकल्पं स्यात् ॥³” इति ।

अर्थात् - यत्र काव्ये योऽर्थः अन्यकवेः काव्ये वर्तते स एव सर्वः अर्थो भवेत्, किन्तु अपरमर्थविभेदं तात्त्विकभेदशून्यं वाक्यान्तराणां विरचनं वर्तते तत्काव्यं प्रतिबिम्बकल्पम् एतदाख्यं स्यात् । एवं च एकार्थं वाक्यतो भेदवत् काव्यं प्रतिबिम्बकल्पनामकम् इति मधुसूदन्याम् ।

उदाहरणं यथा-

ते पान्तु वः पशुपतेरलिनीलभासः

कण्ठप्रदेशघटिताः फणिनः स्फुरन्तः ।

चन्द्रामृताम्बुकणसेकसुखप्ररूढैः -

यैरङ्कुरैरिव विराजति कालकूटः ॥⁴ इति ।

अर्थात् पशुपतेः कण्ठप्रदेशघटिताः भ्रमरवन्नीलवर्णयुताः दीप्यमानाः कृष्णसर्पाः यूष्मान् पान्तु, ये खलु चन्द्राम्बुकणानां सेकेन संसिक्ताः कालकूटाङ्कुराः इव ।

केवलं शब्दानां परिवर्तनेन अस्यैव साक्षात् अनुकरणं दृश्यते अन्यत्र -

“जयन्ति नीलकण्ठस्य नीलाः कण्ठे महाहयाः ।

गलद्गङ्गाम्बुसंसिक्तकालकूटाङ्कुरा इव” ॥⁵ इति ।

अस्यायमर्थः - नीलकण्ठस्य कण्ठे वर्तमानाः नीलाः महासर्पाः जयन्ति ये खलु गलता गङ्गाम्बुना संसिक्तस्य कालकूटस्य अङ्कुरा इव ।

¹ ध्वन्यालोकः, चतुर्थ उद्योतः, कारिका-12

² ध्वन्यालोकः, चतुर्थ उद्योतः, कारिका-13, लोचनम्

³ काव्यमीमांसा, द्वादशोध्यायः, पृ.-198

⁴ उपरिवत्

⁵ उपरिवत्

एवम् उभयत्र नीलकण्ठकण्ठस्थितसर्पाणां जलकणसेकप्रादुर्भूतकालकूटाङ्कुरसादृश्यमुद्भा-
वितम् । तथाह्यत्र एकार्थत्वं वाक्यभेदवत्वञ्च वर्तते । एवं हि द्वितीयं पद्यमिदं प्रतिबिम्बकल्पना-
त्मकम् । एवंविधकार्यं भ्रामककविभिः क्रियते इति राजशेखरः । किञ्चेदं न मनागपि श्लाघनीयं
अतः कविभिः नाचरणीयम् । वस्तुतः आनन्दवर्धनः कविषु महान् श्रद्धावान् आसीदिति भाति,
तथाहि तेन कवीनाम् अज्ञानतः इदं सादृश्यं भवतीति धिया संवादो नाम्ना व्याख्यातम्, उक्त-
ञ्च तेन 'संवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्' इति । राजशेखरस्तु साक्षात् हरणशब्दस्य
प्रयोगं कृतवान् । इदन्तु अद्यत्वे प्लागारिजम् इत्यस्य साक्षात् प्रतिशब्दः एव । द्वितीयप्रकारकः
यः संवादः 'आलेख्याकारवत्' तदपि न श्लाघनीयः । यतो हि आलेख्यं नाम मूलवस्तुनः एव
प्रतिरूपम् यद्धि मूलानुसारि एव भवेत् । इदमपि सत्यं यत् यावता अपि नैपुण्येन चित्राङ्कणं
भवतु नाम तनु कदाचिदपि मूलवत् न प्रतिभाति । चित्रन्तु चित्रवत् एव निर्जीवम् । किञ्च चि-
त्रकाराः चित्रनिर्माणसमये कदाचित् सौन्दर्याधानमपि कर्तुं समर्थाः, यथात्वे चित्रस्य लावण्यम्
एधते सोऽपि प्रशंसितो भवति । काव्यनिर्माणसमयेऽपि कवयः कदाचित् अस्याः रीतेः अनुसरणं
कुर्वन्ति, अपरस्य कस्यचित् काव्यस्य भावभाषादिषु किञ्चित् किञ्चित् परिवर्तनं संयोजनं वा
विधाय स्वनाम्ना प्रकाशयन्ति । यद्यपि अत्र वैचित्र्यम् अभिनवत्वञ्च सुस्पष्टं, तथापि पठनवेला-
यां बारंबारं प्रकृतस्यैव स्मरणं भवति । इयमेव कवेः व्यर्थता । आनन्दवर्धनोऽपि तुच्छात्मरूपेण
आलोचयन्नस्य निन्दामेव कृतवान् । राजशेखरेण अस्य स्वरूपमेवमकारि-

क्रियताऽपि यत्र संस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नवद्भाति ।

तत्कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम् ॥⁶

अर्थात् काव्यविषयस्य स्वल्पमात्रसंस्कारेण यदा तन्नूतनतया प्रस्तुवन्ति अर्थचतुराः कवयः तदा
तत् आलेख्याकारनाम्ना प्रथते । तत्र पुनरुदाहरणम्-

जयन्ति धवलव्यालाः शम्भोर्जूटावलम्बिनः ।

गलद्गङ्गाम्बुसंसिक्तचन्द्रकन्दाङ्कुरा इव ॥⁷ - इति ।

अत्रेवं दृश्यते यत् पूर्ववर्णितस्यैव श्लोकस्य किञ्चिन्मात्रं परिवर्तनं कृतं कविना, नीलकण्ठ-
स्य कण्ठस्थं कृष्णसर्पं विषाङ्कुरेति नोक्त्वा शम्भोर्जूटावलम्बिनः श्वेतसर्पत्वेन संस्कारितः । प्रायः
विषयः समानः एव । मनागेव परिवर्तितं कुत्रचित्, तदपि स्पष्टं प्रतीयते । अतः इदम् आले-
ख्यप्रख्यकाव्यम् । इदन्तु चुम्बककवीनां कार्यम् । ये खलु अन्येषां काव्यवस्तु आदाय केवलं
शब्दानां परिवर्तनं विधाय स्वनाम्ना प्रचारयन्ति । अन्तिमः योऽयं संवादः तुल्यदेहिवत्, तत्र
तु सादृश्ये सत्यपि सः न त्यक्तव्यः कविना । नायं अनन्यात्मः, न वा तुच्छात्मः, अयं सं-
वादस्तु प्रसिद्धात्मः इति ध्वन्यालोककारमतिः । प्रकृतेः एवमस्ति वैचित्र्यं यदत्र सर्वे पदार्थाः
परस्परभिन्नाः एव । न कयोश्चित् द्वयोः वस्तुनोः सम्पूर्णं सादृश्यम् अवलोक्यते । तथा हि द्वयोः
जीवयोर्मध्ये यद्यपि भासते दर्शनसादृश्यं परम् उभयोः व्यक्तित्वं चरित्रं व्यवहारः प्राणशक्तिश्च न
कदाचित् एकरूपाः भवन्ति । एवं यथा पृथक्तया द्वावेव प्राणिनौ अस्माकं चित्तमावर्जयतः तेषां
अन्तर्हितवैशिष्ट्यत्वात्, तथैव अलौकिकप्रतिभावतां महाकवीनां सृष्टिष्वपि यादृशं वा सादृश्यं

⁶ काव्यमीमांसा, द्वादशोऽध्यायः, पृ.-199

⁷ उपरिवत्

अस्तु नाम काव्यानां जीवातुभूतः रसस्तु स्वमहिम्ना प्रत्येकमपि काव्येषु समुज्ज्वलं प्रतिभाति, न तत्र अवरोधो भवति कश्चनोऽपि बहिरङ्गसंवादः । न खलु शरीरद्वयं क्वचिद् अभिन्नम्, उभयत्रापि स्वतन्त्रतया आत्मचैतन्यस्य स्फूर्तिरपि अनपह्नवणीया । तथाह्युक्तम् अभिनवगुप्तेन- “ तृतीयन्तु विभिन्नकमनीयशरीरसद्भावे सति ससंवादमपि काव्यवस्तु न त्यक्तव्यं कविना । न हि शरीरी शरीरिणान्येन सदृशोऽप्येक एवेति शक्यते वक्तुम् ।” अपि चास्य स्वातन्त्र्यम् अभिनवत्वञ्च प्रतिपादयितुं ध्वनिकारः कथयति पूर्ववर्णितेन विषयेण सह यावत् प्रभूतं सादृश्यं स्यात् नाम यदि स्वतन्त्रस्य आत्मनः स्फुरणं भवति चेत् परवर्तिकविना वर्णितं पूर्वसदृशमपि वस्तुजातं विशिष्टं सौन्दर्यमण्डितं देदीप्यते । यथा चन्द्रमण्डलस्य स्निग्धतायाः अनुकरणे कृतेऽपि तन्व्याः आननं सौन्दर्यातिशयात् भातितरां प्राणशक्तोल्लासात् तथैव । तथाहि-

आत्मनोऽन्यस्य सद्भावे पूर्वस्थित्यनुयाय्यपि ।

वस्तु भातितरां तन्व्याः शशिच्छायमिवाननम् ॥⁸ इत्युक्तम् आनन्दवर्धनेन ।

अत्र राजशेखरस्य किञ्चित् भिन्नम् अभिमतं दृश्यते । निहृतयोनिनामकः अर्थस्य यो द्वितीयः भेदः तेन स्वीकृतः, तस्यापि पुनः द्विविधत्वमङ्गीकृत्य एकत्र तुल्यदेहिबत्-काव्यस्य आलोचनं कृतवान्, अन्यत्र तु परपुरप्रवेशतुल्यम् । यत्र विषययोः भेदेऽपि सादृश्यातिशयात् अभेदवद्भाति तत् प्रथमप्रकारकम् काव्यम् । तथाह्युक्तम्-

विषयस्य यत्र भेदेऽप्यभेदबुद्धिर्नितान्तसादृश्यात् ।

तत्तुल्यदेहितुल्यं काव्यं बध्नन्ति सुधियोऽपि ॥⁹

उदाहरणं यथा-

अवीनादौ कृत्वा भवति तुरगो यावदवधिः

पशुर्धन्यस्तावत्प्रतिवसति यो जीवति सुखम् ।

अमीषां निर्माणं किमपि तदभुद्गधकरिणां

वनं वा क्षोणीभृद्भुवनमथवा येन शरणम् ॥¹⁰

अत्रायं भावः, तस्यैव अश्वस्य धन्यं खलु जीवनं यत् सः अन्येभ्यः मेषादिभ्यः स्थानं प्रदाय सुखेन निवसति । परोपकाराय आत्मानं नियोजयति । अन्यथा तादृशस्य गजस्य जीवनं तु वृथैव भाति यस्य निवासः अरण्यम् उत वा राजगृहम् । न खलु सर्वजनसाधारणतया उपभोग्यतां समायातीति भावः । अत्र प्रत्युदाहरणं यथा-

प्रतिगृहमुपलानामेक एव प्रकारो

मुहुरुपकरणत्वादार्जिताः पूजिताश्च ।

स्फुरति हतमणीनां किन्तु तद्भाम येन

क्षितिपतिभवने वा स्वाकरे वा निवासः ॥¹¹ इति ।

⁸ ध्वन्यालोकः, चतुर्थ उद्योतः, कारिका-14

⁹ काव्यमीमांसा, द्वादशोऽध्यायः, पृ.-199

¹⁰ उपरिवत्

¹¹ काव्यमीमांसा, द्वादशोऽध्यायः, पृ.-200

अत्र पाषाणानां विषये वर्णितमस्ति यत् गृहेषु उपलब्धानां साधारणप्रस्तराणां दशा तु समाना एव । उपयोगसाधनत्वात् ते अर्चिताः पूजिताश्च भवन्ति । परं मणीनां हतानां तु स्फुरणं वृथा एव, यतो हि तेषां निवासः स्वाकरः अथवा राजभवनम् । न खलु सार्वभौमिकता वर्तते तेषामिति भावः ।

पद्ययोरनयोः गजतुरगयोः मणिपाषाणयोः वर्णितत्वेन परस्परं विषयगतो भेदस्तु वर्तते एव । किन्तु सकललोकसधारणतया उपभोग्यत्वानुपभोग्यत्वस्य उभयत्रापि निष्कर्षतया नितान्तसादृश्यं सहृदयानां चेतसि स्फुटतीति अनयोः तुल्यदेहित्वम् ।

पक्षान्तरे यत्र विषयवस्तु समानम् एव, परं रचनाकौशले दृश्यते भिन्नता तत् परपुरप्रवेश-तुल्यं काव्यम् । यथा-

मूलैक्यं यत्र भवेत्परिकरबन्धस्तु दूरतोऽनेकः ।
तत्परपुरप्रवेशप्रतिमं काव्यं सुकविभाव्यम् ॥¹²

इदानीम् उदाहरणद्वारेण विषयोऽयं स्पष्टीक्रियते-

यस्यारातिनितम्बिनीभिरभितो वीक्ष्याम्बरं प्रावृषि
स्फूर्जद्गर्जितनिर्जिताम्बुधिरवस्फाराभ्रवृन्दाकुलम् ।
उत्सृष्टप्रसभाभिषेणनभयस्पष्टप्रमोदाश्रुभिः
किञ्चित्कुञ्चितलोचनाभिरसकृद् घ्राताः कदम्बानिलाः ॥¹³

अर्थात्, यस्य राज्ञः शत्रुवनिताभिः वर्षासमये समुद्रगर्जनादपि प्रचण्डं मेघगर्जनयुतं गगनम् अवलोक्य पतीनां युद्धक्षेत्रगमनभयात् परित्राणं प्राप्य आनन्दाश्रु निःसारितम्, तैरेव कुञ्चितलो-चनाभिः कदम्बानिलाः असकृद् घ्राताः । एवमन्यत्रापि,

आच्छिद्य प्रियतः कदम्बकुसुमं यस्यारिदारैर्नवं
यात्राभङ्गविधायिनो जलमुचां कालस्य चिह्नं महत् ।
हृष्यद्भिः परिचुम्बितं नयनयोर्नस्तं हृदि स्थापितं
सीमान्ते निहितं कथञ्चन कर्णावतंसीकृतम् ॥¹⁴ - इत्यत्र ।

अर्थात् यस्य अरिदाराः युद्धार्थप्रस्थानस्य भङ्गविधायिनं वर्षाकालस्य महत् चिह्नस्वरूपं कद-म्बपुष्पं स्वपतिभिः चयितं । प्रसन्नाः सत्यः तं परिचुम्बितं, नयनयोर्नस्तं, हृदि स्थापितं, अन्ते कथञ्चन कर्णावतंसीकृतम् । एवमुभयोरनयोः पद्ययोः वर्षाकालवर्णनपरतया मूलतः ऐक्यं किन्तु रचनोपक्रमस्तु अत्यन्तं भिन्नः । अतः इदं द्वितीयमुदाहरणं परपुरप्रवेशतुल्यम् ।

एवं प्रतिबिम्बकल्पादीनां चतुर्णामर्थानामाधारेण कवीनां द्वात्रिंशदर्थहरणोपायाः वर्णिताः राजशेखरेण । कवीनामपि भ्रामकादयः चत्वारः भेदाः निर्दिष्टाः ये खलु एवं शब्दार्थहरणेषु प्रवृत्ताः । पञ्चमे यः अस्ति चिन्तामणिनामधेयः सैव अलौकिकप्रतिभासम्पन्नः कविश्रेष्ठः । उक्तञ्च तेन-

¹² उपरिवत्

¹³ उपरिवत्

¹⁴ काव्यमीमांसा, द्वादशोऽध्यायः, पृ.-201

चिन्तासमं यस्य रसैकसूतिरुदेति चित्राकृतिरर्थसार्थः ।
अदृष्टपूर्वो निपुणैः पुराणैः कविः स चिन्तामणिरद्वितीयः ॥¹⁵ इति ।

एवम् अपहरणविषये मयाऽत्र सर्वं वितत्या विवृतम् । परं कवीनां परस्परसंवादिनी बुद्धिरपि चिरप्रसिद्धा एव । तथाहि भिन्नवास्तव्यानामपि महाकवीनां कालिदास-भवभूति-बाणभट्टानां काव्येषु दृश्यते विस्मयजनकं सादृश्यम् । किं बहुना पाश्चात्येषु सेक्सपीयरादीनां काव्येष्वपि विषयपात्रादिनिर्वाचनवेलायां भारतीयानां प्राधान्यम् अस्मान् विस्मापयति । न खलु कश्चनोऽपि अन्येषां काव्यमास्वाद्य स्वकीयां रचनां विहितवान् इति वक्तुं क्षमः भिन्नकालिकत्वात् । किञ्च कवयः पदावलीप्रयोगविषये सर्वथा नवीनं किमपि समुद्भावयितुं कदाचिदपि न शक्नुवन्ति इति स्वयमानन्दवर्धनेनापि निगदितम् । तथाहि प्रतिभावन्तो महाकवयः पूर्वेः संस्पृष्टमपि वस्तुजातं रसभावादिसंयोगेन सर्वथा नूतनतया प्रस्तुवन्ति प्रसिद्धताञ्चाधिगच्छन्ति । काव्यक्षेत्रे यतो हि सहृदयानां रसास्वादनमेव प्रमुखतां भजते अतः तद्विषये येषां वैदग्ध्यमस्ति ते एव महाकविपदवीं प्राप्नुवन्ति । तथाहि उच्यते—

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्
स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ॥¹⁶ इति ।

अतः सादृश्यम् अस्ति नाम तत्र एकेन अपरस्य हरणमेव कृतमिति वक्तुं नैव शक्यते । तथापि इदं सादृश्यमपि एवं न भवेत् यत्तत् दृष्ट्वा एव पूर्वकवेः साक्षात् अनुकरणम् इति प्रतिभायात् । वर्तमानकाले अपि यथा विद्यार्थिनः किमपि लेखनवेलायां पूर्वलेखकस्य पूर्णतया अनुकरणे प्रवृत्ताः भवन्ति तदपि न वाञ्छनीयाः । अवश्यं पठेत्, ततः ज्ञानम् आहरेत् परं विषयवस्तुनः साक्षादनुकरणं मा स्यादिति शम् ॥

सहायकग्रन्थाः

1. आचार्यविश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणिः, डा० नगेन्द्रः (सम्पादकः), 1996 ई०, ध्वन्यालोकः, ज्ञानमण्डल-लिमिटेड, वाराणसी, उ० प्र०
2. त्रिपाठी, रामसागरः, 1963 ई०, ध्वन्यालोकः, मोतीलाल-बनारसीदासः, वाराणसी, उ० प्र०
3. मिश्रः, मधुसूदनः, 1934 ई०, काव्यमीमांसा, चौखम्बा-संस्कृत-सीरीज, वाराणसी, उ० प्र०
4. पालः, विपदभञ्जनः, 1424 बंगाब्द, काव्यप्रकाशः, संस्कृतपुस्तकभाण्डारः, कोलकाता
5. आचार्यः विश्वेश्वरः, डॉ० नरेन्द्रः (सम्पादकः), 1998 ई०, काव्यप्रकाशः, ज्ञानमण्डल-लिमिटेड, वाराणसी, उ० प्र०

¹⁵ उपरिवत्, पृ.-202

¹⁶ ध्वन्यालोकः, चतुर्थ उद्योतः, कारिका-14

सुखबोधिन्नुसृत्य अहोरात्र इत्यत्र समासविमर्शः

अरुण भट्टः*

सारांश

‘अहोरात्र’ संस्कृत-विद्या की कई शाखाओं से सम्बन्ध रखने वाला एक पारिभाषिक शब्द है। पूर्वमीमांसा-दर्शन में यह बहुश्रुत और लौकिक संस्कृत-साहित्य में बहुप्रयुक्त शब्द है। इस शब्द के प्रयोग में लिंग निर्धारण की एक परम्परा-प्राप्त शास्त्रीय समस्या चलती चली आई है और प्रयोग करते समय शास्त्रकारों और सामान्य प्रयोक्ताओं ने इसे कभी नपुंसक और कभी पुल्लिंग में प्रयुक्त किया है। ‘सुखबोधिनी’ भट्टोजी दीक्षित द्वारा रचित ‘वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी’ पर नीलकण्ठ दीक्षित द्वारा रचित एक अप्रकाशित टीका है। इस टीका में ‘अहोरात्र’ शब्द को नपुंसक मानने वालों का मत ध्वस्त कर इसके पुंस्त्व की सिद्धि की गई है। निबन्धकार ने इसी टीका के आलोक में उपर्युक्त शब्द की पुंस्त्व-सिद्धि की है। (सम्पादक)

मुख्यशब्द : अहोरात्र, सुखबोधिनी, भट्टोजी दीक्षित, नीलकण्ठ दीक्षित, सिद्धान्तकौमुदी

नामरूपात्मकेऽस्मिन्प्रपञ्चे सर्वोऽपि मानवव्यवहारः शब्दैरेव प्रवर्तते। शब्दज्ञानमन्तरा लो-
कव्यवहारो दुस्तर इत्यत्र न कापि विप्रतिपत्तिः। परेषामर्थप्रत्यायको हि शब्दप्रयोगः। शब्दज्ञा-
नन्तु व्याकरणाधीनम्। विना व्याकरणं यथावद्भाषावबोधो नैव जायते। सत्स्वनेकेषु व्याकरणेषु
पाणिनीयमेव मूर्धन्यं स्थानमावहति। इदानीन्तनजगति पाणिनिव्याकरणस्याध्ययनमध्यापना-
दिकञ्च “सिद्धान्तकौमुदी” इत्याख्ये ग्रन्थे भृशं प्रवर्तते। अध्ययनसौकर्याय प्रकरणं प्रविभज्य
भट्टोजीदीक्षितैः विरचिता “वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी” सिद्धान्तानां कौमुदीत्वेन राराष्ट्रि। सिद्धान्त-
कौमुद्याः रचनानन्तरं तदुपरि बहूनि व्याख्यानानि रचितानि। नैकाः सिद्धान्तकौमुदीव्याख्याः
लोकमुख्यमागताः। अन्याः काश्चन टीकाः मातृकारूपेणैव समुपलभ्यन्ते, काश्चन नाममात्रेण सं-
श्रूयन्ते। तासु अप्रकाशितासु सिद्धान्तकौमुद्याः व्याख्यासु अतिविशिष्टा, दुर्लभा, कौमुदीकारस्य
हार्दं प्रकटयितुं समर्था श्रीनीलकण्ठवाजपेयिना रचिता सुखबोधिनीव्याख्या। व्याख्यायामस्यां
विशिष्टाः विचाराः विमृष्टाः।

कौमुदीकारैरुक्तानामुदाहरणानामाशयं प्रकयत्ता तत्पुरुषसमासप्रकरणस्थमुदाहरणं विमृ-
ष्टम् - अहोरात्रशब्दः पुंसि उत क्लीबे इति। रात्राह्लाहाः पुंसि¹ इति पुंस्त्वविधायकं सूत्रम्।² द्व-
न्द्वतत्पुरुषयोरित्यनुवृत्तं रात्रादिभिर्विशेष्यते, तदन्तविधिना रात्राह्लाहान्तद्वन्द्वतत्पुरुषाः पुंसि भव-
न्तीत्यर्थः। परवल्लिङ्गतया स्त्रीनपुंसकयोः प्राप्तौ पुंस्येवेति बोधयितुमयं विधिः। अहश्च रात्रिश्च
तयोः समाहार इति समाहारद्वन्द्वे अहस्सर्वैकदेश³ इति समासान्ते अच्प्रत्यये सुब्लुकि, अहन्
रात्रि अ इति जाते, यस्येति चेति लोपे, अहन् इत्यस्य नकारस्य रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्या-

* व्याकरणप्राध्यापकः, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, राजीवगान्धीपरिसरः, शृङ्गेरी, कर्नाटकम् - ५७७१३९

¹ अष्टाध्यायी, 2.4.29

² अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः। अष्टाध्यायी, 5.4.87

³ रोऽसुपि इत्यत्र पठितेन वार्तिकेन रुत्वम्।

नम्⁴ इति रुत्वे हशि चेत्युत्वे, जातिरप्राणिनामित्येकवद्भावेन परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः⁵, स नपुंसकमित्येतौ⁶ बाधित्वा रात्राहाहाः पुंसीति पुंस्त्वेन अहोरात्रः इति रूपं सिध्यति ।

अत्र पूर्वपक्षः - अहोरात्रशब्दस्य समाहारद्वन्द्वे स नपुंसकमिति सूत्रेण अहोरात्रमिति रूपम् । तथा हि अहश्च रात्रिश्च तयोः समाहार इति समाहारद्वन्द्वे समासान्ताच्छ्रत्यये अहोरात्र इति जाते “रात्राहाहाः पुंसि” इत्यनेन पुंस्त्वेन भाव्यमाहोस्वित् “स नपुंसकमिति” नपुंसकेन भाव्यमिति संशयः । रात्राहाहा इत्यनेन रात्रादीनामेव केवलानां पुंस्त्वं विधीयते, तदन्ते तु नास्य प्रवृत्तिः । तदन्ते परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः इति परवल्लिङ्गता एव भवति । न च परत्वात् परवल्लिङ्गतां बाधित्वा रात्राहाहा इत्यनेन पुंस्वमिति वाच्यम् । रात्राहाहा एवं परवल्लिङ्गमित्यनयोः भिन्नविषयत्वात् विप्रतिषेधे परं कार्यमित्यस्य अप्रवृत्तेः । अतः रात्राद्यन्ते परवल्लिङ्गता एव प्राप्ता । परन्तु समाहारे द्वन्द्वस्य नपुंसकविधायकं स नपुंसकमिति सूत्रं परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः इत्यस्यापवादः । अत्र हि अहश्च रात्रिश्च तयोः समाहार इति समाहारद्वन्द्वे परवल्लिङ्गमित्येतद्बाधित्वा स नपुंसकमिति नपुंसकतैव स्यादिति अहोरात्रमित्येव रूपं युक्तम् इति ।

अत्रोच्यते सिद्धान्तः - रात्राहाहाः पुंसीति रात्राद्यन्तस्यैव पुंस्वविधिः, न तु रात्रादीनां केवलानाम् । केवलानां शब्दानां लिङ्गनिर्णयार्थं लिङ्गानुशासनमेवारब्धं पाणिनिना । अष्टाध्याय्यां तु केवलानां शब्दानां लिङ्गविधानाय न किमपि सूत्रं प्रवृत्तम् । किञ्च परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः, पूर्ववदश्ववडवौ, हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि, रात्राहाहाः पुंसि, अपथं नपुंसकम्, अर्धर्चाः पुंसि च इत्येवं सूत्रमध्यपातित्वात् पूर्वोत्तरसाहचर्याच्च समासस्य एव लिङ्गविधायकं सूत्रम् । किञ्च अहोरात्र इति पुंवत्त्वाभावे “ते तु त्रिंशदहोरात्र⁷” इति अमरविरोधस्यात् । “मासेन स्यादहोरात्रः पैत्रो वर्षेण दैवतः” इत्यादिग्रन्थविरोधोऽपि स्यात् । तस्मात् द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति रात्राद्यन्तस्समासः पुंसि इत्येव अर्थः वक्तव्यः । एवं च परवल्लिङ्गमित्यादिसूत्रेण परवल्लिङ्गतायां प्राप्तायां तदपवादतया स नपुंसकमिति नपुंसकत्वे प्राप्ते तद्बाधनाय इदं सूत्रम् । स नपुंसकमिति समाहारनपुंसकता अनेन परत्वाद् बाध्यते । इत्थं च समाहारद्वन्द्वे अहोरात्र इति रूपम् ।

ननु द्वन्द्वस्समाहार एव इति नियमाभावात् इतरेतरयोगद्वन्द्वे अहोरात्राविति द्विवचनेन भाव्यम् इति चेत् ; इष्टापत्तिः । इतरेतरयोगद्वन्द्वे स नपुंसकमिति न प्रवर्तत एव । जातिरप्राणिनामित्येकवद्भावस्यापि समाहार एव प्रवृत्तेः इतरेतरयोगद्वन्द्वे तदभावात् अहोरात्राविति भवत्येव । परवल्लिङ्गमित्यनेन परवल्लिङ्गतायां प्राप्तायाम् अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा इति न्यायेन रात्राहाहाः पुंसि इति परवल्लिङ्गस्यापि बाधकः ।

किञ्च यदुदाहृतं द्विरात्रः, त्रिरात्र इत्यादि तदप्ययुक्तमेव । रात्राहाहाः पुंसीति सूत्रे सत्यपि द्विरात्रादिशब्दे नपुंसकत्वमेव “संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्” इति वचनारम्भात् । तस्मात् द्विरात्रं, त्रिरात्रं, नवरात्रमित्याद्येव उदाहरणम् । ननु अहोरात्र इत्यत्र कस्समासः? तत्पुरुषस्याङ्गुलेस्सङ्ख्याव्ययादेः इत्यनुवर्तनात् अहस्सर्वैकदेश इत्यनेन समासान्तस्याच्छ्रत्ययस्य विधानादहोरात्र इत्यत्र तत्पुरुषसमासः स्यादिति वाच्यम् । अत्र अहो रात्रिरिति षष्ठीतत्पुरुषस्य काप्यसम्भव एव । तथापि ब्रह्मणः यदहः तस्य अवयवभूता मनुष्यसम्बन्धिनी रात्रिरित्यर्थे षष्ठीतत्पुरुषः स्यादिति चेत् मैवम् । अहस्सर्वैकदेश इति सूत्रे अहर्ग्रहणस्य द्वन्द्वार्थत्वप्रतिपादनादेतादृशषष्ठीतत्पुरुषस्य प्रयो-

⁴ अष्टाध्यायी, 2.4.6

⁵ अष्टाध्यायी, 2.4.26

⁶ अष्टाध्यायी, 2.4.17

⁷ अमरकोष, 1/4/12

अरुण भट्टः

सुखबोधिन्यनुसृत्य अहोरात्र इत्यत्र समासविमर्शः

गाभाव एव । न च अहश्शब्दस्याहस्तुल्यतायां रात्रेः रात्रितुल्यतायाम् अहश्चासौ रात्रिश्च इति कर्मधारयस्स्यात् इति शङ्क्यम् ; मुख्ये कार्यसम्भवे गौणार्थमादाय समासस्यायोगात् । किञ्च “हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसीति ” सूत्रे द्वन्द्वस्यैव दर्शनात् स एव उचितः । अत एव अहस्सर्वेक इति सूत्रे “अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थमिति” भाष्यकारा ऊचिरे ॥ शम् ॥

सहायक-ग्रन्थ-सूची

1. ईश्वरचन्द्रः (टीकाकार), 2004 ई०, अष्टाध्यायी, चौखम्बा-विद्या-भवन, वाराणसी, उ० प्र०
2. गिरिधरशर्मा (सम्पादक), 1979 ई०, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, उ० प्र०
3. श्रीपाद सत्यनारायणमूर्ति (सम्पादक), 2004 ई०, परिभाषेन्दुशेखरः, राष्ट्रिय-संस्कृत-विद्यापीठम्
4. सभापति शर्मा उपाध्याय (सम्पादक), 1997 ई०, प्रौढमनोरमा, वाणी विलास प्रकाशन, वाराणसी, उ० प्र०
5. चारूदेव शास्त्री (सम्पादक), 1968 ई०, व्याकरणमहाभाष्यम्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
6. प्रभाकरमिश्रः (सम्पादकः), 2004 ई०, वैयाकरणभूषणसारः, चौखम्बा-विद्या-भवन, वाराणसी, उ० प्र०
7. भर्तृहरि, सूर्यनारायण शुक्ल (सम्पादक), 1961 ई०, वाक्यपदीयम्, चौखम्बा-संस्कृत-सीरिस्, वाराणसी, उ० प्र०
8. नागेशभट्टः, 1994 ई०, लघुशब्देन्दुशेखरः, चौखम्बा-सुर-भारती, वाराणसी, उ० प्र०

लघुचन्द्रिकाप्रदर्शितदिशा बौद्धतार्किकमतदूषणे

पी० आर० वासुदेवन्*

सारांश

मधुसूदन-सरस्वती 16 वीं सदी के प्रतिष्ठित वेदान्ताचार्य हो आए हैं। आपकी एक कृति 'अद्वैतसिद्धिः' वेदान्त का बड़ा ही महत्वपूर्ण और शास्त्रीय ग्रन्थ माना जाता है। इस पर कई टीकाएँ आचार्यों ने लिखीं। ब्रह्मानन्द-सरस्वती ने 'लघुचन्द्रिका' के नाम से टीका की। इस टीका में चार प्रकार के मिथ्यात्व के सन्दर्भ में टीकाकार ने 'छान्दोग्यश्रुति' के आधार पर बौद्धों और नैयायिकों के मत का खण्डन किया है। आलेख में इन्हीं चार मिथ्यात्व की सिद्धि में टीकाकार के शास्त्रीय दृष्टि और खण्डन-नैपुण्य का प्रतिपादन किया गया है।

मुख्यशब्द : अद्वैतसिद्धिः, दृश्यत्वम्, मधुसूदनसरस्वती, लघुचन्द्रिका, विमतम्

1 उपक्रमः

निश्चप्रचमिदं विपश्चिदपश्चिमानां यद् अद्वैतसम्प्रदाये विद्यमानानां ग्रन्थतल्लजानां मध्ये अद्वैतसिद्ध्याख्यं ग्रन्थरत्नं विशिष्टस्थानं आवहति इति। तस्य प्रणेताः मधुसूदनसरस्वतीस्वामिपादाश्च सर्वशास्त्रपारङ्गताः इत्यपि विदितमेवास्माकम्। मधुसूदनसरस्वत्याः पारं वेत्ति सरस्वती इति वर्णयन्तः ब्रह्मानन्दसरस्वतयो हि तदीयं सर्वशास्त्रपारतन्त्र्यादि सरस्वत्या एव तदीयविद्यासामर्थ्यावगमयोग्यतावर्णनादिना तत्र तत्र उद्धोषयन्ति। मधुसूदनसरस्वतीस्वामिपादैः रचितायाः अद्वैतसिद्धेः व्याख्यातारः ब्रह्मानन्दसरस्वतीस्वामिपादाः स्वग्रन्थे लघुचन्द्रिकाभिधे ग्रन्थव्याख्या-नव्याजेन शास्त्रेषु अप्रतिमं सञ्चारस्वातन्त्र्यं प्रकटयन्ति तत्र तत्रेति विदितवन्तो वयम्। लघुचन्द्रिकायां न्यायामृततरङ्गिणीभ्याम् अस्पृष्टा अपि तत्तादृशाशङ्कोल्लेखाः खण्डदेवादिवखण्डितस्य प्राचीनमीमांसकप्रस्थानस्य व्यवस्थापनप्रकारश्च नियतमेव स्वामिपादानाम् अनर्गलप्रचारित्वं शास्त्रेषु प्रतिष्ठापयन्ति। अत्र चतुर्थमिथ्यात्वसन्दर्भे स्वामिपादैः छान्दोग्यश्रुतिमादाय अभिहितानि बौद्धतार्किकमतदूषणानि किञ्चिदिव अवलोकयामः। तदर्थं किञ्चिदिव चतुर्थमिथ्यात्वस्वरूपं प्रतिपाद्य खण्डप्रकारम् अनुवदामः।

2 चतुर्थमिथ्यात्वम्

'विमतं-मिथ्या-दृश्यत्वात्' इत्यत्र मिथ्यात्वस्वरूपं किमिति विचिकित्सायां चित्सुखाचार्यसम्मतं मिथ्यात्वलक्षणमस्ति स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्¹ इति। तच्च किरूपम् इति चेत्,

* Assistant Professor, Vedanta Chair, The Madras Sanskrit, College, Chennai-04

¹ अद्वैतसिद्धिः पृ० 182

‘तच्च स्वात्यन्ताभावाधिकरणे एव प्रतीयमानत्वम्।²’ स्वात्यन्ताभावाधिकरणे एव प्रतीयमानत्वम् इति तदुपपादेन पूर्ववैलक्षण्यमपि उपपन्नमिति अभिमानः । अभिमानं चाग्रे ब्रह्मानन्दस्वामिनः व्युदस्यन्ति । स्वाश्रयीभूतपदार्थनिष्ठस्य अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगित्वस्य रजते सत्त्वेन समन्वयश्च लक्षणस्वरूपव्याक्रियया एव स्पष्टः ।

अत्र विशेषणविशेष्यभावव्यात्यासमात्रेण वैलक्षण्यं यदि यथाश्रुतमूलरीत्या विवक्ष्यते तर्हि स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावव्याप्या या स्वप्रकारकप्रतीतिविशेष्यता तन्निरूपितप्रकारताश्रयत्वं चतुर्थमिथ्यात्वमिति वैलक्षण्यं प्रदर्शितं स्यात् । तदा व्याप्यत्वं लक्षणघटकं जातम् । मिथ्यात्वघटकात्यन्ताभावस्य केवलान्वयित्वात् तत् व्याप्यत्वं तदभाववदवृत्तित्वलक्षणं न प्रवेशयितुं शक्यम्, किन्तु स्वव्यापकतत्त्वम् एव निवेश्यम् । तथा च गौरवम् इति शङ्कायामुदितायाम् अत्रोच्यते, सूक्ष्मेक्षिकया पर्यालोच्यमाने इदमवगम्यते यत् विशेष्यविशेषणभावव्यात्यासकृतं वैलक्षण्यं नात्र विवक्षितम् इति अवगच्छामः । किन्तु द्वितीयमिथ्यात्वे यावत्पदेन प्रातिस्विकरूपेण व्यक्तीः आदाय तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य विवक्षा । तथा च तत् साकल्यघटितमिति उक्तं भवति । चतुर्थं तु व्यापकत्वघटितमिति ततो वैलक्षण्यम् । ‘वाच्ये एव मेयत्वम्’ इति कथने यथा मेयत्वव्यापकत्वं वाच्यत्वे प्रतीयते, तथा स्वात्यन्ताभावाधिकरणे एव प्रतीयमानत्वं इत्युक्ते प्रतीयमानत्वव्यापकत्वं स्वात्यन्ताभावे गम्यते इत्येवं ।

2.1 लक्षणे अतिव्याप्तिशङ्का तत्समाधानं च

स्वात्यन्ताभावाधिकरण एव प्रतीयमानत्वमिति लक्षणे कथिते सिद्धिकारैः न च असत्यतिव्याप्तिः³ इति ग्रन्थेन असति अतिव्याप्तिः आशङ्किता । असतः शशविषाणादेः शशविषाणमिति शब्देन स्वात्यन्ताभावाधिकरणे एव प्रतीयमानत्वेन अतिव्याप्तिः । तस्य अयं समाधिः— लक्षणे अस्याः अतिव्याप्तेः वारणाय प्रतीयमानत्वमित्यस्य सत्त्वेन प्रतीयमानत्वम् इत्यर्थो विवक्ष्यते । तथा च असतः प्रतीयमानत्वेऽपि सत्त्वेन प्रतीयमानत्वाभावत् नोक्तातिव्याप्तिः । ननु ‘असदेवेदमग्र आसीत्’ इति श्रुत्या असतोऽपि सत्त्वेन प्रतीतिरस्ति । तथा च सत्त्वेन प्रतीयमानत्वविवक्षायामपि असति मिथ्यात्वलक्षणस्यातिव्याप्तिः दुष्परिहरेति दोषस्तदवस्थ एवेति चेत् न, ‘असदेवेदम्’ इति वाक्ये न असति सत्त्वप्रकारकबोधो जायते, किन्तु ‘सदेव सोम्येदमग्र आसीत्’ इति वाक्येन यत्र यत्प्रकारकबोधो जन्यते, तत्र तदभावप्रकारकबोधः ‘असदेवेदमग्र आसीत्’ इति वाक्येन जन्यते । तथा हि— ‘सदेवेदमग्र’ इति वाक्येन इदं पदार्थं जगति अग्रकालसत्त्वप्रकारकः अद्वितीयसत्त्वप्रकारकश्च बोधो जन्यते, ‘असदेवेदम्’ इति वाक्येन तु तत्रैव जगति अग्रकालसत्त्वाभावप्रकारकः अद्वितीयसदभावप्रकारकश्च बोधो जायते ।

एवं च असदासीत् इत्यस्य ‘यत् न आसीत्’ इत्येवार्थः । तदुक्तं— ‘असतः पदानभिधेयत्वेऽपि नञ्युक्तवाक्यस्य तदयुक्तवाक्यार्थविरोधिधीजनकत्वमानुभाविकमिति ।’

² अद्वैतसिद्धिः पृ० 183

³ अद्वैतसिद्धिः पृ० 189

3 बौद्धमततार्किकमतयोः दूषणाभिधानम्

‘तद्वैक आहुरसदेवेदमग्र आसीत्’ इति असद्वादिवपक्षमुपक्षिप्य श्रुतिः तत्खण्डनाय सदेवेदमग्र आसीत् इति सद्वादिवपक्षं अवतारयति । तत्र च सदेवेत्यादि वाक्यं बौद्धानां तार्किकादीनां च मतनिरसनाय । तत्कथम् इति चेत् बौद्धमते सुषुप्ताविव प्रलयेऽपि सत्पदार्थो नास्तीति कृत्वा कारणं विनैव आद्यकार्योत्पत्तिः इति तैरुक्तम् । सुषुप्त्युत्तरजागराद्यक्षणे यथा कार्योत्पत्तिः तथैव सृष्ट्यारम्भकाले कार्योत्पत्तिरिति तन्मतम् । एतदुक्तं भवति— प्रलये विद्यमानात् असदात्मका-देव कारणात् आद्यकार्योत्पत्तिः, न कारणं विना इति यद्युच्येत, तर्हि कारणत्वाभिमतपदार्थस्य अर्थक्रियाकारित्वेन सत्त्वापत्तौ असत्कारणवाद एव भज्येत इति कारणं विनैव आद्यकार्योत्पत्ति-रिति स्वीक्रियते । तदुक्तम्— ‘अकस्मादेव जागरादवहमिति धीदर्शनात्’ इति अकस्मात् इत्यनेन कारणं विनैव उत्पत्तिः ग्रन्थकृता प्रदर्शिता इति ।

तार्किकमते तु प्रलये सदात्मकं जगत्कारणं अस्ति यद्यपि तथापि तस्य अद्वितीयत्वं नास्ति, यतः गुणादिरूपस्य द्वितीयस्य सत्त्वेन तस्य पदार्थस्य गुणादिरूपद्वितीयविशिष्टस्वभावत्वात् । अनयोः मतयोः उपपादनं उक्तरूपेण ‘तद्वैक आहुः’ इति श्रुत्या कृतम् । तत्खण्डनाय सदेवेति श्रुतिः इति ब्रह्मानन्दस्वामिभिः योजितम् । ‘सदेव सोम्येदमग्र आसीत्’ इति श्रुतौ सदेवेति अंशेन बौद्धपक्षस्य निराकरणम्, एकमेवाद्वितीयम् इत्यंशेन तार्किकपक्षस्य च निराकरणं चिकीर्षति ।

4 उपसंहारः

छान्दोग्योपनिषद्वाच्यव्याख्यानकाले यतिराजैः भाष्यकारैः ‘तद्वैक आहुरिति’ श्रुतिवाक्यस्य बौद्धपक्षोपदर्शकत्वम्, तदुत्तरं विद्यमानेन ‘सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति’ वाक्येन तत्खण्डनम् च व्यवस्थापितम् । अत्र च ब्रह्मानन्दसरस्वतीस्वामिपादैः अस्यैव श्रुतिवाक्यस्य न केवलबौद्धपक्षो-पस्थापकत्वम्, किन्तु तार्किकपक्षोपस्थापकत्वमपि अस्तीति मनसि निधाय सदेवेति वाक्यस्य बौद्धतार्किकमतद्वयनिराकरणपरतया योजनम् तु अद्भुतावहं प्रतिभाति । न केवलमिदम्, किन्तु पञ्चपादिकाविवरणवाक्यानि अपि स्वीकृत्य बौद्धपक्षोपबृंहणमपि कृतम् । असदाख्यं कारणं प्रलयकाले अस्ति, तत एव आद्यकार्योत्पत्तिः इति असत्कारणवादस्वीकारे तस्य असत्त्वमेव न स्यादिति आपत्तिमुद्भाव्य आद्यजगत्कारणं असत्- अलीकं नास्ति इति प्रवाद एव सः, न तु असत् कारणमस्तीत्यर्थः । एतावतैव असज्जगत्कारणवादित्वप्रवादः इत्यपि अभिप्रेतम् ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. गौडब्रह्मानन्दसरस्वती, 2005 ई०, लघुचन्द्रिका, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
2. मधुसूदनसरस्वती, 2005 ई०, अद्वैतसिद्धिः, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
3. विट्टलेशोपाध्याय, 2005 ई०, विट्टलेशोपाध्याय, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
4. श्री० एस० सुब्रह्मण्यशास्त्री-श्री (संपादकः), 2004 ई०, उपनिषद्भाष्यम्, दक्षिणामूर्तिमठ, वाराणसी, उ० प्र०

वर्तमान संस्कृत-साहित्य का विशिष्ट नाटक : 'प्रशान्तराघवम्'

तेज प्रकाश*

सारांश

प्रशान्तराघवम्, प्रो० अभिराजराजेन्द्र मिश्र द्वारा, अनर्घराघवम्, उदात्तराघवम्, उन्मत्तराघवम् तथा प्रसन्नराघवम् आदि पूर्ववर्ती राम-कथाश्रित नाटकों की परम्परा में प्रणीत एक आधुनिक संस्कृत-नाटक है। निबन्धकार ने इस पत्र में नाट्य तथा साहित्यशास्त्रीय मर्यादाओं के सापेक्ष इस नाटक को संस्कृत-नाट्य-साहित्य का एक 'विशिष्ट' नाटक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और प्रायः अपनी स्थापना में वह सफल भी रहे हैं। प्रस्तुत लेख और इसकी स्थापना पर विज्ञ पाठकों और संस्कृत-नाट्य-समीक्षा/आलोचना-कर्मियों की टिप्पणी या उनके विचारों का स्वागत होगा ताकि बीसवीं सदी की इस अमूल्य कृति का समग्र मूल्यांकन हो सके। (-सम्पादक)

मुख्यशब्द : अभिराजराजेन्द्र मिश्र, आधुनिक संस्कृत-नाटक, संस्कृत-नाट्य-समीक्षा

साहित्य सर्जन में नाट्यनिर्मिति कवित्व की श्रेष्ठता को द्योतित करती है- 'नाटकान्तं कवित्वम्'। इसी प्रकार सहृदय दर्शकों के हृदय में ब्रह्मानन्द-सहोदर रस का संचार करने के कारण नाट्य का अभिनय भी सर्वग्राह्यता को प्राप्त होता है। इसी कारण से नाट्य को प्रारम्भिक समय से ही प्राथमिकतापूर्वक ग्रहण करते हुए चाक्षुष-यज्ञ की संज्ञा दी गयी है। आचार्य भरत ने नाटक को दुःखार्त, शोकार्त, श्रमार्त लोगों के लिए मनोविनोद का साधन माना है-

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ॥¹

नाटकों की रमणीयता के कारण ही संस्कृताचार्यों द्वारा काव्यों में नाटक रमणीय होता है, यह घोषणा की गयी है- 'काव्येषु नाटकं रम्यम्।' इसी प्रकार आचार्य वामन ने भी रूपक को श्रेष्ठ माना है- "सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः । तद्धि चित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात् ॥²"

संस्कृत साहित्य में नाटकों की श्रेष्ठ परम्परा प्राचीन काल से अद्यावधि निर्बाध रूप से दृष्टिगोचर होती है। साथ ही साथ वर्तमान की नाट्यरचना विभिन्न प्रकार की नवीन प्रवृत्तियों को समाहित करते हुए भी दिखलाई पड़ती है। आधुनिकयुगीन संस्कृत सर्जना के क्षेत्र में संस्कृत साहित्य के सिद्ध हस्ताक्षर कवित्व शक्तिनिष्णात पद्मश्री प्रोफेसर अभिराजराजेन्द्र मिश्र अपने अप्रतिहत एवं अकुण्ठित लेखनी के कारण सहृदयजनश्लाघ्य हैं।

कविश्रेष्ठ का जन्मस्थल जौनपुर, उ० प्र० का द्रोणीपुर नामक ग्राम है। उनके पिता का नाम पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र तथा माता अभिराजी देवी था, जिसके कारण आप अभिराज उपनाम

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, नौगढ़, चन्दौली

¹ नाट्यशास्त्र, भरत, 1/115

² काव्यालंकार-सूत्र, वामन, 1/330-31

से प्रतिष्ठित हुए। प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय कॉलेज में प्राप्त कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक, परास्नातक एवं पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही दीर्घकाल तक अध्यापन एवं शोधनिर्देशन करते हुए महान् विद्वान् शिष्यपरम्परा का सर्जन किया। तत्पश्चात् देश-विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अध्यापन निर्देशन, कुलपति आदि पदों को सुशोभित किया तथा वर्तमान में भी गीर्वाणवाणी को निरंतर समृद्ध कर रहे हैं। अपनी विशाल सारस्वत-साधना जिसमें शताधिक ग्रन्थों का प्रणयन दृष्टिगोचर होता है, के लिए राष्ट्रपति-पुरस्कार सहित शताधिक पुरस्कारों से भी आपको सम्मानित किया जा चुका है। प्रो० राजेन्द्र मिश्र के ही एक नाटक लीलाभोजराजम् का एक श्लोक उनका अल्प परिचय देता है-

आकाशमीरभुवस्त्रिवेन्द्रमपुरं यावन्नवा निर्मिति-
 र्यन्नाम्ना प्रथते अभिराजयुगिनी सम्प्रत्यहो संस्कृते
 सोऽयं स्फीतयशास्त्रिवेणिककविः कर्ताऽभिराजोऽस्यसन्-
 मैत्रीनन्दनपारिजातविटपी राजेन्द्रमिश्रोऽनघः ॥³

‘प्रशान्तराघवम्’ संस्कृत के पूर्वरचित राघव परम्परा के मुरारिकृत ‘अनर्घराघवम्’ मायुराजवि-
 रचित ‘उदात्तराघवम्’, विरूपाक्षविरचित ‘उन्मत्तराघवम्’ तथा कविजयदेव विरचित ‘प्रसन्नरा-
 घवम्’ की परम्परा के आधुनिक नाट्योद्भावों को ग्रहण करता हुआ भगवान राम के जीवन पर
 आश्रित नवीन नाटक है। इस नाटक में सात अंक हैं जिसमें वाल्मीकीय रामायण की कथा के
 साथ कवि द्वारा कल्पित नवीन कथा को समाहित करते हुए विशिष्ट एवं रोचक कथावस्तु का
 निर्माण किया गया है। नाटक का नामकरण नाटक में समाहित कथानक को भी अभिव्यक्त
 करता है। वाल्मीकीय रामायण आदि स्थलों पर राम के राज्य संचालन के क्रम में राज्य में
 रजकापवाद की कथा के पश्चात् विदेहनन्दिनी सीता के वनवास गमन एवं वाल्मीकि ऋषि के
 आश्रम में लवकुश नामक पुत्रों की प्राप्ति का प्रसंग है किन्तु विद्वान कवि के विदग्धतापूर्ण
 कविकल्पनाजन्य कथानक में राजकुमार लक्ष्मण तथा कुलगुरु वशिष्ठ समयोचित प्रयत्न से
 रजकापवाद के प्रसंग को योग्य प्रत्यक्ष के द्वारा देखकर उसे शान्त करने का प्रयत्न करते हैं।
 कुलगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ श्रीराम को नारायण स्वरूप एवं सीता को लक्ष्मीरूप में प्रजा के समक्ष
 उपस्थित करते हैं-

न मानवो दाशरथिः पृथिव्यां स्वयं महाविष्णुरिहाऽवतीर्णः ।
 दृष्ट्या यया तत्त्वविमर्शशक्त्या पश्यामि रामं सुलभा न सा वः ॥
 यशास्विनीमग्निपरीक्षितां तां विरञ्चिशम्भ्वादि नुतां च पश्चात् ।
 महीयसी पावकपावयित्रीं सुखेन जग्राह स किं मनुष्यः ॥⁴

इस प्रकार इस वर्णन से समस्त सभा रजक को गलत सिद्ध करते हुए उस पर दोषारोपण
 करती है एवं महारानी सीता तथा राम का अभिनन्दन करती है, जिसके पश्चात् रजक अपनी
 अनुचित बातों एवं व्यवहार के लिए सभी से अत्यन्त सन्ताप युक्त होकर क्षमा माँगता है-

³ लीलाभोजराजम् 1/3

⁴ प्रशान्तराघवम्, 3/13, 3/22

हे राम हे राघव दीनबन्धो! क्षमस्व मां देवकृतापराधम् ।
आयोध्यका जानपदाश्च सर्वे यूयं क्षमध्वं रजकं व्यथार्तम् ॥⁵

रजक के इस प्रकार से अत्यधिक क्षमा मांगने पर राम भी प्रजा के साथ उसे क्षमा कर देते हैं जिससे मुख्यकथानक से इसमें बदलाव आ जाता है। श्रीराम के चरित्र का मन का भाव भी शान्त हो जाता है जो कि नाटक के प्रशान्त नामकरण का मुख्य उद्देश्य भी है। इस घटना से देवी सीता का लोकापवाद प्रारम्भिक चरण में ही निर्मूल हो जाता है एवं समस्त प्रजा में राम-सीता के प्रति अखण्ड श्रद्धा एवं आस्था का भाव जग जाता है। इस प्रकार से कथानक की दृष्टि से यह नाटक प्रख्यात एवं उत्पाद्य का मिश्र रूप होने के कारण अत्यन्त नवीनता को प्राप्त होता है। मिश्रकोटिक होकर इसी प्रकार इस नाटक में विदूषक की अवतारणा भी इसकी नवीन विशेषता है। अधिकांशतः राम कथाश्रित नाट्य परम्परा में विदूषक का अभाव दिखलायी पड़ता है किन्तु प्रशान्तराघवम् नाटक में पिण्डोदक नामक विदूषक नाट्यशास्त्रीय विदूषक के व्यक्तित्व से विलक्षण है। वह न तो नायक का समवयस्क है और न ही नायक का सार्वकालिक मित्र ही है जबकि नाटकों में विदूषक की अवतारणा नायक के प्रणय प्रसंग को सार्थक बनाने एवं नायक के दुःख-सुख में समवयस्कता के कारण साथ देने के लिए की जाती है किन्तु इस नाटक में श्रीराम के एक पत्नीव्रत होने तथा देवी सीता के प्रति एकानुरक्ति के कारण किसी अन्य नायिका के प्रणय आदि का प्रश्न ही नहीं उठता। पिण्डोदक नामक विदूषक मिथिलानरेश महाराजा सीरध्वज का एक अन्तरंग परिजन है तथा रामसीता विवाह के पश्चात् सीता आदि अपने महाराज की पुत्रियों के साथ मिथिला से अयोध्या आया था।

सीता आदि सभी वधुएँ पितृसखा होने के कारण पिण्डोदक को अतिशय सम्मान प्रदान करती हैं। विदूषक भी उन्हें पुत्रीवत् स्नेह प्रदान करता है तथा विविध स्थलों पर नृत्यगीत में डूबकर सभी को प्रसन्न करता है। नाटक के चतुर्थ अंक में पुत्तलिका सूत्रधार बनकर अत्यन्त रुचिकर कार्यक्रम प्रस्तुत करता है किन्तु कुमार लक्ष्मण द्वारा पहचान कर दाढ़ी मूछ उखाड़ लिया जाता है-

लक्ष्मण- (सकेतवम्) भो अलमार्य प्रतार्य! पिण्डोदकस्तु भवान् महोदयरोवा, परन्तु सत्यमेव पुत्तलिका नृत्यप्रवीणो भवान्। भवत्प्रेषिताभिश्चतसृभिः पुत्तलिकाभिस्सीतामाण्डव्युर्मिलाश्रुतकीर्ति संज्ञाभिर्वयमेव चत्वारो भ्रातरोऽहर्निषं नर्त्यामहे।⁶”

इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय परम्परा से पृथक् होते हुए भी विदूषक अत्यन्त लोकप्रिय पात्र के रूप में दिखाई पड़ता है।

नाटक की अन्य विशेषता इसकी भाषा है। प्राचीन संस्कृत नाटकों में संस्कृत के साथ साथ तत्कालीन विविध प्राकृत भाषाओं का प्रयोग दिखाई पड़ता है। राजा मन्त्री, सेनापति, कुलगुरु तपस्वी आदि श्रेष्ठ पात्र संस्कृत बोलते हैं तथा महिलाएँ, नौकर-चाकर आदि पात्र महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, शकारी आदि प्राकृत भाषाओं का प्रयोग करते हैं। वर्तमान समय में संस्कृत का स्वरूप पाणिनीय व्याकरण के कारण स्थिर है किन्तु प्राकृत भाषाओं का स्वरूप लोकप्रयोग एवं भाषापरिवर्तन के कारण परिवर्तित हो गया तथा वर्तमान में पाली, प्राकृत से अपभ्रंश तथा अपभ्रंश से डिङल-पिंगल तत्पश्चात् ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी,

⁵ प्रशान्तराघवम्, 3/50

⁶ प्रशान्तराघवम्, पृ.-71

बुन्देलखण्डी, मगधी, अंगिका, वज्जिका, काशिका आदि बोलियों के रूप में परिवर्तित हो गया।

वर्तमान में प्राचीन प्राकृतों का प्रयोग अब प्रासंगिक नहीं रहा तथा वे व्यवहार की दृष्टि से कालातीत हो चुकी हैं। अतः इसी को विचार करके नाट्यकार ने नवीन उद्भावना को जन्म दिया है एवं नाटक के आज की प्राकृत के रूप में संस्कृत के साथ भोजपुरी, अवधी एवं ब्रजभाषा तीन प्राकृत भाषाओं का प्रयोग किया गया है। नाट्यकार ने इसके लिए अपने अकाट्य तर्कों को भी प्रस्तुत किया है। विदूषक पिण्डोदक मिथिला क्षेत्र का होने के कारण भोजपुरी बोलता है। कृतिका आदि अयोध्या की हैं अतः वे अवधी बोलती हैं तथा मथुरा क्षेत्र से आया हुआ पात्र ब्रजभाषा बोलता है। नाटक के द्वितीय अंक में विदूषक पिण्डोदक का गीत भोजपुरी प्राकृत में दर्शनीय है-

हमरी बिटिया तौ आयल तिरहुत से
हमरी धेरिया तौ आयल तिरहुत से
राम जी सिउके धनुस चटकउलें
पउलें सीता रनियाँ तिरहुत से ॥
दियना आ बाती संजोवल अजोधिया
नेहिया दै भइल अंजोर तिरहुत से ॥⁷

प्राकृतों का प्रयोग भी नाटककार ने प्राकृत एवं संस्कृत के शब्दों तथा क्रियाओं में शत-प्रतिशत साम्य के आधार पर किया है जैसे - साई! बुझतानी का स्वामिन् बुध्यामि! के रूप में रखा गया है क्योंकि बुध्यामि से ही बूझना शब्द विकसित हुआ है। नाटक में दशाधिक छन्दों का प्रयोग इसके संवादों में छन्दोमयता का संचार करता है। नाटक के प्रथम अंक में कुमार लक्ष्मण की उक्ति शिखरिणी छन्द में अत्यन्त गेयता का संचार करती है-

अकस्मालंकायां यदपि घटितं वा विघटितं,
प्रतीकारे तस्य प्रसभमुपरूढा नहि वयम् ।
दशास्य भ्राताऽसौ पवनतनयोऽयं खलु जनो,
न कोऽप्यार्यं रौद्रं शमयितुमभूद्युक्तिकुशलः ॥⁸

इसी प्रकार प्रथम अंक में ही श्रीराम का विलाप शार्दूलविक्रीडित छन्द में दृष्टगोचर होता है-

तीर्णस्तातमहावियोगजलधिः सौमित्रिसाह्वैःपुरा,
लंकासंगरसागरोऽपि ससुखं तीर्णस्ततस्सानुगैः ।
कौलीनाब्धिमिमं तरीतुमधुना शक्तोऽस्म्यहं नो पुन-
स्सीते! लक्ष्मण! मारुते! सपदि मां मृत्योर्मुखाद् वारय ॥⁹

⁷ प्रशान्तराघवम्, पृ.-40

⁸ प्रशान्तराघवम्, 1/9

⁹ उपरिवत्, 1/12

इसी प्रकार रजकापवाद के पश्चात् सीता के विषय में विचार करते हुए राम का विचार करना शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध श्लोक संवाद को गम्भीर बनाता है-

लोको निन्दति चेद् विदेहदुहितामंगीकरोम्यंजसा,
निर्दोषां विजहामि चेदवनिजां स्वात्मैव मां निन्दति ।
निन्दाऽन्तश्च बहिश्च हा प्रभवति प्राणोत्ससन्तापिनी,
संघर्षे पतिभूपयो रघुपतिः कस्यैकपक्षं श्रयेत् ॥¹⁰

इसी प्रकार अनेक छोटे-बड़े छन्दों का नाटक में प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार नाटककार में संस्कृत के भी सरल एवं ग्राह्य तथा प्रासंगिक शब्दों का प्रयोग किया है। नाटक की कथा संगठित रूप से पाठकों को बांधे रखती है तथा भाव एवं रसों से परिपूर्ण संवाद दिखलायी पड़ते हैं।

अलंकार विधान- अलंकार विधान की दृष्टि से भी यह नाटक विशिष्ट दर्शित होता है। कथावस्तु के वर्णन प्रसंगों में स्थान-स्थान पर शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के उत्कृष्ट उदाहरण गद्यों, पद्यों की शोभा वर्धित करते हैं। नाटक के प्रथम अंक में राघव राम के द्वारा सीताविषयक उक्तियों में शब्दालंकार के अन्तर्गत अनुप्रास अलंकार का सौन्दर्य द्रष्टव्य है-

तीर्णस्तातमहावियोगजलधिः सौमित्रिसाह्यैः पुरा,
लङ्कासङ्गरसागरोऽपि ससुखं तीर्णस्ततस्सानुगैः ।
कौलीनाब्धिमिमं तरीतुमधुना शक्तोऽस्यहं नोपुन-
स्सीते! लक्ष्मण! मारूते! सपदि मां मृत्योर्मुखाद्वारय ॥¹¹

यहाँ श्लोक के द्वितीय चरण में क्रमशः इ, क की दो बार एवं सकार की तीन बार आवृत्ति हुई है, अतः छेकानुप्रास एवं वृत्त्यनुप्रास दोनों का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार नाटक के द्वितीय अंक में यमक अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण दर्शित होता है। यथा-

प्रसूर्णो मानवी नारी सदेहो जनकोऽपि नो! परीवादभयाक्रान्तो वल्लभोऽपि न वल्लभः ॥¹²

देवी सीता के विषय में रजकापवाद की कथा सुनकर वसिष्ठ ऋषि दुःखी होते हुए सीता के भाग्य को उनके जीवन का अंग स्वीकार करते हैं, जिसके अन्तर्गत वल्लभ शब्द का दो बार प्रयोग करते हैं। यहाँ प्रथम वल्लभ शब्द पति के लिए प्रस्तुत किया गया है तथा द्वितीय वल्लभ शब्द प्रिय अर्थ के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः यह यमक अलंकार सुशोभित होता है।

इसी प्रकार नाटक में अर्थालंकारों का भी बहुशः प्रयोग करते हुए काव्यशोभा का वर्धन किया गया है। नाटक के प्रथम अंक में सूत्रधार द्वारा नटी के सुमधुर गीत गाने के पश्चात् प्रशंसा की जाती है एवं उपमा अलंकार का काव्य में अत्यन्त सुन्दर प्रयोग प्रस्तुत किया जाता है-

¹⁰ उपरिवत्, 1/13

¹¹ उपरिवत्, 1/12

¹² उपरिवत्, 1/10

रङ्गभूमिः समासीना निःशब्दाः खलु दर्शकाः, लक्ष्यन्ते वटशाखायां स्थिताः नैशखगा
इव ॥¹³

इसी प्रकार सप्तम अंक में विदेहनन्दिनी सीता से वार्तालाप के क्रम में सखी ललिता राम एवं सीता के मध्य विराजमान उनके दोनों पुत्रों लव एवं कुश की तुलना दो सीपों के मध्य विराजमान मौक्तिक से की है। श्लोक द्रष्टव्य है-

शुक्तिकञ्चुकयोर्मध्ये यथा राजति मौक्तिकम् ।
तथैव युवयोर्मध्ये पुत्ररत्नमिदं द्वयम् ॥¹⁴

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार की उत्कृष्ट छटा दृष्टिगोचर होती है जो कि नाटक को सरस एवं भावपूर्ण बनाती है। इसी प्रकार नाटक के तृतीय अंक में श्रीराम के विषय में वर्णन करते हुए वसिष्ठ ऋषि उन्हें महाविष्णु सिद्ध करते हैं। जैसा कि प्रकृत का निषेध कर अन्य की उपस्थापना करना अपहृति अलंकार होता है – “प्रकृतं यन्निषिध्य अन्यत्साधते सा त्वपहृतिः।¹⁵” नाटक में उदाहरण यथा द्रष्टव्य है-

न मानवो दाशरथिः पृथिव्यां स्वयं महाविष्णुरिहाऽवतीर्णः ।
दृष्ट्या यया तत्त्वविमर्शशक्त्या पश्यामि रामं सुलभा न सा वः ॥¹⁶

अर्थात् श्रीराम सामान्य पुरुष नहीं अपितु स्वयं विष्णु ही इस भूलोक पर उनके रूप में अवतीर्ण हैं तथा वे समस्त तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण हैं। अतः राम होना हम सभी के लिए सुलभ नहीं है। इसी प्रकार से प्रशान्तराघवम् नाटक में उत्प्रेक्षा, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा आदि विभिन्न अलंकारों का अत्यंत सुन्दर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

1 रसपरिपाक

रसपरिपाक की दृष्टि से भी प्रशान्तराघवम् नाटक अत्यन्त सरस एवं मनोहर है। श्रीराम के जीवन के उत्तरभाग पर आश्रित यह नाटक उत्तरभाग की कथा में नवीन परिवर्तन करते हुए दिखलाई पड़ता है, जिसके अन्तर्गत सीता के रजकापवाद की कथा से राम दुःखित एवं विचलित तो होते हैं किन्तु गुरुजनों, माता तथा प्रजा आदि के हर प्रकार से समाराधन करने पर उनका चित्त शान्त होता है किन्तु कष्ट एवं दुःख का अस्तित्व अधिकांश स्थलों पर विद्यमान रहता है। अतः प्रधान रस करुण के रूप में ही दर्शित होता है। नाटक के प्रथम अंक में सीता के रजकापवाद की कथा सुनकर राम अत्यन्त कष्ट का अनुभव करते हैं, अतः शोकसन्तप्त राम के मनोभावों का वर्णन द्रष्टव्य है-

¹³ उपरिवत्, 1/7

¹⁴ उपरिवत्, 1/12

¹⁵ काव्यप्रकाश, 10/146

¹⁶ प्रशान्तराघवम्, 3/13

लोको निन्दति चेद् विदेहदुहितामङ्गीकरोम्यञ्जसा ।
निर्दोषा विजहामि चेदवनिजां स्वात्मैव मां निन्दति ।
निन्दाऽन्तश्च बहिश्च हा प्रभवति प्राणोत्ससन्तापिनी ।
संघर्षे पतिभूपयो रघुपतिः कस्यैकपक्षं श्रयेत् ॥¹⁷

इसी प्रकार से करुण रस के अन्य विभिन्न स्थल नाटक में परिलक्षित होते हैं। करुण रस के अतिरिक्त शृंगार, वीर, रौद्र आदि विभिन्न रस भी अङ्ग रस के रूप में दर्शित होते हैं।

नाटक के पंचम अंक में श्रीराम सीता के प्रति प्रणय प्रकट करते हुए उन्हें अपनी एकमात्र प्राणप्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं-

कामं स्यान्मघवाऽप्सरोगणरतिप्रार्थी ललल्लम्पटो,
भूपाला ननु पार्थिवाश्च कतिचिन्नूनं बृहद्वल्लभाः ।
स्वप्ने चाऽप्यनवेक्षिताऽपरयुवत्यास्येन्दुबिम्बस्य भो
रामस्यास्य गतिस्त्वमेव सुमुखि! प्राणैरहं तद्दधे ॥¹⁸

प्रस्तुत श्लोक में कविश्रेष्ठ द्वारा शृङ्गार रस की अपूर्ण छटा प्रस्तुत की गयी है। इसी प्रकार नाटक के प्रथम अंक में कुमार लक्ष्मण सीता के दुःखित होने एवं रजकापवाद की कथा को सुनकर दुःखी एवं अत्यन्त क्रोध में आ जाते हैं तथा क्रोधपूर्ण मुद्रा में कहते हैं-

विपन्नझषकच्छपं क्षुभितनागनक्राकुलं
प्रमध्य जलधिं क्षणैविकलपल्वलत्वं नये ।
खचुम्बिधरणीधरं समतलं करिष्ये पदैः ।
पुनर्यदि विदेहजानयनवारि भूमौ पतेत् ॥¹⁹

कुमार लक्ष्मण के मुख से उक्त इस कथन में सीता के प्रति किसी अपमान करने वाले के प्रति अत्यन्त रोष का भाव प्रकट होता है जिससे रौद्र रस का प्रवाह दिखलायी पड़ता है।

इसी प्रकार प्रशान्तराघवम् नाटक के अन्तर्गत अन्य रसों से भी परिपूर्ण स्थल दिखलायी पड़ते हैं। नाटक के पात्रों के संवाद श्लोक आदि विभिन्न रसों से ओतप्रोत दिखलायी पड़ते हैं।

2 गुण

प्रशान्तराघवम् नाटक में माधुर्य, ओज, प्रसाद तीनों गुणों के दर्शन होते हैं किन्तु प्रसाद गुण का प्राधान्य दिखलायी पड़ता है। नाटक के गद्यात्मक संवादों अथवा पद्यात्मक श्लोकों में प्रसाद गुण का बाहुल्य यथा द्रष्टव्य है-

¹⁷ उपरिवत्, 1/13

¹⁸ उपरिवत्, 5/4

¹⁹ उपरिवत्, 1/10

मधुरमधुरैर्वतारम्भैरतत्वमनोहरैर्धरणिगगनव्याप्तैः स्वीयैः प्रकल्प्यगतागतैः ।
हृदयमनिषं प्रश्नैश्चित्रैः प्रसह्यविमोहनैः सखि सबलयन्तौ तौ जातौ मदेकचिदाश्रयौ ॥²⁰

प्रस्तुत श्लोक में स्वच्छ वस्त्र एवं जल की भांति सरल शब्दों के द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति दिखलायी पड़ती है साथ ही सामान्य वर्णों का प्रयोग करते हुए भावानुकूल शब्दालंकार का समुचित प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार नाटक में विविध स्थानों पर प्रसाद गुण से युक्त संवाद एवं श्लोक नाटक की शोभा को बढ़ाते हैं।

इसी प्रकार नाटक के सप्तम अंक में महारानी सीता के द्वारा सखी ललिता के पुत्रों लवकुश के विषय में विचार करते हुए माधुर्य गुण से युक्त वाक्यों के दर्शन होते हैं। यथा-

पुञ्जीभूतं नु पुण्यं दुरितमपगतं स्वर्णदीवारिसेकै-
रण्या प्राणयात्रा ननु कुशलवयोः प्रीतिदात्र्येव जाता ।
क्रीडन्ती कृष्णसारैस्सपदि वृतवती हन्त भूयोऽपिबाल्यं,
सम्प्राप्ता त्वं सखी मे किमपरमिह प्रार्थितं कानने स्यात् ॥

प्रस्तुत श्लोक के अन्तर्गत नकार, लकार, पकार आदि मधुर वर्णों का सन्निवेश किया गया है तथा भावानुसार शब्दों के प्रयोग से माधुर्यगुण की अभिव्यक्ति दिखलायी पड़ती है। नाटक के अन्तर्गत ओजगुण के भी उदाहरण पात्रों के संवाद प्रकृति के वर्णन आदि स्थलों पर कहीं-कहीं दिखलायी पड़ते हैं। द्वितीय अंक में प्रकृति वर्णन के प्रसंग में यथा ओजगुण का उदाहरण द्रष्टव्य है-

पीयन्ते धूमलेखाः मधुरसुरभयः पादपस्कन्धनद्धै-
र्भल्लुकैर्वानरैश्च प्रकृतिकुतुकिभिः कल्कलानिक्रियन्ते ।
गोभिर्हम्भारवाभिर्गहनतरूतले वत्सकाः क्षुत्तृषार्ताः,
धावं धावं ध्रियन्ते शिथिलपरिचयाः प्रसूतोर्ध्वस्तनीभिः ॥²¹

इस प्रकार से प्रसाद गुण की प्रधानता के साथ अन्य गुणों से युक्त संवाद एवं श्लोकों के दर्शन नाटक में होते हैं। इसी प्रकार नाटक के अन्तर्गत विशिष्ट पदावली एवं शब्दावली से युक्त कथन एवं श्लोक भी इस नाटक की शोभा को वर्धित करते हैं। नाटक के सप्तम अंक में यथा ऋषि वाल्मीकि के द्वारा कथित श्लोक नाटक की शोभा को वर्धित करता है यथा-

ब्रह्मक्षत्रपते जगत्त्रयपते सोदन्वदुर्वीपते!
मर्यादाऽधिपते धनुर्धरपते सद्धर्मचर्यापते! ।
दिव्यज्ञानपते प्रजाजनपते वाचस्पते श्रीपते!
दीनाऽनाथ सुहृत्पते रघुपते! सीतापते! पाहि माम् ॥²²

²⁰ उपरिक्त, 5/10

²¹ उपरिक्त, 2/14

²² उपरिक्त, 7/22

नाटक में बारह पात्रों के द्वारा सम्पूर्ण कथानक को अत्यन्त व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया है। नाटक के अंत में भरत वाक्य के रूप में सभी के कल्याण की कामना करते हुए नाट्यकार द्वारा समापन की घोषणा की गयी है।

पूजास्थानं न मौढ्यं परिषदि भवताद् वैदुषीकञ्चुकस्थं,
सच्चारित्र्यं न राष्ट्रेऽनुभवतु निकृतिं सद्गुणा नोत्रपन्ताम्।
नीतिं सेवेत शक्तिः कुटिलपथजुषां जायतां मानभंगो,
निष्ठां नो न्यक्करोतु प्रसरदभिनयस्सद्दृचांसि प्रथन्ताम् ॥²³

इस प्रकार आचार्य अभिराजराजेन्द्र मिश्र विरचित नाटक प्रशान्तराघवम् नाटक अर्वाचीन नाटकों में अत्यन्त विशिष्ट नाटक है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. आचार्य-भरत (ले०), शुक्ल बाबूलाल (सम्पा०), 2010 ई०, नाटयशास्त्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, उ० प्र०
2. आचार्य-वामन (ले०), बेचन झा, डॉ० (सम्पा०), काव्यालंकारसूत्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, उ० प्र०
3. आचार्य-मम्मट (ले०), शास्त्री श्रीनिवास (सम्पा०), काव्य प्रकाश, साहित्यभण्डार प्रकाशन,
4. मिश्र अभिराजराजेन्द्र (ले०), 2011 ई०, लीलाभोजराजम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, उ० प्र०
5. मिश्र अभिराजराजेन्द्र (ले०), 2008 ई०, प्रशान्तराघवम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, उ० प्र०

²³ उपरिवत्, 7/24

व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा

शशी मथुरिया* एवं पूर्णचन्द्र उपाध्याय**

सारांश

शिक्षा आत्मविकास तथा आत्ममन्थन की एक प्रक्रिया है। जिसमें एक बालक अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही समाज की व्यवस्थाओं, प्रतिमानों, मूल्यों एवं आधारभूत नियमों को सीखकर समाज से जुड़ जाता है। इससे समाज की निरन्तरता बनी रहती है तथा ज्ञान एवं समझ का हस्तान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहता है। प्रतिक्षण अभिनव अनुभव प्राप्त कर बालक सभ्य, सुसंस्कृत, समायोजित एवं योग्य नागरिक बन जाता है। किन्तु आज की शिक्षा व्यवस्था पूर्णतः औपचारिक, स्वार्थकेन्द्रित, मूल्यविहीन, विलासिता-आधारित, पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित, अत्यधिक महँगी एवं खर्चीली है जिसमें चारित्रिक सम्पदा एवं नैतिकता का नितान्त अभाव पाया जाता है। शिक्षा का उद्देश्य रोजगार प्राप्त कर अधिकाधिक धनार्जन करना ही रह गया है। वर्तमान में शिक्षा का आधार गुणवत्ता विकास न होकर मात्रात्मक विस्तार बन गया है। प्रमोद कुमार नायक ऐसी शिक्षा प्रणाली पर बल देते हैं जो चरित्र-निर्मात्री हो, मानव-निर्मात्री हो, तथा राष्ट्र-निर्मात्री हो जो भावी पीढ़ी को स्वावलम्बी, देशभक्त एवं जिम्मेदार नागरिकों के रूप में विकसित कर उन्हें समाज उपयोगी बनाये।

मुख्यशब्द : संस्कृत व्यङ्ग्यसाहित्य, कथासप्तति, वर्तमान शिक्षणपद्धति

जीवन में शिक्षा का अहम् योगदान है क्योंकि शिक्षा बालक की पाशविक प्रवृत्ति हटाकर उसे भावना, संवेदना तथा सदाचार जैसे मानवीय गुणों से सराबोर करती है। मनुष्य में सीखने की क्षमता सर्वाधिक मानी गई है। अतः शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का विकास होता है तथा समाजीकृत व्यक्ति समाज का योग्य तथा जिम्मेदार नागरिक बनता है।

‘सा विद्या या विमुक्तये’ अर्थात् विद्या वह है जो मनुष्य को मुक्ति दिलाए। जब हम शिक्षा शब्द का प्रयोग करते हैं, तो यह दो अर्थों में लिया जाता है- संकुचित तथा व्यापक। संकुचित अर्थ की बात करें तो एक निश्चित स्थान पर निश्चित समय में सुनियोजित ढंग से विद्यार्थी को दी जाने वाली सोद्देश्य प्रक्रिया अर्थात् विद्यालय तथा महाविद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा। व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलाने वाली सोद्देश्य प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों को परिमार्जित कर उसके ज्ञान तथा कौशल का विकास कर उसके व्यवहार का परिवर्तन किया जाता है ताकि वह सुसभ्य और योग्य नागरिक बन सके। इस प्रकार से सीखने का माध्यम भी अनौपचारिक होता है जैसे रेडियो, टेलीविज़न, पत्र-पत्रिकाएँ, विभिन्न समूह तथा इंटरनेट आदि।

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। व्यक्तिगत विकास तथा मानव कल्याण के लिए शिक्षा का योगदान अभूतपूर्व है। शिक्षा द्वारा ही सभ्यता व संस्कृति का हस्तान्तरण तथा अक्षुण्णता संभव है। समाज तथा राष्ट्र की प्रगति भी शिक्षा पर ही निर्भर है।

* मकान नंबर. 30 इंद्रा कॉलोनी, जे०एन० मार्शल, मालारोड कोटा 324002

** एसोशिएट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, राजस्थान

मथुरिया एवं उपाध्याय व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा

साहित्यकार प्रमोद कुमार की कृतियों में विभिन्न स्थलों पर शिक्षा के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है तथा शिक्षा के दोनों स्वरूप (1) औपचारिक तथा (2) अनौपचारिक के दर्शन होते हैं, जिनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

पथिक मार्ग में एकाकी जा रहा था। उसकी यह यात्रा कब समाप्त होगी वह स्पष्ट रूप से नहीं जानता था। कभी अल्पाहार द्वारा तो कभी उपवास द्वारा वह अपना समय व्यतीत कर रहा था। एक बार मार्ग में कुछ लोगों के साथ उसका साक्षात्कार हुआ। वे सभी विभिन्न शास्त्रों में पारङ्गत पण्डित थे। उनके सान्निध्य से पथिक सुखी हो गया। प्रारंभिक परिचय के पश्चात् किसी पण्डित ने पथिक से पूछा-क्या तुम वेद के विषय में जानते हो? उस पथिक ने उत्तर दिया नहीं। वह पण्डित हँसने लगा। कुछ समय के पश्चात् किसी अन्य पण्डित ने पूछा गीता का कौन सा अध्याय तुम्हें सर्वाधिक रुचिकर लगा? पथिक शान्त रहा। उस पथिक को गीता का ज्ञान नहीं है यह जानकर वह पण्डित कहने लगा कि तुम्हारा जीवन व्यर्थ है तुम वेद नहीं जानते। गीता को भी तुमने नहीं पढ़ा है, तुम किस प्रकार के मनुष्य हो? पथिक पूर्ववत् चुप रहा। पुनः किसी पण्डित ने पूछा- क्या तुम हरिश्चन्द्र के चरित्र को जानते हो? जिनका त्याग आज भी प्रसिद्ध है। पथिक ने उत्तर दिया मैं नहीं जानता। सभी पण्डितों ने पथिक की मूर्खता को जानकर उपदेश दिया- तुम शास्त्रों को पढ़ो। शास्त्र ज्ञान के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है। अतः पूर्णरूप से शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार से सभी जा रहे थे तभी मार्ग में एक उपवन आया। जिस उपवन में सुन्दर तथा मनोहर पके हुए फल सुशोभित हो रहे थे। स्वच्छ जलापूरित सरोवर मध्य भाग में शोभायमान था। पक्षी कलरव कर रहे थे। उस समय उपवन में कोई प्रहरी नहीं था।

पथिक ने देखा कि बिना सोच-विचार के सभी पण्डितों ने उपवन में प्रवेश किया। स्वेच्छापूर्वक उन्होंने शाखाएँ नष्ट कर दीं तथा फल खा लिए। फलोन्मुखी पुष्पों को उन्होंने अपने पैरों से कुचल दिया तथा सरोवर के जल को दूषित कर दिया। अचानक समीपस्थ घर के अन्दर से पात्रस्थित स्वर्ण मुद्राएँ चोरी हो गईं। वे सभी पलायन कर गए। पथिक वहीं स्थित होकर विचार करने लगा-

“जीवनमूल्यविषये बहुभाषिणां पण्डितानाम् इयं कीदृशी प्रवृत्तिः। कीदृशी एतेषां गतिः। शास्त्रप्रयोजनं कथं भवति? केवलम् अन्यस्मै उपदेशाय अथ स्वस्य चरित्रस्य संशोधनाय!”¹

जीवनमूल्यों के विषय में अत्यधिक बोलने वाले पण्डितों की यह कैसी प्रवृत्ति है? इनकी यह कैसी गति है। शास्त्र प्रयोजन किस प्रकार का है, केवल दूसरों को उपदेश देने के लिए अथवा स्वयं के चरित्र संशोधन के लिए।

शिक्षा का एकमात्र तथा अन्तिम उद्देश्य व्यवहार का परिमार्जन है। अतः जो जीवन को सुसंस्कृत न बना पाए ऐसी शिक्षा का क्या मूल्य। कहा भी गया है-

पुस्तके पठितः पाठः जीवने नैव साधितः।

किं भवेत् तेन पाठेन जीवने यो न सार्थकः ॥²

¹ कथासप्ततिः, पाण्डित्यम्, पृ.-11

² रुचिरा, भाग-1, पाठ-8, सूक्ति-स्तवकः, श्लोक-2

व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा मथुरिया एवं उपाध्याय

अर्थात् पुस्तक में पढ़े हुए पाठ को यदि जीवन में न उतारा जाए तो उस ज्ञान से क्या प्रयोजन? आदर्शात्मक, उपदेशात्मक तथा ज्ञानात्मक शिक्षा यदि जीवन में प्रतिफलित नहीं होती है तो व्यक्ति मूढ़ ही है। वास्तव में ज्ञानी तो वह है जो उस अर्जित ज्ञान का उपयोग स्वयं के जीवन में करे तथा दूसरों का भी मार्गदर्शन करे। वही वास्तविक शिक्षा भी है। पाण्डित्य प्रदर्शन करना अथवा वेदशास्त्रों का ज्ञान होना ही बुद्धिमत्ता नहीं है अपितु वास्तविक जीवन में व्यावहारिक ज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

गुरु विश्वम्भर महान् शिल्पी थे। उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल में विभिन्न स्थानों से आए हुए छात्र पाषाण शिल्प कला का प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। उनके छात्र सर्वत्र ख्याति प्राप्त करते थे। एक बार प्रशिक्षित छात्रों के दीक्षान्त समारोह से पूर्व गुरु ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि सभी छात्र मिलकर उनकी एक प्रतिमा बनायें। इसके लिए उन्होंने स्वयं ही सभी छात्रों में विभाग का आवण्टन कर दिया। कौनसा छात्र प्रतिमा के किस अंश का निर्माण करेगा। गुरु की इच्छापूर्ति में सभी छात्र निमग्न हो गए तथा यथासुन्दर अपने कर्तव्य के सम्पादन में लग गए। प्रतिमा के निर्माण कार्य के समाप्त होने पर किसी छात्र ने कहा- प्रतिमा निर्माण में मेरा दायित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मैंने ही मुख का निर्माण किया है अतः सर्वाधिक प्रशंसा के योग्य मैं ही हूँ। उस छात्र के वचनों से उत्क्षिप्त दूसरे किसी छात्र ने कहा मैं भी आदर के योग्य हूँ क्योंकि जिन हाथों से गुरु हमें विद्या देते थे, उनका निर्माण मैंने किया है, अतः मैं श्रेष्ठ हूँ। इस प्रकार नेत्र, ग्रीवा, वक्षस्थल तथा चरणों का जिन्होंने निर्माण किया वे सभी अपनी उत्कृष्टता स्थापित करने लगे। उत्क्षिप्त हुए वे एक दूसरे द्वारा निर्मित अंश नष्ट करने लगे। पाँच मिनट के अंदर ही समग्र प्रतिमा चूर-चूर हो गई। तत्पश्चात् क्रुद्ध छात्रों ने उस पर पैरों से प्रहार किया।

एतावत् कालपर्यन्तम् एकस्मिन् निभृते स्थाने दण्डायमानः सन् गुरुः विश्वम्भरः चिन्तितवान्-
स्वस्य अंशे मदमतैः एतैः शिल्पकलायाः सामग्रिकी सत्ता यदि नानुभूता तर्हि किमेतेषां
विद्याग्रहणेन। किं वा मूल्यं मम विद्याप्रदानेन?³

प्रस्तुत कथा में कथाकार का कथन है कि शिक्षा वह है, जिसकी प्राप्ति के पश्चात् छात्रों में सामाजिक प्रतिमानों तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना हो। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सभ्यता तथा शिष्टता का प्रभाव दृष्टिगोचर हो तथा ऐसे आवेग-संवेग जो मनुष्यता के लिए बाधक हों वे समूल नष्ट हों। कहा भी गया है-

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मं ततः सुखम् ॥⁴

लेकिन कवि ने वर्तमान शिक्षा-सम्प्रत्यय को कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है-

उद्योगप्रदाने असमर्था विद्या
निष्फला अनादृता जगति

³ कथासमितिः, शिक्षा, पृ.-26

⁴ हितोपदेश, श्लोक-4

मथुरिया एवं उपाध्याय व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा

न कोऽपि पठति अथ स्पृहयति ।
अतः यया सुगमायते धनागमः
समुपलभ्यते अखण्डितः अधिकारः
सा एव विद्यापदवाच्या
इदानीन्तनसंसारचक्रं तामेव अपेक्षते ॥⁵

उक्त कविता में कवि नायक जी ने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर व्यंग्य किया है क्योंकि यह शिक्षा रोजगारोन्मुखी नहीं है। उद्योग प्रदान करने में असमर्थ तथा निष्फल होने के कारण सम्मान के योग्य नहीं है। कोई भी इसे पढ़ने की इच्छा नहीं रखता। अतः जिस शिक्षा के द्वारा धन का आगम सुगम हो तथा अखण्डित अधिकार की प्राप्ति हो वही विद्या है। वर्तमान संसार ऐसी ही शिक्षा की अपेक्षा करता है। आज अविद्या विद्या पर हँस रही है। अविद्या के समान विद्या प्रत्यक्ष प्रमाण में उपलब्ध नहीं होती है और न ही मनोरञ्जन में संलग्न होती है जबकि विद्या अमृत तथा मुक्ति की प्रदात्री है। एक बार सायंकाल किसी व्यक्ति ने कहा- अन्य जनों के समान विद्या का भी भाग्य होता है, चक्र की पंक्ति के अधोभाग में विद्या स्थित रहती है। विभिन्न उपायों के द्वारा विद्यार्थियों के विनोद के लिए विद्या की परीक्षा ली जाती है।

उच्च माध्यमिक परीक्षा का फल प्रकाशित होता है- प्रयत्नपूर्वक पढ़ाए गए छात्र प्रथम दस स्थानों में तीन स्थान प्राप्त करते हैं। अतः प्रधान शिक्षक राजेन्द्र महापात्र अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। उसके शिक्षक जीवन में जैसे सार्थकता आ गई थी, ये छात्र उससे (गुरु से) प्रेरणा प्राप्त कर देशसेवा के कार्य में संलग्न होंगे, प्रधान शिक्षक को इस प्रकार का विश्वास था। पूर्व वर्ष के समान उस वर्ष भी विभिन्न संवाद पत्रों में इन छात्रों का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ। जब उनसे पूछा गया कि वे भविष्य में क्या बनना चाहते हैं तो सभी ने आई.ए.एस., इंजीनियर तथा डॉक्टर बन कर देशसेवा करने की इच्छा अभिव्यक्त की। यह पढ़कर आश्चर्यान्वित प्रधान शिक्षक ने अपने प्रिय छात्रों को बुलाकर पूछा-

छात्रों! तुम सबने अपने भविष्य के स्वप्न के विषय में बताया किन्तु किसी ने भी शिक्षक बनने की बात नहीं की। इसका क्या कारण है? क्या तुम्हें शिक्षकवृत्ति रुचिकर नहीं लगती है? क्या शिक्षक बनना देश की सेवा करना नहीं है? निरुत्तर छात्रों से प्रधान शिक्षक ने वही प्रश्न बार-बार पूछा। तब किसी छात्र ने धीरकण्ठ से कहा-

“शिक्षकाः अधिकं वेतनं नैव लभन्ते। शिक्षकेभ्यः यानं नैव प्रददाति सर्वकारः। शिक्षक-वृत्तौ न तथाधिकारः विद्यते। भयेन न कोऽपि प्रकम्पते शिक्षकं दृष्ट्वा नापि जनाः कार्यसिद्धये द्वारदेशे विकलेन प्रार्थन्ते। अतः तस्यां पदव्यां स्थित्वा कथं वा देश सेवा भवेत्?”⁶

छात्रों के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर प्रधान शिक्षक दुःखी होकर महाशून्य में देखने लगे और विचार करने लगे कि क्षमताओं की लालसा से गुरु का आसन प्रतिदिन लघुता को प्राप्त होता जा रहा है।

आज की युवा पीढ़ी शिक्षक बनना नहीं चाहती है क्योंकि इस परम पवित्र पेशे में प्रभुत्व, अधिकाधिक धनार्जन, सरकारी सुविधाओं का लाभ नहीं है। सभी डॉक्टर, इंजीनियर तथा

⁵ शबरी-विद्या, पृ. 9-10

⁶ कथासप्ततिः, स्वप्नः, पृ. 22

व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा मथुरिया एवं उपाध्याय

सरकारी अफसर बनकर लाभ उठाना चाहते हैं, जबकि इन सभी को बनाने वाला एक शिक्षक ही है। स्वार्थ तथा अर्थ परायणता ने शिक्षा के मायने ही बदल दिए हैं।

देश के मर्यादापूर्ण शिक्षा विभाग के सर्वोच्च पुरस्कार को प्राप्त करके वरिष्ठ शिक्षक हरिगोपाल खन्ना महोदय जब अपने नगर लौटे तो ग्रामवासियों ने उनके लिए बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। नागरिकों ने इस प्रकार से उनकी प्रशंसा की कि ऐसा शिक्षक न केवल उस नगर का अपितु समग्र राज्य का गौरव है। इस अवसर पर उनके साथ हुए साक्षात्कार के कुछ अंश निम्नलिखित हैं-

सांवादिक- आपके मतानुसार शिक्षक का कर्तव्य क्या है?

हरिगोपाल -“मम मतेन शिक्षकः प्रतिदिनं शिक्षाधिकारिणः कार्यालयम् अवश्यं गच्छेत्। तत्र कर्मचारिभ्यः छायादिकं प्रदद्यात्। अधिकारिणः गृहं गत्वा कुशलं पृच्छेत् यदि अधिकारिणा किमपि कठिनं कर्म असाध्यं स्यात्, तस्य समाधानं स्वयं कुर्यात्।⁷”

सांवादिक- परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कौनसा उपाय छात्रों के लिए उत्तम है ?

हरिगोपाल - मम मतेन परीक्षायाम् अनुकरणव्यवस्था बाध्यतामूलिका करणीया। सर्वे परीक्षार्थिनः छात्राः पुस्तकं खातिकाम् अन्यत् किमपि वा दृष्ट्वा लेखिष्यन्ति।⁸

सांवादिक- किस उपाय से शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होगी?

हरिगोपाल -“अस्मद्विचारे गृहपाठ्यदान (ट्यूशन) माध्यमेन यदि सर्वकारीयशिक्षकाः पाठ्यदानं करिष्यन्ति, तर्हि शिक्षाक्षेत्रे प्रगतिः अवश्यं भविष्यति।⁹”

सांवादिक- वर्तमान समय में हमें कैसी शिक्षा की आवश्यकता है?

हरिगोपाल -“इदानीं वस्तुतः उत्कोचग्रहणशिक्षायाः भूयसी आवश्यकता अस्ति। एतस्याः शिक्षायाः अभावात् अधुनाऽपि केचन कर्मचारिणः सर्वकारीयकार्यालयेषु कार्यं, कुर्वन्ति, ये खलु सहजोपायेन उत्कोचं नेतुं न पारयन्ति। अतः यदि एतस्मिन् विषये स्वतन्त्रविश्वविद्यालय-माध्यमेन शिक्षादानं कृतं स्यात्, तर्हि ज्ञानं प्राप्य शिक्षिताः कर्मचारिणः विना विचारेण उत्कोचं नेष्यन्ति। फलतः देशः प्रगतिशीलः भविष्यति।”¹⁰

सांवादिक- ग्रामीण अंचल के विद्यालयों के विषय में कुछ कहिए।

हरिगोपाल-“ग्रामांचले पञ्चानां विद्यालयानां कृते एकः शिक्षकः पर्याप्तः। यतोहि ग्रामीणाः छात्राः अतीव कोमलमतयः।¹¹”

‘आदर्श शिक्षकः’ नामक इस कथा में कथाकार ने व्यङ्ग्य रूप में एक साक्षात्कार प्रस्तुत किया है, जिसमें शिक्षा के स्वरूप में वर्तमान में होने वाले परिवर्तनों पर कटाक्ष किया है। शिक्षा जैसे पवित्र कर्म में भी रिश्तखोरी, स्वार्थ और धनलाभ जैसे तत्त्व शामिल हो चुके। सरकारी शिक्षक विद्यालय में शिक्षण कार्य न कर ट्यूशन पद्धति से शिक्षण की ओर प्रवृत्त हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा की रोशनी नहीं है, शिक्षक शहरी क्षेत्रों में (सुविधा संपन्न) रहना चाहते हैं। परीक्षाओं में अनुचित साधनों का प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षकों का रुझान नई शैक्षिक तकनीकों के प्रयोग से छात्रों का अधिकाधिक मार्गदर्शन न होकर उच्च

⁷ कथासप्ततिः, आदर्शशिक्षकः, पृ-51

⁸ उपरिवत्

⁹ उपरिवत्

¹⁰ उपरिवत्

¹¹ उपरिवत्

मथुरिया एवं उपाध्याय व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा

अधिकारियों की चापलूसी हो गया है। समाज को दिशा देने का दायित्व शिक्षकों का है शिक्षक ही राष्ट्र का निर्माता है।

शिक्षा का वास्तविक अर्थ स्वयं की शक्ति तथा योग्यताओं को परख कर अपनी शारीरिक तथा मानसिक कमियों का निस्तारण कर समाज के लिए उपयोगी बनना है न कि रटन्त विद्या से डिग्री प्राप्त करना। सच्ची शिक्षा छात्र को चरित्रवान, विनम्र, सदाचारी एवं संस्कारी बनाती है।

“पथिकः तत्रैव स्थित्वा चिन्तयति-जीवनमूल्यविषये बहुभाषिणां पण्डितानां इयं कीदृशी प्रवृत्तिः? कीदृशी एतेषां गतिः? शास्त्रप्रयोजनं कथं भवति? केवलम् अन्यस्मै उपदेशाय अथ स्वस्य चरित्रस्य संशोधनाय।¹²”

शिक्षा मनुष्य के विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। वेदों तथा शास्त्रों का अन्य लोगों को उपदेश देने तक ही सीमित नहीं है, अपितु ज्ञान का प्रयोग अपने चरित्र निर्माण में किया जाना चाहिए।

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं का परिमार्जन कर व्यक्तित्व का विकास करने वाली प्रक्रिया है। ज्ञान का प्रयोग व्यावहारिक जीवन में करना ही जीवन की सार्थकता है।

सः गायति स्वस्य चरितं
स्वकीयाम् अनुभूतिं
जीवनमहाभारतस्य गाथां
जयं पराजयं अवशोषं
सर्वं गायति वृद्धः
अन्येषां श्रवणाय शिक्षणाय
जीवनयुद्धस्य सूत्रं
चक्रव्यूहगोपनरहस्यं
समाजस्य कुरुक्षेत्ररणे।¹³

भारतीय संस्कृति में वृद्धजनों को समाज में उच्च तथा आदर्श स्थान प्राप्त है। वृद्ध व्यक्ति ज्ञान तथा अनुभव का खज़ाना माना जाता है किन्तु वर्तमान समय में वृद्धों के साथ दोगम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। उन्हें अनुत्पादक, पराश्रित तथा भारस्वरूप समझा जाता है। जीवन भर अपने परिवार पर स्नेह तथा देखभाल की छाँव फैलाने वाला, मन-कर्म तथा वचन से अपने उत्तरदायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने वाला वृद्ध व्यक्ति एकाकी तथा उपेक्षित जीवन व्यतीत करने को विवश है।

कवि नायक जी ने उक्त कवितांश में इन्हीं भावों को अभिव्यंजित किया है। वे कहते हैं सायंकाल नदी तट पर काँपते हुए कदमों से कोई वृद्धजन उदात्त स्वर में गीत गाता है। वह अपने चरित्र का अपनी अनुभूति का गान करता है। जीवन रूपी महाभारत की गाथा को तथा जय-पराजय के गीत को गाता है। समाज रूपी कुरुक्षेत्र के रण में चक्रव्यूह गोपन रहस्य को तथा समाज के सभी लोगों को जीवन के युद्ध के सूत्र को बताने के लिए वह तीव्र ध्वनि में गीत गाता है किन्तु फिर भी उसकी उपेक्षा होती है। उसके उपदेश की सर्वत्र

¹² कथासप्ततिः, पाण्डिल्यम्, पृ-11

¹³ गर्तः - वृद्धः, 47

व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा मथुरिया एवं उपाध्याय

अवहेलना होती है। न ही उससे कोई कुछ पूछता है, न ही वह समाज में आदर पाता है और न ही कोई प्राचीन में नवीन के संयोग के लिए प्रयत्न करता है। गुरुकुल परंपरा भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों की महान् संवाहक है। गुरुकुल भारतीय संस्कृति को परिपुष्ट कर देश को ज्ञानी-विज्ञानी, चिन्तक, विचारक तथा समाजसेवी प्रदान करते हैं। इस परंपरा के कारण ही भारत को 'विश्वगुरु' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है-

“गुरुकुलमेव साधारणं शिशुं
मर्यादापुरुषोत्तमरामरूपेण
योगेश्वरकृष्णरूपेण
विनिर्माति, ते युगं संस्थापयन्ति
शान्तिवार्ता विश्वस्मिन् परिप्रचारयन्ति
गुरुकुलमेव एतस्य प्रमाणं
त्यागतपःसाधनार्थं परमं क्षेत्रम्।¹⁴”

गुरुकुल शिक्षा के प्राचीनतम केन्द्र थे गुरु के सान्निध्य में ब्रह्मचर्य में निवास करता हुआ छात्र जीवन के विविध पक्षों का ज्ञान प्राप्त करता था विद्यार्थी हर प्रकार के कार्य को यहाँ सीखता था। शिष्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाता था चाहे वह किसी भी वर्ण का हो। गुरुकुल शिक्षण व्यवस्था में साधारण शिशु को मर्यादापुरुषोत्तम राम के रूप में तथा योगेश्वर कृष्ण के रूप में निर्मित किया जाता है। वे संपूर्ण विश्व में शान्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं। गुरुकुल त्याग, तपस्या तथा साधन का परम क्षेत्र है।

“अज्ञातस्य मानवस्य दुर्दशां विलोक्य
कदा प्रतिष्ठितः भविष्यति मानवस्य धर्मः
एकाकाशतले एकनीडे जीविष्यन्ति
विश्वश्रेष्ठजीवाः
वद रे प्रेयसि!
कदा हि त्वं गमिष्यसि
वन्दनीयं विश्वमातृपदम्।¹⁵”

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है पर दुःख कातरता। किन्तु आज का मनुष्य सब कुछ देखकर भी भावहीन होकर अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर रहता है। आर्तजन की सहायतार्थ किसी के पास भी समय नहीं है। इसके विपरीत काक समुदाय का उदाहरण देकर कवि कहते हैं कि एक कौए की मृत्यु का संवाद अन्य कौओं में विद्युत के वेग से बिना किसी माध्यम के प्रसारित हो गया। अपनी संवेदनाएँ प्रदर्शित करने के लिए तथा मृत कौए के अंतिम दर्शन हेतु लक्ष्य संख्या में परिचित तथा अपरिचित एकत्रित हुए काक जाति को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रदान नहीं की गई है, न ही साहित्य रचा गया और न ही भाषण तथा सभाएँ इत्यादि आयोजित की गईं फिर भी वे परस्पर दुःखी तथा सहायक सिद्ध हुए हैं और मनुष्य एक-दूसरे से स्नेह नहीं करते, भ्रातृभाव नहीं रखते और न ही परस्त्री में माता का भाव रखते

¹⁴ गर्तः-गुरुकुलम्, पृ.-57

¹⁵ शबरी-गुरुः, पृ.-44

मथुरिया एवं उपाध्याय व्यङ्ग्य-कवि प्रमोद कुमार नायक की संस्कृत-कृतियों में शिक्षा

हैं। अतः कवि नायक जी कामना करते हैं कि एक ही आकाश के तल पर एक नीड में विश्व के श्रेष्ठ जीव रहें और मानव धर्म की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण भूखण्ड पर हो।

सहायक-ग्रन्थ-सूची

1. नायक, प्रमोदकुमार, 2003 ई०, कथासप्तति: (कथासंग्रह), लोकभाषाप्रचारसमिति:, शरधाबालि, पुरी, ओडिशा.
2. नायक, प्रमोदकुमार, 1998 ई०, गर्तः (कथासंग्रह), लोकभाषाप्रचारसमिति:, शरधाबालि, पुरी, ओडिशा.
3. नायक, प्रमोदकुमार, रुचिरा (संस्कृत-पाठ्य-पुस्तकम्), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली.
4. नायक, प्रमोदकुमार, 2004 ई०, शबरी (कवितासंग्रह), सवितादाश चण्डियपल्लि, गंजाम, ओडिशा.
5. हितोपदेशः, नारायण पंडित, संस्करण - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली.

Revival of the Ancient Indian Gurukul System as per Scriptures

Arunender Thakur* Anupama Ryali**

Abstract

The present generation of humans are afflicted with busy lives, wherein the inherent calm of one's mind is replaced by the cacophony and various disturbances and distortions which complicate life and expose us to various types of psychological problems. Stress, strain, and psychological pain have become so common that we have started to consider them as the new normal. The situation is helped by the invasion of electronic devices and various other technological interventions which were initially made to make our lives easier for example mobile phones, smart devices, and the internet. No one could foresee the long-term damage that these very interventions would unleash upon mankind. Family ties have started unraveling and disintegrating, leading to the weakening of our cultural interactions, value systems, and the realization of our duties and responsibilities towards the other members of society. The remedial measures are needed to be deployed on a war scale. Various psychological interventions are possible through the implementation of different disciplinary remedies, which can then lead to happiness and from there leading us to the experience of Ānanda. Our shastras and other works have provided us with various guidelines called dharmachaar (rightful duties), these are the guidelines that give us an outline for the accepted behavior and action according to various classifications like varna, age, gender, financial status, etc. This dharmachaar when followed would lead to a blissful life. It is time to revive and strengthen the ancient Indian system of gurukul and the guru shishya prampara for promoting and spreading the life-changing teachings of our ancient seers for the benefit of mankind.

Keywords: Anuśāsana, Ānanda, Gurukul, Lifestyle

1 Introduction

“Who am I”, is the most intriguing question of this world. To this, the learned seers of ours have clarified that “I” is the soul which can never die and is encased in the body structure for performing its karma. The Soul is the Purest of the pure and is beyond the

* Research Scholar, School of Vedic Sciences, MIT ADT University, Sholapur Highway, Pune-412201, India

** Associate Professor, School of Vedic Sciences, MIT ADT University, Sholapur Highway, Pune-412201, India

effects of karma and by its very nature seeks everlasting happiness or Ānanda. This state of blissfulness or Ānanda is its natural state. This state of Ānanda cannot last if the man is mired in the delusions of Maya, that is why it is of supreme importance to attain Moksha. The essence of most of our ancient religious scriptures on life is “to attain Moksha”¹. The state of “Moksha” is the highest state of blissfulness achieved by acquiring knowledge of self and performing requisite sadhana.

Earlier scriptures of ours stressed the importance of “Trivarga”, i.e., Dharma-Artha-Kāma. This implied that to lead a good life, people need to do karma, now this karma needs to be done according to Dharma, here the word dharma should not be confused with religion, instead, it points towards the right way of living following the moral values upheld by the society² or the righteous path (set rules for self, family, society and all people and nature). Dharma in our scriptures have been explained and elaborated for different Varna (profession) and different stages of life, ie, Brahmacharya (Pupil), Gr̥hastha (Household), Vānaprastha (Sevānivṛtta), and Saṃnyāsa (Tyāga)³.

These guidelines were not the same across the length and breadth of the society. Each stage of life, each varna, financial standing had a different set of dharma to be followed. The guideline for a child was different from that of an adult, that of a king was not the same as the rest of his subjects, which seemed to be logical. The same has guided people towards the disciplined life (Anuśāsanabaddh way of life) enjoying as well as moving towards the ultimate bliss of reality. These Dharma guidelines are considered outdated nowadays, which has led to major psychological and physiological problems in many. Our ancient scriptures amplified in many ways that Dharma needs to be the foundation stone for any Karma, which in turn leads to karma phala⁴, i.e. Kāma. Any action which does not have its base in Dharmaacharan will not yield the desired result and will entrap a soul further with negative karmic debt. Thus, Dharma or

¹ The Bhagavad Gita, Swami NikhilĀnanda, pp. 2, 368,369

² The Dharma Shastra, Manmath Nath Dutt , pp. 27, 32, 383

³ Yagyavalkaya Smiriti of Yogishwara Yajñavalkaya with the Mitaksara Commentary of Vijnaneshwar, Dr. Umesh Chandra Pandeya , pp. 5, 13, 44

⁴ Manusamhitā, Manmatha Nath Dutt, p.- 32

the set rules or Discipline or Anuśāsana is the building block to this Trivarga. In later scriptures, when moksha became the ultimate aim of the soul in the human body, then also, Dharma or Anuśāsana remained the building block. It may not be possible to follow the path of righteousness without practicing Anuśāsana. Indian scriptures help one to follow one's dharma and through which one can easily reach the goals of one's life attaining prosperity that ultimately lead to attaining moksha.

2 Psychological Issues and Suggested Solutions

The concept of time, that is to say, that, the moments (hours/ days) which have been lived (past) have been lived (nothing can be done about it); The moments (hours/ days) which are yet to unfold (future) is known to none (nothing can be done about it either); thus, "Live in the Moment-the Present"⁵. Human life is mired with various illusions, insecurities, and apprehensions about the past and the future. The key to a happy and balanced life is to live in the present moment by practicing mindfulness in our daily lives. This practice of mindfulness can be considered as the first step in training the mind for practicing meditation. Our ascetics and sanyasis spend years in rigorous sadhana and dhyana to master this art of 'living in the moment or mindfulness before moving on to the next stage of meditation. The present generation of human beings is busy to such an extent that they live their lives according to the alarm clock and various deadlines as well as various expectations of the family and society, wherein the solace of mind has been replaced by many things, leading to stress and anxiety disorders of various kinds. Such a life is deemed fruitful and successful by worldly standards but is very counterproductive for one's sanity. They are affected by psychological disorders of one kind or the other mainly due to large-scale invasion of technology (mobiles, internet, etc) in our lives, loosening of family ties, present lifestyle, loosening of our cultural ethos, ethics, morals, etc. The situation is gloomy at present with a very bleak forecast about the future, seeing the past trends; it is going to

⁵ www.haaretz.com Israel-news or.premium.magazine-why-Nobel-prize-winner-daniel-kahneman-gave-up-on-happiness, and, [https://personal.eur.nl/veenhoven/Pub2010s or2012k-full.pdf](https://personal.eur.nl/veenhoven/Pub2010s%20or2012k-full.pdf)

deteriorate to a large extent in the future. The WHO data on such disorders have predicted such warnings. If the situation continues on its present trajectory, the future society will have the MANAV who will be devoid of ‘MANAVTA’, Humans without humanity. We have to change our processes and our way of dealing with all the issues which are staring at us and we have to implement remedial measures at a war scale.

The solution for addressing this situation, many of them, and different types of mental or psychological conditions is to achieve various states of “Ānanda which can be achieved through different methods of “Anuśāsana” as per the constitution of the individual and their mental state. The source of bliss or Ānanda is ever-present within us, we just need to focus our mind by practicing various techniques of meditation and following the teachings handed down to us through time. By following the wisdom of the ancient shastras and various adhyātmaic scriptures can we protect ourselves and the immediate society around us from the ill effects of the psychological disorders which have become the norm today. There is an obvious connection between the righteous way of living and Ānanda. All these aspects of the connection between righteous way of life and achieving Ānanda were taught from early childhood to almost all children of erstwhile India through the well-established Gurukuls so that such practices were a part of our culture at that time. These teachings guided and became an integral part of a child’s psyche, which in turn led to the creation of a stable and well-adjusted society wherein there was no conflict between the goals of an individual and that of the society at large. The relation helped the child to thrive and work towards the attainment of the ultimate goal of life, i.e., Moksha or liberation from the cycle of rebirth. This process is used to reduce the conflict of interest to a large extent between the man and the society, which in turn would help in the development of well-adjusted individuals.

3 Damage Done by Britishers to Indian Education System

British rule did a lot of damage to the Indian society as a whole, be it its Divide and Rule policy, its systematic degradation of our

Gurukul system of education, devaluation to a great extent of Sanskrit language and our scriptures, and slowly and surely changing the history and the National character of the country. The rot has been set in deep in all our systems. Since Independence, due to unclear policies and foresight, personal petty gains, appeasement policies, political compulsions, and biased educational rules laid a bad foundation for our schooling and learning system in India. The emphasis was on teaching a history that was full of praises and amplification of the outsiders like Mughals and Britishers rather than highlighting our great culture and the dynasties which effectively ruled for centuries more than any of the Mughals. This type of learning produced a more and more non-creative type of people who had a very low opinion about their culture had no national character and were in-disciplined to a large extent. The democratic movement which initially bonded the people, later after independence resulted in more divisions due to politics and led to more divide amongst all individuals.

4 Gurukul System of Education

The Gurukul system of education⁶, was based on the principles of impartiality and wholesome learning. The Guru/teachers in such institutions were God-realized and knowledgeable, they had complete mastery over the teachings that they would impart.

1. Impartiality was ensured by not accepting any fees and making all the students responsible for the upkeep and smooth functioning of the ashram. Duties were assigned irrespective of the status of the child's family, thus ensuring bonding and impartiality among the students. Financial support came from the king, wealthy merchants, and normal people as donations for furthering the noble cause of propagating the knowledge to the future generations, thus building a better future for the individual, society, and the country as a whole. The students were considered equal and treated the same.

⁶ Education in Ancient India, Altekar, A.S., pp. 233-242
and
History of Indian Education, Rawat, P.L.pp. 1- 60

2. The wholesome learning was ensured from the beginning/the admission/Upnayan Samskāra/process of complete submission to the Guru/ashram, after proving the credentials to join the ashram. Getting admissions into these gurukuls was not an easy task as each gurukul and Guru required complete and unconditional surrender from the child. this helped in molding the child's mind towards Anuśāsana and responsibility towards self, his guru, and the gurukul.
 - (a) The learning included whole-hearted involvement in the day-to-day management of the ashram affairs, like, management of its animals, cleanliness, food preparation, etc. All these tasks were distributed amongst the students, to be done as per rules/Anuśāsana. There used to be punishments for not adhering to the set/prescribed life of the student/ Brahmachari.
 - (b) Anuśāsana did not mean harsh punishments⁷, instead, it meant certain activities, or extended chores, or some yogic positions for a certain time, etc. While administering and being administered such punishments⁸, the Guru and pupil respectively understood the issue, and, each other completely, ie, the Guru had full faith in the student and vice-versa. These practices helped in the strengthening of a child's psyche and helped in the development of the child's mind and body to its fullest possible extent.
 - (c) The knowledge about Shastras and scriptures, encompassed subjects like Mathematics. Science, Astrology, Philosophy, Logic, etc, came alongside Anuśāsana or the prescribed way of life at ashrama. The knowledge was propagated by free learning methods by way of reading, discussing, question-answer sessions, etc.

This Gurukul system of education was not made for profit generation for the ashrama, it was for the noble reason of propagating true knowledge and wholesome learning to the students. The

⁷ The Dharma Shastra, Manmath Nath Dutt , pp. 27, 32, 383
and

Dandaviveka of Vardhamana Upadhyaya, Dr. Bhabatosh Bhattacharya, pp. 1- 20

⁸ Thinking Differently about Guidance: Power, Children's Autonomy and Democratic Environments, Journal of Early Childhood Research, Feb 2012

Anuśāsanaātmāk interventions and the prescribed way of life at ashram along with the teaching of ancient sacred texts ensured direct connection of such activities/ Anuśāsana and the manas. The main purpose of such teaching practices was to sow the seed for one-pointedness and stability. This would become a building block for the practice of mindfulness. Also, these practices once established permanently in the mind of a child would lead to uniformity in thought, actions.

This would help the individuals to reach the stage of Ānanda after following the various disciplinary remedies taught to them in the gurukul. Such connections once laid in early childhood would develop the confidence to tackle any situations arising in their lives with equanimity and forbearance.⁹ It can be said that different anushashnatmic interventions/ prescribed activities ensured the union of student's body, mind, and activity, thus propelling him or her to the first level of meditation leading to Ānanda. This certainly gave a lot of confidence in all student's manas to ensure the connection stays alive and prepared them for taking on any mental stresses in future life. This also ensured that the student once having seen the benefits of this first stage of Ānanda, could try to move up towards achieving the ultimate blissful state of happiness (Moksha).

5 Knowledge of Ancient Scriptures

Our ancient scriptures which are not considered as scientific texts by the western scholars (who, still carry out extensive research on the same) contain a lot of wisdom on all the aspects of life and the afterlife too. One of the basic teachings emerging out of a lot of scriptures is that, 'to lead a good life, people need to do karma'¹⁰, now this karma needs to be done according to Dharma' (set rules for self, family, society and all people and nature). Dharma in our scriptures has been explained and elaborated for different Varna (the profession) and different stages of life (Brahmacarya, Gṛhastha, Vānaprastha, and Saṃnyāsa), which is logical and guided people towards Anuśāsanaātmāk way of life, as well as moving towards ulti-

⁹ Gross psychology, the science of mind and behaviour, Richard Gross, pp 446-466

¹⁰ Doctrine of Karma: A Study in the Philosophy and Practice of Work, Swami AbhedĀnanda, p.-1

mate bliss of reality. These Dharma are considered outdated nowadays, which has led to major psychological problems in all. These scriptures amplified in many ways that Dharma needs to be the foundation stone for any Artha, which in turn leads to karma fala.

The present generation of human beings is busy, wherein the solace of mind has been replaced by many things, leading to stress and anxiety disorders of various kinds. They are afflicted with various psychological disorders of one kind or the other mainly due to large-scale invasion of technology (mobiles, internet, etc) in our lives, weakening of family ties, present lifestyle, loosening of our cultural ethos/ ethics/ morals, etc. In today's world, the cultural interactions and moral values have taken a beating which has resulted in a unique society that is rootless as it does not have the ties which gave our previous generations a sense of identity and belongingness. Such a state has by its very nature started to cause disturbances and changes not only in our physical interactions with others but also at a much deeper level, by causing us to become more volatile and easily susceptible to the negativity all around us.

The solutions for addressing this situation, and such different types of physiological and psychological conditions lie in attaining a state of "Ānanda" which can be achieved through different methods of "Anuśāsana" or practices that force us to channelize our energy to reach a state of calmness. Based on our ancient scriptures, such teachings, and the knowledge and set connections in the form of Anuśāsanaātmāk rules given, a system of teaching can be developed that considers the impact of such Anuśāsanaātmāk or disciplinary methods on body-minds of people of different age groups, different sects, of different strata, of different religions and different areas or states, for arriving at a respective methodology for achieving "Ānanda" with personalized Anuśāsanaātmāk / disciplining methods. The same concept can be applied to children in schools on the lines of erstwhile Gurukuls (of ancient India) to imbibe such concepts in totality so that they are ready to take on life as it comes. Such a method of imparting education and necessary life skills will help society, in general, to collectively move towards a harmonious approach towards life and its unexpected exigencies. This can generate answers or solutions to all the problems affecting the present and future generations using the principles of our ancient scriptures.

The Gurukul system of education was supported by the kings and wealthy patrons of those times. In the present era, a balance needs to be worked out to re-establish this system of education through the help of government agencies, private individuals, and private trusts all over India to make it sustainable for a long time.

As of date, all the religious institutions of some religions have the right to run their learning schools and colleges, with certain help from the government without any audits or checks by government agencies. On the other hand, some religious institutions are under the control of the state, which utilizes its funds as per the decisions of ruling political parties. In ancient India, temples used to run their Gurukuls, and ‘Chatras’, where-in free quality education was being provided to the children, and also free food was being provided to the needy respectively. A similar system is needed in the present era, where-in the funds of all religious institutions must be by necessity be used to propagate the idea of universal brotherhood as given in our ancient scriptures and also help the people in need as per our shastras, instead of being used by various political parties for furthering their agenda. Such institutions can become a shining light that will lead our people from the darkness of miseries, insecurities, and various other problems and guide them towards a life that is in harmony with “Manava dharma”. They will then be able to transform the lives of everyone in keeping with guidelines and teachings given in our ancient Indian scriptures for the betterment of mankind.

6 Conclusion

The need of the hour is to institute such measures in the society, which lay a solid foundation for a strong society and country, where-in people follow their duties diligently and seriously¹¹ rather than only knowing them. All the religious institutions must be freed from the control of the government so that the money can be channelized

¹¹ Yagyavalkya Smiriti of Yogishwara Yajñavalkya with the Mitaksara Commentary of Vijnaneshwar, Dr. Umesh Chandra Pandeya , pp. 5, 13, 44
and
Srimad Bhagvad Gita Rahasya (Lokmanya Bal Gangadhar Tilak), B.S. Sukhtankar, pp. 734, 746

into productive activities which will benefit society at large. A central body can be formed for centrally managing all such small and big religious and other private institutions, providing certain aids also, along with the employment of all those associated with these institutions, and upgrading them all to such Gurukul where ancient wisdom and such curriculum with certain new age subjects, technologies, skills, universal brotherhood, righteous dharma, Anuśāsana, etc. Quality and accountability of all activities and personnel involved in the management of such institutions including Gurukuls need to be ensured by implementing strict disciplinary measures impartially. Such temples and gurukuls have been a reason why Bharat was the leader in the world guiding it towards enlightenment, they can again be a beacon of hope in these troubled times.

Based on our ancient scriptures, such teachings, and the knowledge and set connections in the form of Anuśāsanaātmāk rules, the expected outcome can be astonishing tailor-made disciplining of body and mind system which would be great for the society, and, for self, it would lay the foundation stone for achieving Ānanda by anyone through certain simple activities. The same concept can be applied to children in all the schools on the lines of erstwhile Gurukul (of ancient India) to imbibe such concepts of Dharma, and other such teachings in totality so that they are ready to take on life as it comes. Our wholesome development lies in balancing our modern ideas with our ancient knowledge. Our ancient scriptures and other knowledge sources will guide us towards a way of life that will benefit all the world in keeping with the philosophy of “vasudhaiva kutumbakam” propounded in the Vedas. In today’s time, it has become very unpopular to speak about the knowledge contained in our scriptures as various political parties have associated these books which provide a road map on how to live a fruitful life with the Hindu way of life. But now the time has come to rise above petty issues like religious identities and to find a way to make the lessons and knowledge of our culture is made accessible to the populace by establishing learning centers that reflect the way of a gurukul. They will then guide the people towards righteous conduct which will then lead to a situation where we can counteract the effects of so many years of neglect. Our minds and bodies will flourish under the able guidance of our ancient rishis who speak to us today through their works on various

subjects, through the Vedas, Puranas, and various shastras. They will lead us to Ānanda through the path of Anuśāsana.

References

1. Swami NikhilĀnanda, 1944, Translated into English, The Bhagavad Gita, The Had-don Craftsmen Inc, USA
2. Manmath Nath Dutt, 1979, English Translation of The Dharma Shastra, Cosmo Publication, New Delhi
3. Dr. Umesh Chandra Pandeya, 1994, Translated in Hindi Yagyavalkya Smriti of Yogishwara Yajñavalkya with the Mitaksara Commentary of Vijnaneshwar, Chaukhamba Sanskrit Sansthan, Varanasi
4. Manmatha Nath Dutt, English Translation of Manusmṛhitā, 1909, H.C.Das Ely-sium Press, Calcutta,
5. Altekar, A.S., Education in Ancient India, (fifth edition), 1957, Varanasi: Nand Kishore and Bros.
6. Rawat, P.L. History of Indian Education, Agra: Ram Prasad & Sons, 1996.
7. Dr. Bhabatosh Bhattacharya, 1973, Translated in English Dandaviveka of Vard-hamana Upadhyaya, the Asiatic Society and Sadhna Press, Calcutta pg 20),
8. Zsuzsa Millei, Sep 2011, Thinking Differently about Guidance: Power, Children's Autonomy and Democratic Environments.
9. Richard Gross, 2015, Gross psychology, the science of mind and behavior, Hodder Education An Hachette UK Company, London.
10. Swami AbhedĀnanda, 1947, Doctrine of Karma A Study withinside the Philosophy and Practice of Work, Nalanda Press, Calcutta.
11. Dr. Rai Bahadur Srisa Chandra Vidyarnava, Oct 1917, Translated in English Sacred Books of the Hindus of Yajñavalkya Smriti Miataksara and Balambhatta Charya Adhyaya Book 1, Indian Press, Allahabad.
12. [www.haaretz.com Israel-news or, premium-magazine-why-nobel-prize-winner-daniel-kahneman-gave-up-on-happiness](http://www.haaretz.com/Israel-news/or-premium-magazine-why-nobel-prize-winner-daniel-kahneman-gave-up-on-happiness)
13. [https://personal.eur.nl/veenhoven /Pub2010s or2012k-full.pdf](https://personal.eur.nl/veenhoven/Pub2010s%20or2012k-full.pdf)

आर्षशास्त्रोक्त कर्मसिद्धान्त : एक विश्लेषणात्मक समीक्षा

आशुतोष पारीक*

सारांश

जीवन के उद्देश्य, लक्ष्य और महत्ता को जानने का एक अप्रतिम प्रयास है कर्मसिद्धान्त। यही सिद्धान्त मानवजीवन की उत्पादकता, रोचकता, रिद्धि-सिद्धि, पूर्णता और वास्तविक आनन्द का पोषक है। प्राच्य ऋषि-मुनियों ने कर्म की महत्ता को जाना और उसके विविध स्वरूपों से परिचित कराया। यही कर्म का सिद्धान्त आर्षशास्त्रों का मूलाधार बना। विश्वकल्याण और निजहित में सुकर्म जहाँ अनायास ही साधक बन जाता है वहीं दूसरी ओर दुष्कर्म स्वयं और सम्पूर्ण विश्व के लिए घातक होता चला जाता है। कर्म न करना जहाँ अकर्मण्य बनाता है, वहीं अविवेकी होकर कर्मफल और कर्म के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना कर्म करना स्वयं के जीवन को निरर्थक बनाता है। कर्म के सूक्ष्म मूल स्वरूप को जिसने जाना है, वही स्वजीवन को अपने लक्ष्य तक पहुँचा सकता है। जीवन की सरसता, सरलता, सहजता और उपयोगिता के लिए कर्म के आर्षस्वरूप को जानना नितान्त आवश्यक है। यह शोधालेख इस हेतु किया गया एक लघुप्रयास है।

मुख्यशब्द : कर्म-भेद, कार्यकारणसिद्धान्त, भाग्य, पुरुषार्थ

1 विषय उपस्थापना

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे ॥¹

कर्म की अनवरत प्रक्रिया को जीवन का अभिन्न अंग बताते हुए यजुर्वेद में उद्घोषणा की गई है कि कर्म करता हुआ ही मनुष्य सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। हे मनुष्य! इस प्रकार कर्मानुष्ठान द्वारा अन्यो का नेतृत्व करने वाले तुझमें कर्मों की आसक्ति उत्पन्न नहीं होगी।

कर्म ही जीवन, उन्नति, प्रगति और विकास है। जहाँ कर्महीनता, अकर्मण्यता है; वहाँ दुःख, क्लेश, अभाव और विपत्तियाँ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में महर्षि व्यास स्पष्टतया कहते हैं कि जीवित रहने के लिए और जीवन-निर्वाह के लिए कर्म करना अनिवार्य है। जो कर्म नहीं करेगा, उसका जीवन भी कठिन हो जाएगा -

नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥²

* सहायक आचार्य, संस्कृत-विभाग, सम्राट् पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान, भारत

¹ यजुर्वेद, 40/2

² श्रीमद्भगवद्गीता, 3/8

कर्म शब्द का व्युत्पत्तिपरिचय - कर्म शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय होने पर व्युत्पन्न हुआ है अतः कर्म शब्द का सामान्य अर्थ है - जो किया जाए अर्थात् क्रियते यत् तत्। निरुक्तकार आचार्य यास्क कर्म के विषय में लिखते हैं - "कर्म कस्मात् - क्रियते इति सतः।"³

वैशेषिक दर्शन में कर्म दिशा-भेद से गमन, चेष्टादि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ कर्म के पाँच रूप दर्शाए गए हैं - "उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥"⁴

आचार्य पाणिनि कर्म को परिभाषित करते हुए लिखते हैं करने वाला जिसको सबसे अधिक चाहता है, वही कर्म है⁵ अतः कर्म का कर्ता प्राथमिक रूप से सामने आता है जो कि अपनी इच्छा से जो चाहता है वही करता है।⁶ अतएव वह अपने कर्म का उत्तरदाता होने से फल का भोक्ता सिद्ध होता है।

मनुस्मृति के अनुसार सांसारिक, आध्यात्मिक आदि सभी कर्म संकल्प एवं इच्छा से होते हैं, अर्थात् करने से पहले संकल्प, विचार और इच्छा उभरती है -

“संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः ॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद् यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥”⁷

कार्य-कारण के भौतिक सिद्धान्त का आध्यात्मिक सन्दर्भ ही 'कर्म का सिद्धान्त' है। भौतिक दृष्टि से यह सर्वसम्मत व प्रमाणित, अटल नियम है। कारण के होने पर कार्य की स्थिति व कार्य के होने पर उसमें निहित कारणों की अवस्थिति ही 'कार्यकारणसिद्धान्त' कहलाता है। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कार्यकारण के सम्बन्ध में लिखते हैं -

“अवश्यम्भाविता कार्यकारण के नियम की आत्मा है। कारण का कार्य अवश्यम्भावी है, उसे टाला नहीं जा सकता।... अवश्यम्भाविता के साथ-साथ कार्यकारण का नियम एक चक्र में चलता है। कारण-कार्य को उत्पन्न करता है, वह कार्य फिर कारण बन जाता है, अपने से अगले कार्य को उत्पन्न कर देता है।”⁸

व्यक्ति का स्वभाव, प्रकृति आदि उसको किसी न किसी कर्म में लगाए ही रखते हैं। न्यायदर्शन के वात्स्यायन-भाष्य में कर्मों की विविधता को परिलक्षित करते हुए लिखा गया है कि संकल्प-विकल्परूप विचार, ईर्ष्या, द्वेष आदि मन से और सत्य-असत्य भाषण, कठोर वचन, चुगली आदि वाणी जैसी इन्द्रिय से तथा मार-पीट, चोरी आदि कर्म हाथ जैसी कर्मेन्द्रिय (शरीर) से किए जाते हैं।⁹

³ निरुक्त, 3/1

⁴ वैशेषिकदर्शन, कणाद, 1/1/7

⁵ 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म', अष्टाध्यायी, 1/4/49

⁶ 'स्वतन्त्रः कर्ता', अष्टाध्यायी, 1/4/54, वृत्ति- कर्मकर्तुमन्यथाकर्तुं यः स्वतन्त्रः स कर्ता।

⁷ मनुस्मृति, 2/3-4

⁸ वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ०-63

⁹ "मिथ्याज्ञानादनुकूलेषु रागः प्रतिकूलेषु द्वेषः। रागद्वेषाधिकाराच्चासत्येर्ष्यामायालोभादयो दोषा भवन्ति। दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचाऽनृतपरुषसूचनासम्बद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिकां चेति। सेयं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय। अथ शुभा - शरीरेण दानं परित्राणं परिचरणं च, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामसृहां श्रद्धां चेति। सेयं धर्माय।" न्यायदर्शन, वात्स्यायनभाष्य

वर्तमान विज्ञान 'कर्म के सिद्धान्त' को नहीं मानता क्योंकि इसे मानने पर पूर्वजन्म, पुनर्जन्मादि को भी स्वीकार करना पड़ता है किन्तु इस सन्दर्भ में इतना ही तर्क पर्याप्त है कि जो विज्ञान अभाव से भाव का उत्पन्न होना और भाव से अभाव में चला जाना नहीं मानता, वह चेतना के इस जन्म में एकाएक अकारण उत्पन्न होने और एकाएक समाप्त हो जाने को कैसे मान सकता है? वैदिक संस्कृति में 'आत्मा' कर्ता है, कर्म नहीं; भोक्ता है, भोग्य नहीं; स्वतन्त्र है, परतन्त्र नहीं। 'कर्म सिद्धान्त' को समझने की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं -

“भाग्य और पुरुषार्थ, आत्मतत्त्व का कर्मों के बन्धन के साथ बंधे होना तथा स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकना, इन दोनों बातों की संगति समझने के लिये 'कर्म' को कुछ और गहराई से समझने की जरूरत है।¹⁰”

कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है - “तपश्चैवास्तां कर्म च.... तपो ह जज्ञे कर्मणः ॥¹¹” अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में कर्म और तप है। कर्म से तप की उत्पत्ति हुई और तप से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। कर्म और प्रगति की पारस्परिक सम्बद्धता को परिलक्षित करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है - “ओता आपः कर्मणि ॥¹²”

इसी संदर्भ में डॉ. कपिलदेव द्विवेदी लिखते हैं-

“कर्म की स्थिति सबसे ऊपर है। जहाँ कर्म है, वहाँ गति है, वहाँ जीवन है, वहाँ दुःखों का अभाव है। कर्म और गति का साक्षात् सम्बन्ध है।.... जहाँ कर्म है, वहाँ सुख है; जहाँ अकर्मण्यता है, वहाँ दुःख और अभाव है।¹³”

2 कर्मभेद

कर्म की विविधता प्रत्येक प्राणी के मन में विविध संकल्प-विकल्पों को उत्पन्न करने वाली होती है। अतः कर्म के विविध भेदों की अभिव्यंजना की गई है। पूर्वापर आधार पर कर्म के तीन भेद - 1. संचित, 2. प्रारब्ध और 3. क्रियमाण।

स्वभाव या फल के आधार पर कर्म के दो भेद - 1. शुभ कर्म/सुकर्म/ पुण्य/ अच्छे कर्म, 2. अशुभ कर्म/ कुकर्म/ पाप/ बुरे कर्म।

योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने इन्हें पुण्य और अपुण्य कहा है - “पुण्यापुण्यहेतुत्वात्¹⁴”

काल की दृष्टि से कर्म के चार भेद -1. कृत एवं संचित, 2. अकृत, 3. क्रियमाण, 4. करिष्यमाण।

इन सभी कर्मों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

कृत कर्म ऐसे कर्म जो किए जा चुके हैं किन्तु जिनका फल अभी प्राप्त नहीं हुआ है, वे ही कृत कर्म कहलाते हैं।

¹⁰ वैदिक संस्कृति के मूल, पृ.-71

¹¹ अथर्ववेद, 11/8/6

¹² उपरिवत्, 6/23/2

¹³ वैदिक दर्शन, पृ.-97

¹⁴ योगदर्शन, 2/14

संचित कर्म कृत कर्म का ही एक भेद 'संचित कर्म' है। ये संचित कर्म सुरक्षित भंडार की तरह संचित या सुरक्षित रहते हैं। ये संकटादि के समय प्राणरक्षा आदि के रूप में दिखाई देते हैं।

प्रारब्ध कर्म ऐसे कृत कर्म जिनका फल मिल चुका है या मिलना प्रारम्भ हो गया है, उन्हें प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

अकृत कर्म वे कर्म जो स्थूल रूप में या शरीर से नहीं किए हैं अपितु मन या विचार से किए गए हैं।

क्रियमाण कर्म वे कर्म जो हम प्रतिदिन कर रहे हैं। इनका फल तुरन्त या भविष्य में मिलेगा।

करिष्यमाण कर्म जिन्हें हम भविष्य में करेंगे या शीघ्र करने जा रहे हैं, वे कर्म 'करिष्यमाण कर्म' कहलाते हैं।

शुभ कर्म कर्म की प्रकृति एवं उसके फल का आधार जो शुभ, अच्छा व पुण्यप्राप्ति का साधनरूप हो, वह शुभ कर्म कहलाता है। कुकर्म या दुष्कर्म करने वाले की सदा दुर्गति ही होती है। अतएव अथर्ववेद में कहा गया है - "अधमस्तु अधकृते, शपथः शपथीयते ॥"¹⁵

अर्थात् पापकर्म करने वाले को पाप लगता है और कुवचन या गाली देने वाले को गाली देने के दंड का भुगतान करना पड़ता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि कुकर्म करने वाले, आलसी और प्रमादी का पतन होता है। कोई देवता या सज्जन पुरुष उसका साथ नहीं देता - "न देवासः कवल्लवे ॥"¹⁶

अशुभ कर्म - जो कर्म अशुभ, बुरा व पाप का साधनरूप हो, वह अशुभ कर्म कहलाता है। वेदों में अशुभ कर्म की घोर निन्दा की गई है। ऋग्वेद में अकर्मण्य, कामचोर और निकम्मे को ही दस्यु, चोर, दास या अधम कहकर निन्दा की गई है। साथ ही कहा है कि जो निन्दित/निषिद्ध कर्म या कुकर्म करता है, वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है। राजा का कर्तव्य है कि ऐसे असामाजिक तत्त्व को मृत्युदण्ड दे - "अकर्मा दस्युः ॥"¹⁷

संचित, प्रारब्ध और करिष्यमाण कर्मों से अधिक विचारणीय और मननीय पक्ष 'क्रियमाण कर्म' के सन्दर्भ में है। कार्य-कारण के सिद्धान्तानुसार तो क्रियमाण कर्म स्वतंत्र नहीं अपितु अनन्त काल से चली आ रही लड़ी की कड़ी है और ऐसा मानने वाले प्रायः भाग्यवादी (Fatalists) हो जाते हैं। वहीं दूसरी ओर क्रियमाण कर्म को कार्य-कारण सिद्धान्त से पृथक् बताकर स्वतंत्र मानने वालों का तर्क है कि हम जो चाहें कर सकते हैं, किसी पिछले बंधन से बंधे नहीं हैं। यह सिद्धान्त पुरुषार्थवादियों (Willists) का है। वहीं इस विषय में एक

¹⁵ अथर्ववेद, 10/1/5

¹⁶ ऋग्वेद 7/32/9

¹⁷ उपरिखत्, 10/22/08

तृतीय मत भी है। इसे बताते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं- “कार्यकारण का नियम भौतिक जगत् का नियम है और कर्म का नियम आध्यात्मिक जगत् का नियम है। यह उस जगत् का नियम है, जहाँ 'चेतना' नामक पंचतत्त्वों से भिन्न सत्ता काम कर रही है।..... भौतिक जगत् स्वतंत्र नहीं है, परमात्मा को मानो तो भी और न मानो तो भी, भौतिक जगत् कार्यकारण के महान् नियम के अधीन है, उससे इधर-उधर नहीं हो सकता। आत्मतत्त्व के साथ यह बात नहीं है। आत्मतत्त्व भौतिक पदार्थों से भिन्न है। वर्तमान विज्ञान इसे आत्मतत्त्व न कहकर 'चेतना' (Consciousness) कहता है।¹⁸”

हम सब यह अनुभव करते हैं कि ये बन्धन स्वाभाविक बन्धन नहीं हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बन्धनों में बंधे रहना नहीं, कार्यकारण में उलझे रहना नहीं, अपितु इस उलझन से निकल जाना ही मनुष्य स्वभाव है। अतः हमारे क्रियमाण कर्म पिछले कर्मों का फल भी हो सकते हैं। कार्यकारण की शृंखला में एक कड़ी भी हो सकते हैं और क्योंकि आत्मतत्त्व की नींव ही स्वतंत्रता पर खड़ी है, इसलिए ये क्रियमाण कर्म आत्मतत्त्व के इस जन्म के सर्वथा स्वतंत्र कर्म भी हो सकते हैं। इन्हें पूर्वजन्मों का फल अर्थात् दैव (Fate) या इस जन्म के स्वतंत्र कर्म = पुरुषार्थ (Free will) मानने से कार्य कारण के नियम में कोई त्रुटि नहीं होती।

3 कर्मफल

जो भी कर्म किया जाता है उसका कोई न कोई फल तो निश्चित रूप से होता है। कुछ कर्म व्यक्ति अपनी इच्छा से अकेला करता है तो कुछ दूसरों की सहायता से। मनुस्मृतिकार ने मांसभक्षण का उदाहरण देते हुए सामूहिक कार्य में अनेकों की सहभागिता का वर्णन प्रस्तुत किया है। मनुस्मृतिकार के अनुसार -

“अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥¹⁹”

अर्थात् सलाह देने वाला, काटने वाला, खरीदने-बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला अर्थात् ये सभी अपने-अपने योगदान के अनुरूप फल के भागी होते हैं। ऐसे सामूहिक कार्यों में सहयोगी उसके फल में हिस्सेदार होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार हम जिन फलों को भोगते हैं वे सदैव कर्म पर ही निर्भर होते हैं।²⁰ कर्म का फल सदा कर्म के सूक्ष्म-स्थूल रूप के अनुरूप ही होता है। अत एव मनुस्मृतिकार ने बारहवें अध्याय में बड़े विस्तार से बताया है कि मन, इन्द्रिय, शरीर के

¹⁸ वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ.-74

¹⁹ मनुस्मृति, 5/15

²⁰ क्षिप्रं हि मानुषे लोके, सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वं पूर्वतरं कृतम् ॥ श्रीमद्भगवद्गीता, 4/12, 3/20, 4/15

अलग-अलग रूप से या इनमें से दो या इन तीनों के मेल से आत्मा जैसा कर्म करता है उसका फल तदनु रूप किसी न किसी जन्मान्तर में अवश्य ही प्राप्त होता है।²¹

वैदिक चिन्तन में कर्म और फल के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए आचार्य भद्रसेन के विचारों का उल्लेख करते हुए रघुवीर वेदालंकार लिखते हैं - “कर्म और फल में पूर्वापर सम्बन्ध है। फल शब्द अपने साथ सम्पृक्त फलदाता, भोक्ता और वर्तमान-भूत-प्रारब्ध आदि भावों को जहाँ उजागर करता है, वहाँ विशेष रूप से फल शब्द खेती, बागवानी की प्रक्रिया से प्राप्य रूप को भी स्मरण कराता है जो कि भूमि की सज्जा, बीज, उसका वपन, सिंचन, सम्भाल, पुष्प-फल, आगमन और परिपाक तक का प्रकरण सामने ला देता है।²²” और यही कारण है कि हमारी भाषाओं में कृषिप्रक्रिया के आधार पर अनेक कथन, लोकोक्तियाँ, मुहावरे मिलते हैं। यथा - जैसा बोओगे वैसा काटोगे।²³

कर्मफल के विषय में योगदर्शन का वचन है - “सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥²⁴” अर्थात् कर्म रूपी मूल अर्थात् कारण के होने पर ही जाति, आयु और भोगरूपी फल होते हैं। यहाँ जाति से तात्पर्य विविध योनियों के शरीर से है, क्योंकि वैशेषिक दर्शन में सदृशता, समानतामूलक लक्षण शरीर में ही घटता है।²⁵

न्यायदर्शन के अनुसार भी जाति का लक्षण शरीर पर ही चरितार्थ होता है। अतः न्यायदर्शन में कहा गया है - “समानप्रसवात्मिका जातिः ॥²⁶” अतः हम जो सुख, प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, वह पुण्य कर्मों का फल होता है और दुःख या अप्रसन्नता पाप=अशुभ कर्मों का परिणाम होती है।²⁷ योगदर्शन में कर्मफल को दो भागों में बाँटा गया है - दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्टजन्मवेदनीय।²⁸

दृष्टजन्मवेदनीय जिन कर्मों का फल हम इस जन्म में भोग चुके हैं, भोग रहे हैं या भोगेंगे; वे ही दृष्टजन्मवेदनीय कर्मफल कहलाते हैं। अधिकांश कर्मफल दृष्टजन्मवेदनीय होते हैं अर्थात् इन कर्मों का फल हम इसी जन्म में भोग लेते हैं।

²¹ द्रव्येष्वभिधानं मनसाऽनिष्टं चिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्ममानसम् ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च शरीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् । वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिजाम् ॥ मनुस्मृति, 12/5-9

²² वैदिक चिन्तन, पृ.-211

²³ यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते । तादृशोहति तस्मिन् बीजं स्वैर्व्यजितं गुणैः ॥ अन्यदुप्तं जातमन्यदितेन्नोपपद्यते ।

उप्यते यद्वि यद् बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ मनुस्मृति 9/36,40

²⁴ योगदर्शन, पतंजलि 2/13

²⁵ भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव ॥ वैशेषिक दर्शन, कणाद 1/2/4

²⁶ न्यायदर्शन, गौतम, 2/2/68

²⁷ ते ह्याह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ योगदर्शन, पतंजलि, 2/14

²⁸ ‘कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः’ उपरिवत्, 2/12

अदृष्टजन्मवेदनीय अदृष्टजन्मवेदनीय वे कर्मफल हैं जिन्हें हम इस जन्म में नहीं, अपितु आगामी जन्मों में भोगेंगे। योगदर्शन में इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है - “सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।²⁹” अर्थात् जो कर्मफल शेष रहते हैं वे आगामी अन्य जन्मों में भोगने पड़ते हैं।

काल की दृष्टि से कर्मफल को तीन भागों में बाँटा गया है- 1. सद्यःफलप्रद, 2. विलम्बित, 3. अन्यजन्मवेदनीय। कर्मफल के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है -

“नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥³⁰”

अर्थात् मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसका वह कर्म या पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होता है। उसके कर्मफल में कोई विघ्न नहीं आता है। यदि वह अच्छे कर्म करता है तो उसका अच्छा फल मिलेगा। उसका थोड़ा सा भी पवित्र और उदारता का कार्य बड़े संकटों से उसे बचाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में सत्कर्म करने वाले की सदा उन्नति होने की बात कही गई है। महर्षि व्यास कहते हैं कि उसका जीवन सदा सुखमय होता है, उसकी कदापि दुर्गति नहीं होती। वे उत्तम कुलों में जन्म लेते हैं और सदा उन्नति की ओर अग्रसर होते हैं -

“पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतान् लोकानुशित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥³¹”

कर्मफल के विविध पक्षों को न्यायदर्शनकार इस प्रकार स्पष्ट करता है - “ईश्वरः कारणं पुरुषकर्मफल्यदर्शनात् । न पुरुषकर्माभावे फलनिष्पत्तेः । तत्कारित्वादहेतुः । अकृताभ्यागम ॥³²” अर्थात् अनेक व्यक्तियों को कर्म करने पर भी उसका फल नहीं मिलता, अतः इस सन्दर्भ में ईश्वर की कृपा, इच्छा ही फल का एकमात्र कारण है। तथापि एकमात्र ईश्वर ही फल का कारण नहीं, क्योंकि वह फलप्राप्ति व्यक्ति के कर्मों के बिना नहीं होती। यदि ईश्वर ही एकमात्र कारण होता, तो वह वरदान, इच्छा व्यक्ति के कर्मों के बिना भी हो जाती। कर्म करने पर ही ईश्वर कृपा करता है, अन्यथा नहीं। ऐसा मानने पर ही बिना किसी प्राप्ति तथा करने पर भी अप्राप्ति रूपी पक्षपात का दोष नहीं होता।

कर्मफल के सन्दर्भ में ऋग्वेद का कथन है कि सत्कर्म करने वालों के शुभ कर्म समाज की उन्नति में सहायक होते हैं और शान्ति की स्थापना में उपयोगी सिद्ध होते हैं -

“शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु ॥³³”

²⁹ योगदर्शन, पतंजलि, 2/13

³⁰ श्रीमद्भगवद्गीता, 2/40

³¹ उपनिषत्, 6/40-42

³² न्यायदर्शन, गौतम, 4/1/19-22

³³ ऋग्वेद, 7/35/4

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कर्मफलव्यवस्था इसीलिए अटल, अटूट है क्योंकि यह सारी व्यवस्था ईश्वर के द्वारा ही पूरी तरह से संचालित है। ईश्वर; सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और न्यायादि गुणयुक्त है। ईश्वर के अन्य कार्यसंसार रचना, पालना आदि जिस प्रकार पूर्णतः नियमबद्ध हैं, ठीक इसी प्रकार ईश्वर की कर्मफलव्यवस्था भी सर्वथा नियमबद्ध, व्यवस्थित, अटल और अटूट है। अत एव महर्षि दयानन्द लिखते हैं -

“जो सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर से अपने को पृथक् न जानकर, कुकर्म करना तो कहाँ रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा करूँगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न बचूँगा।³⁴”

अतः कर्मसिद्धान्त के महत्त्व को समझते हुए ही मन, वचन और कर्म से समान होते हुए श्रेष्ठ समाज की संरचना में हमारा योगदान हो सकता है -

समानी व आकृतिः समानानि हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥³⁵

सहायक-ग्रन्थ-सूची

1. डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व, विजयकृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली
2. डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, 2011 ई०, वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली
3. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक दर्शन, 2006 ई०, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही) उ० प्र०
4. डॉ० रघुवीर वेदालंकार (सम्पा०), 1997 ई०, वैदिक चिन्तन, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, दिल्ली
5. प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास, संवत् 2016, वैदिक सम्पत्ति - पं० रघुनन्दन शर्मा, कच्छ केसल, सेंडहर्स्ट ब्रिज, मुम्बई
6. मनु, प्रो० सुरेन्द्र कुमार (सम्पा०), 2017 ई०, मनुस्मृति, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
7. स्वामी दयानन्द सरस्वती, विक्रम सं० 2069, ऋग्वेद-भाष्य, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, राजस्थान
8. स्वामी दयानन्द सरस्वती, विक्रम सं० 2069, यजुर्वेद-भाषा-भाष्य, दयानन्द संस्थान, दिल्ली
9. ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, 2004 ई०, सामवेद-भाष्य, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, राजस्थान

³⁴ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास-11, पृ० सं० 269

³⁵ ऋग्वेद, 10/191/4

आशुतोष पारीक

आर्षशास्त्रोक्त कर्मसिद्धान्त : एक विश्लेषणात्मक समीक्षा

10. प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार, 2013 ई०, अथर्ववेद-भाष्य, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, राजस्थान
11. स्वामी दयानन्द सरस्वती, 1984 ई०, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
12. स्वामी दयानन्द सरस्वती, 2019 ई०, सत्यार्थप्रकाश, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, राजस्थान

अभिज्ञानशाकुन्तले मैत्रीसम्बन्धः

मीनाक्षी हालदार*

सारांश

विश्वविश्रुत नाटककार कालिदास और उनका नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् ऐसी कृति है कि जिस दृष्टि से पढ़ी जाए वह दृष्टि-विशेष ही उसमें प्रबल हो उठता है। मैत्री, यँ तो संस्कृत-नीति तथा सुभाषित-साहित्य का केन्द्रीय विषय है किन्तु साहित्य का प्रबल सम्बन्धी। शाकुन्तलम् में मैत्री-सम्बन्ध का सम्प्रत्यय ऐसा नहीं कि अस्फुट या बड़ा गूढ रहा हो, मगर शतधा अधीत भी किसी विषय को यदि विशिष्ट और प्रस्तुति की नई शैली में प्रस्तुत कीजिए जो उसी विषय में नए-नए दृष्टिकोण और नई-नई चीजें प्रकट होती मालूम पड़ती हैं। निबन्धकार ने शाकुन्तलम् के बहाने कई एक नीति और सुभाषित और लौकिक-काव्यों के साक्ष्यों से सम्बन्धित विषय पर बड़ी अच्छी प्रस्तुति दी है। आशा है लेख पाठकों अपना मैत्रीभाव स्थापित कर सकेगा। लेख पर टिप्पणियों/प्रतिटिप्पणियों, समीक्षा, अलोचना तथा विचारों का स्वागत है। - (सम्पादक)

मुख्यशब्द : अभिज्ञानशाकुन्तल, कालिदास, मित्रता

1 संस्कृतनाटकानाम् उद्भवः विकासश्च

भारतीयनाट्यशास्त्रस्य उत्पत्तिविषये महामुनिना भरतेन स्वीयनाट्यशास्त्रे उल्लिख्यते यद् देवानां प्रार्थनाम् उररीकृत्य ब्रह्मा चतुर्वेदाङ्गसम्भवं सर्ववर्णरुचिकरं पञ्चमं वेदं नाट्यशास्त्रं नाट्यवेदं वा प्रणिनाय। स वेदचतुष्टयाद् नाट्यशास्त्रोपयुक्तं तत्त्वचतुष्टयं जग्राह। ऋग्वेदात् पाठ्यं, सामवेदात् गीतं, यजुर्वेदाद् अभिनयम्, अथर्ववेदाच्च रसतत्त्वम्। एवं पञ्चमो वेदोऽयं नाट्यवेदः सर्ववर्णमनोरञ्जकत्वेन प्रादुरभवत्। उक्तं च नाट्यशास्त्रे-

तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥¹
 एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
 नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥²
 जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
 यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥³

आचार्यः भरतः ब्रह्मणः प्राप्तज्ञानेन नाट्यवेदस्य सृष्टिम् अकरोत्। एकस्मिन् उपाख्याने प्रोक्तं यत्-

‘ब्रह्मणः आज्ञया देवशिल्पिना विश्वकर्मणा निर्मितायां नाट्यशालायां दैत्यदानवनाशनं नाम नाटकस्याभिनयः कृतः’ इति। भरतस्य शिष्यशतम्, अप्सरसः, गन्धर्वाः एवं नारदादिमुनयः

* शोधच्छात्रा, साहित्यविभागः, राष्ट्रियसंस्कृततद्विश्वविद्यालयः, तिरुपतिः

¹ नाट्यशास्त्रम्, 1/12

² उपरिवत्, 1/16

³ उपरिवत्, 1/17

नाटकेऽस्मिन् पात्रत्वेन अभिनीतवन्तः । यस्य निर्देशनं भरतेन कृतम् । एवं नाट्यशालायाम् अयमेव प्रथमाभिनयः ।

वस्तुतः संस्कृतसाहित्ये नाट्यपरम्परायाः उत्पत्तिः महाकवेः भासात् परिगण्यते । ततः जयदेव-पर्यन्तं निरन्तरप्रवाहरूपेण प्रचलितेति साहित्यिकाः वदन्ति । भासस्य समयः ख्री० पू० 400, जयदेवस्य च समयः ख्री० श० 12-तः 13-शताब्दीं यावदिति परिगण्यते । उभयोः मध्यकाल एव नाट्यपरम्परात्वेन विद्वद्धिः आद्रियते । एतन्मध्ये एव शताधिकनाटकानि कविपुङ्गवैः विरचितानि । भासः त्रयोदश नाटकानि व्यरचयत् । अनेन विरचितानि नाटकानि रङ्गमञ्चे अभिनेतुं सर्वथा योग्यानि, मानवजीवनप्रणाल्याः अत्यन्तोपयुक्तानि च । रङ्गमञ्चे नाटकानाम् अभिनयः भासेनैव आरब्धः इति विदुषामभिप्रायः । प्राकृते, संस्कृते तथा तदितरभारतीयभाषासु यद्यपि अनेकानि सुन्दराणि नाटकानि विराजन्ते, तथापि दक्षिणभारते भासविरचितान्येव लोकप्रियता-मापुः । भासनाटकानां समीक्षया ज्ञायते यत् अस्य समये भारते नाट्यकलायाः प्रचारप्रसारादिकं जातम् इति । नाटकाभिनयार्थं नाट्यशालाव्यवस्थापनं सर्वसाधारणनियमोऽस्ति । तदेतस्मिन् विषये प्रतिमानाटकस्यारम्भे लिखितमस्ति यद् राज्ञः रामचन्द्रस्य राजभवनस्य अन्तःपुरे नाट्यशाला आसीत् । तत्र रङ्गमञ्चोपयोगिवल्कलादिसामग्र्या व्यवस्था पि आसीत् । प्रस्तावनायां प्रतिहारी वदति-

“सारसिके! सारसिके! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयान् विज्ञापय कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवेदि”ति । यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि ।⁴” भासात्परं ख्री० पू० प्रथमशतकोद्भवः कालिदास एव प्रसिद्धः नाट्यकारः । तेन विरचितेषु नाटकेषु नाट्यशास्त्रीय-विधानानां पूर्णतया निर्वहणं कृतमस्ति । महाकविः कालिदासः नाट्यविद्यायां पारङ्गतः । अनेन नाट्यकलायाः महत्त्वं तदस्तित्वं चेत्यनयोः दिग्दर्शनमपि कृतमस्ति । भारतस्य सांस्कृतिकबौद्धिकजीवनस्य मूल्यानि अत्र कृतिषु चित्रितानि । नाट्यकलायाः परम्परागतजीवनस्रोतस्विन्याः रसधारायाः सम्बन्धं पुरस्कृत्य कविरयं मालविकाग्निमित्रे एवं कथितवान् यत्- न पुनरस्माकं नाट्यं प्रति मिथ्या गौरवम् ।⁵ मालविकाग्निमित्रे प्रथमाङ्के चतुर्थश्लोके नाट्यविद्यायाः श्रेष्ठता-प्रतिपादनसन्दर्भे अभिप्रैति यत्-

देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥⁶

अस्याभिप्रायः सर्वे जनाः स्वीयाधीतविद्यामेव यथा सर्वोन्नततया चिन्तयन्ति तथैव नाट्यविद्यामपि आद्रियन्ते, विषयोऽयं सर्वविदितमेव । स्वयं भगवान् शङ्करः पार्वतीं परिणीय नाट्यं ताण्डवं, लास्यं चेति द्विधा विभक्तवान् । तस्मिन् सत्त्वरजस्तमोगुणानां समन्वयः अनेकरसानां सम्मिश्रणं लोकत्रयाणां चरित्रप्रदर्शनञ्च कृतम् । नाट्ये विविधरुचिसम्पन्नानां जनानां कृते नाटकं मनोरञ्जकं भवति, सर्वेभ्यः समानम् आनन्दं च वितरति ।

⁴ प्रतिमानाटकम्, प्रथमोऽङ्कः

⁵ मालविकाग्निमित्रम्, प्रथमोऽङ्कः

⁶ मालविकाग्निमित्रम्, प्रथमोऽङ्कः, श्लोकसङ्ख्या-4

2 नाट्यस्य प्रयोजनम्

‘प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते’ इति न्यायमधिकृत्य एवं वक्तुं शक्यते यन्नाट्यस्य प्र-
योजनं सर्वदा सर्वथा च वरीवर्ति । नाट्यमेकं कला भवति । नाट्यमञ्चे नाट्यमभिनीतं भवति ।
दुःखसन्तप्तजनानां सुखप्रदायकं भवति नाट्यम्, यथा-

दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मयाकृतम् ॥⁷

अर्थात् ब्रह्मा कथयति यत् महारा निर्मितं नाटकं दुःखेन पीडितानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां च
जनानां विश्रान्तिजनकं भवति । तथा इदं नाटकं धर्मम् आयुः यशः बृद्धये सहायकं भवति ।
नाट्यशास्त्रे वर्ण्यते यत् -

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति ॥⁸

नाट्यसाहित्ये प्रत्येकं नाटके एतादृशो भावः वरीवर्ति येन जनाः आनन्दमनुभवन्ति ।

3 मित्रलक्षणम्

मित्रमिति शब्दः ‘मित्रः’ अर्थात् पुंसि प्रयोगे सति सूर्यः इति अर्थः बोध्यते परन्तु मित्रम् इति
नपुंसके प्रयोगः भवति । यथा भर्तृहरिणा-

तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यत् एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ।⁹

मित्रलक्षणप्रसङ्गे शास्त्रेषु बहुविधानि लक्षणानि उक्तानि वर्तन्ते । तेषु कानिचन लक्षणानि अत्र
उपस्थाप्यन्ते । महाभारते मित्रलक्षणप्रसङ्गे उल्लिख्यते-

“यस्य क्रोधात् जनाः भीताः भवन्ति, यं च शङ्कितमनसा सेवन्ते, सः कदापि मित्रपदवाच्यः
न भवति । पितृसदृशः विश्वासपात्रो जन एव यथार्थं मित्रं भवति ।” नीतिकारस्य कथनम् -
“पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तत् दुर्लभम् ।” अर्थात् सुखदुःखयोः यः तिष्ठति, तत्
मित्रं दुर्लभं भवति । परन्तु एतादृशं दुर्लभं मित्रं प्रकृतं मित्रं भवति । सन्मित्रस्य महत्त्वम् अस्मिन्
सन्मित्रे निबद्धं भवति । याज्ञवल्क्यस्मृतौ उल्लिख्यते-

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः ।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै रक्षेत सत्यं समाहितः ॥

अर्थात् सुवर्णलाभस्य अथवा भूमिलाभस्य अपेक्षया मित्रलाभः श्रेष्ठः भवति । सज्जनानां मै-
त्रीविषये भर्तृहरिणा वर्ण्यते-

⁷ नाट्यशास्त्रम्, 1/114

⁸ उपरिवत्, 1/115

⁹ भर्तृहरिः, 2/68

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः ।
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवदृष्ट्वा तु मित्रापदम् ।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥¹⁰

एतानि लक्षणानि विहाय एकम् उत्कृष्टलक्षणं भवति यत्-

पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यानि गुह्यति गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्रतं च न जहाति ददाति नित्यं सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

अत्र मित्रतायाः षट् लक्षणानि उल्लिखितानि वर्तन्ते । कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी ।
अविचार्य प्रियं कुर्यात् तन्मित्रं मित्रमुच्यते ।
न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं, न कश्चित् कस्यचित् रिपुः । अर्थेस्तु वै निबध्यन्ते, मित्राणि रिपव-
स्तथा ॥

अनेन प्रकारेण शास्त्रेषु बहुविधानि उत्तमानि लक्षणानि उक्तानि ।

4 अभिज्ञानशाकुन्तले मैत्रीसम्बन्धः

संस्कृतनाट्यसाहित्ये बहुविधाः विषयाः वर्णिताः चर्चिताः च वर्तन्ते । नाटकं केवलं मनोरञ्जन-
नदायकं न, नाटकं सर्वेषां मध्ये सम्बन्धं स्थापयति । तेषु सम्बन्धेषु अन्यतमः सम्बन्धः भवति
मैत्रीसम्बन्धः । संस्कृतसाहित्ये प्रसिद्धनाटकेषु अन्यतमं नाटकं भवति कालिदासेन विरचितम्
अभिज्ञानशाकुन्तलम् । यत्र खलु मित्रतायाः नैकानि उदाहरणानि उपलभ्यन्ते ।

5 मैत्रीसम्बन्धानि पात्राणि

विदूषकः (माधव्यः), अनसूया, प्रियंवदा, सानुमती (मेनकायाः सखी), इन्द्रः (देवतानां राजा
तथा दुष्यन्तस्य मित्रम्) । संस्कृतनाटकेषु पात्रेषु अन्यतमः भवति विदूषकः । अयं राज्ञः नर्मस-
चिवः भवति । तथापि राज्ञा सह तस्य उत्तमः मैत्रीभावः परिलक्ष्यते । अस्य नाटकस्य द्वितीयाङ्के
विदूषकदुष्यन्तयोः कथोपकथनसन्दर्भे द्वयोः मध्ये मैत्रीसम्बन्धः परिलक्ष्यते । परस्परं वयस्य,
सुहृद्, सखा, अनुज इत्यादीनां शब्दानां प्रयोगः दृश्यते । एतेन स्पष्टं भवति द्वयोः मध्ये सम्ब-
न्धः अत्यन्तः गाढः भवति । मृगयान्वेषणे राज्ञः मनः लग्नं न भवति इत्यस्मिन् सन्दर्भे विदूषकः
कथयति-

अत्र भवान् किमपि हृदये त्वा मन्त्रयते । अरण्ये मया रुदितम् आसीत् ।

तदा राजा मित्रस्य वचनमङ्गीकृत्य कथयति-

किमन्यत् । अनतिक्रमणीयं सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि ।

अस्य द्वितीयाङ्कस्य अन्तिमे करभकः राजमातुः आदेशम् अश्रावयत् । तदा राजा चिन्तायां
सत्यामपि विदूषकम् उद्दिश्य कथयति-

¹⁰ नीतिशतकम्, 72

सखे, त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः । अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं
मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्र.त्यमनुष्ठातुमर्हति ।

अन्तिमे विदूषकः कथयति-

यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि ।

पञ्चमाङ्के विदूषकः कथयति-

भो वयस्य, सङ्गीतशालान्तरे अवधानं देहि । कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते ।
षष्ठाङ्के यदा राजा शकुन्तलायाः विरहे मूर्च्छितः अभवत् तदा विदूषकः कथयति-

भोः किम् एतत् । अनुपपन्नं खलु ईदृशं त्वयि । कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्याः न भव-
न्ति । प्रवाते अपि निष्कम्पाः गिरयः ।

तदनन्तरं - मा एवम् । ननु अङ्गुलीयकम् एव निदर्शनम् । अवश्यम्भावी अचिन्तनीयः समागमः
भवति इति ।

क्रमशः अस्मिन् अङ्के परस्परयोः वार्तालापे राजनं स्मारयति विदूषकः । अन्यत्र अनसूया प्रि-
यंवदा च शकुन्तलायाः द्वे सख्यौ स्तः । द्वयोः भूमिका शकुन्तलायाः जीवने महती विद्यते ।
अनसूया कथयति-

“हला शकुन्तले, त्वत्तः अपि तातकाश्यपस्य आश्रमवृक्षकाः प्रियतरेति तर्कयामि येन
नवमालिकाकुसुमपेलवा अपि त्वम् एतेषाम् आलवालपूरणे नियुक्ता ।”

तृतीयाङ्के अनसूया प्रियंवदा च प्रियायै शकुन्तलायै नलिनीपत्रवातं कुरुतः । कालिदासः वर्णयति
यत्-

“हला शकुन्तले, अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः ।”

एतेन स्पष्टं भवति यत् परस्परं सम्बन्धः उत्तमः । सर्वोपरि द्वे सख्यौ सर्वेषु कार्येषु परस्परं सहा-
यतां कुरुतः । चतुर्थाङ्के दुर्वाससः शापः प्रधानांशः वर्तते । अनुसूयाप्रियंवदे परस्परं वार्तालापं
कुर्वत्यौ पुष्पाणि चिनुतः । तस्मिन् समये कस्याश्चित् व्यक्तेः कण्ठस्वरः श्रुतः । श्रवणात् परं द्वे
सख्यौ पर्णकुटीरं प्रविश्य शकुन्तलायाः दुर्दशां पश्यतः । एवम् अनन्तरं दुर्वाससः शापं ज्ञा-
त्वा प्रियंवदया तन्निवारयितुं प्रयत्नः कृतः । शकुन्तलां प्रति द्वयोः अनुरागः विद्यते अतः सर्वदा
तस्याः मङ्गलं चिन्तयतः । प्रियंवदा दुर्वासामुनिं प्रार्थयति-

यदा निवर्तितुं न इच्छति तदा विज्ञापितो मया, भगवन्! प्रथम इति प्रेक्ष्य अविज्ञाततपः-
प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवता एक अपराधः मर्षितव्य इति ।

चतुर्थाङ्के अनसूया-

प्रियंवदे! यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तला अनुरूपभर्तृगामिनी संवृता
इति निर्वृत्तं मे हृदयम्, तथापि एतावत् चिन्तनीयम् ।

अस्मिन् अङ्के शकुन्तलायाः पतिगृहं प्रति गमनवेलायां द्वे सख्यौ तस्याः आभरणसंग्रहणे सर्वेषु
अन्येषु कार्येषु च सहायतां कुरुतः । प्रत्येकं क्षणं रात्रिकालीनच्छायावत् स्तः । एतत् सर्वं मि-
त्रतायाः लक्षणम् अन्वर्थीकुरुते । परस्परं मैत्रीसम्बन्धः सर्वदा दरीदृश्यते । अपरस्मिन् क्षेत्रे द्वे
सख्यौ शकुन्तलां पुत्रीवत् लालयतः ।

षष्ठे अङ्के मेनकायाः आदेशं गृहीत्वा सानुमती राजद्वारं प्रति आगतवती । कविः वर्णयति-

साम्प्रतम् अस्य राजर्षेः उदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि । मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकु-
न्तला । तथा च दुहितृनिमित्तम् आदिष्टपूर्वा अस्मि ।

अनेन स्पष्टं भवति यत् मित्रता कीदृशी अस्ति । मेनकायाः सखी भूत्वा अपि शकुन्तलाविषयं ज्ञातुम् आगतवती । तदित्यं संस्कृतसाहित्यस्य क्षेत्रं विशालं भवति । एतस्मिन् साहित्ये बहुविधाः विषयाः अन्तर्भवन्ति । तेषु विषयेषु अन्यतमः मैत्रीसम्बन्धः । अत्र अभिज्ञानशाकुन्तले मैत्रीसम्बन्धः प्रदर्शितः वर्तते । मित्रता स्वयं नागच्छति । उत्तमे सम्बन्धे सति मित्रता स्वतः सम्पद्यते । मित्रतायाः लक्षणपुरस्सरं महत्त्वं पूर्वं भृशम् उक्तं वर्तते । आधुनिकसमाजे तु मैत्रीसम्बन्धस्य हासः दरीदृश्यते । अद्यत्वे गृहे परिवारे समाजे देशे विदेशे च सर्वत्र मैत्रीभावस्य अभावः विद्यते । परिणामतः समाजे अराजकता दृश्यते । निष्कर्षरूपेण एतद्वक्तुं शक्यते यत् यदि सर्वैः संस्कृतसाहित्यग्रन्थानाम् अध्ययनं क्रियेत तर्हि एतादृशी अराजकता परस्परं शत्रुता वा नैव भवेत् । अपि च मैत्रीसम्बन्धः सुदृढः स्यात् ।

सहायकग्रन्थाः

1. कालिदास (लेखक), कपिलदेव द्विवेदी (सम्पादक), 1969 ई०, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रामनारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद, उ० प्र०
2. रेवाप्रसाद द्विवेदी (सम्पादक), 2005 ई०, नाट्यशास्त्रम्, आर्यन् बुक्स इन्टरनेशनल, नई दिल्ली
3. राजेश्वर मिश्र (सम्पादक), 1988 ई०, नीतिशतकम्, अक्षयवटप्रकाशनम्, इलाहाबाद, उ० प्र०
4. काशीनाथ पाण्डुरङ्ग (सम्पादक), 1924 ई०, मालविकाग्निमित्रम्, मुम्बई, महाराष्ट्र
5. गङ्गासागर राय (सम्पादक), 2011 ई०, याज्ञवल्क्यस्मृतिः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

पण्डित वासुदेव द्विवेदी और एक मैथिली कहानी 'अगिलही'

प्रताप कुमार मिश्र*

सारांश

यह आलेख संस्कृत-भाषा और साहित्य के विश्रुत सेवी और आचार्य पण्डित वासुदेव द्विवेदी जी (1935-2004 ई०) की अध्येतावृत्ति पर प्रकाश डालने वाला एक संस्मरणात्मक आलेख है। द्विवेदीजी भारत की प्रायः सभी भाषाओं और लिपियों के जानने समझने वाले आचार्य रहे। इन भाषाओं और लिपियों में प्रकाशित संस्कृत से सम्बन्धित चीजों को इकट्ठा करने और इनके द्वारा संस्कृत की सेवा करने का उन्हें आजीवन व्यसन रहा। इस आलेख के लेखक उनके शिष्यों में से रहे हैं। अपनी मृत्यु से लगभग एक दशक पूर्व से ही द्विवेदीजी ने न केवल लेखक को, अपितु मिथिला-निवासी प्रायः अपने परिचितों को यह मैथिली-कहानी ढूँढने पर लगा रखा था, किन्तु उनके जीवन-काल तक यह कथा उपलब्ध न हो सकी। दो-तीन माह पूर्व यह अज्ञात और दुष्प्राप्य कथा, लेखक को मिल गई और उसने इस कथा के ढूँढने के पीछे द्विवेदीजी का क्या प्रयोजन हो सकता था; इस विषय पर बड़े ही विवरणात्मक तथ्य प्रस्तुत किए हैं।

मुख्यशब्द : अगिलही, गङ्गानन्द सिंह, मैथिली कहानी, पं० वासुदेव द्विवेदी, सार्वभौम

जो लोग संस्कृत-भाषा और साहित्य से सम्बन्धित हैं; उनके लिए पण्डित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री जी का परिचय आवश्यक नहीं और जो लोग इस भाषा या साहित्य से सम्बन्धित नहीं, वे यदि उनके बारे में जानना चाहें तो उनके लिए एक वाक्य में आपका परिचय यही है कि- 'आज समग्र भारत में संस्कृत का जो ऐसा प्रचार-प्रसार, सहज सरल सम्भाषण, अध्ययन-अध्यापन और लेखन आपको दिखाई पड़ता है वह सब यदि द्विवेदी जी के अकेले बूते से नहीं तो, कम से कम संस्कृत के ऐसे प्रचार-प्रसार में द्विवेदी जी का योगदान सर्वोपरि अवश्य है।'

बाँसफाटक, वाराणसी में 'सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्' नामक एक छोटी सी, बल्कि बहुत ही छोटी सी; हज़ार स्क्वायर फीट पर बने तीन-मंज़िला पुराने ढंडार से मकान में, संस्था थी। हालाँकि संस्कृत-सेवा वह इससे भी पहले से करते आ रहे थे, मगर 15 अगस्त, 1947 ई० को पण्डितजी ने इस संस्था की विधिवत् नींव रखी और 1966 ई० को इसे रजिस्टर्ड कराया। शेष बातें, इतिहास-भूगोल इस संस्थान से सम्बन्धित आपको अन्यत्र मिल जाएँगे, मुझे बस इतना बता लेने दीजिए कि जब तक यह संस्था जीती रही, अर्थात् द्विवेदीजी जीते रहे, यह भारत में अकेली ऐसी जगह थी जहाँ 24*7 घण्टे संस्कृत ही बोली जाती थी। इसमें भी बड़े-बुजुर्ग भले जी-चाहे कभी-कभार भोजपुरी या और कोई भाषा बोल लें, बच्चों और प्रशिक्षु विद्यार्थियों के मुँह से संस्कृत से इतर कोई भाषा निकलना दुश्चर था। ख़ैर इस मकान के भूखण्ड वाले तल पर पण्डितजी की अपनी लायब्रेरी थी। दुनिया उन्हें संस्कृत-प्रचारक, सेवक आदि-इत्यादि के रूप जानती और मानती है; और ऐसे ही वह थे

* Secretary, Pratnakīrti Oriental Research Institute, Vārāṇasī, U.P., India

भी। लेकिन मेरी दृष्टि उनके अध्येता रूप से इतर हो ही न सकी। अद्भुत अध्येता थे। किताबों के बड़े शौकीन। इस पर गज़ब यह कि भारत की सभी (यहाँ सभी का मतलब आप सभी से ही लें) भाषाओं का, उनकी लिपियों के साथ; ज्ञान रखते थे। कुछेक भाषाओं में, जैसे-मलयालम और तेलुगु; बोलना और लिखना छूटा हुआ था इसलिए कभी-कभार अटकते थे मगर बाक़ी भारतीय भाषाओं में पढ़ना और लिखना उन्हें हस्तामलकवत् था। भाषाओं और लिपियों के इस ज्ञान ने आपकी लायब्रेरी को दस-गुना बढ़ा दिया था और बेचारी किताबें!..... वह ठुस्सम-ठुस्सा, गड्डुमड्डु, एक-दूसरे पर लदी-फदी कि आए दिन आलमारियों में कोहराम सा मचा रहता। कारण कि जहाँ करीने से, क्रायदे से 5000 या 10000 किताबें रखी जा सकती थीं, 35000 किताबें ढूस-ढूस कर भर रखी गई थीं।

पण्डितजी को मैथिली भी बड़ी अच्छी आती थी। अपने बचपने में मैंने उन्हीं से जाना था कि मैथिली की अपनी लिपि है जो कि बंगाक्षर ही है, मगर कुछेक वर्णों में विविधता है। लायब्रेरी में आपके, मैथिली की भी किताबें बहुत थीं और प्रायः ये संस्कृत-क्लासिक्स के मैथिली में अनुवाद हुआ करती थीं। ऐसा ही बाक़ी भाषाओं और लिपियों के विषय में भी समझना चाहिए।

मुझे याद है कि जब मैं प्रवेशिका का विद्यार्थी था (1994 ई०), द्विवेदीजी मैथिली की एक कहानी ढूँढ़ा करते और प्रायः मुझसे कहा करते कि- 'जब गाँव (ग्राम - मिथिला, वाया -घोगरडीहा, जिला - मधुवनी) जाना तो इस कहानी को दरभंगा में ढूँढ़ना। वहाँ के पढ़े-लिखों से पूछना' आदि। मैं गाँव तो ज़रूर जाता लेकिन दरभंगा में ढूँढ़ना मेरे लिए कब सम्भव था। घर वाले साथ, ट्रेन का समय नियत।

बाद को जब मैं अकेले गाँव जाने-आने लगा (1996-97 ई०) तो कभी-कभार टॉवर-चौक (दरभंगा) जाता और किताब की दो-चार दुकानों में पूछ-ताछ के बाद लौट पड़ता। किताब नहीं मिली। द्विवेदी जी बार-बार यही कहते थे कि यह कहानी 'अगिलही' शीर्षक से मिथिला-मिहिर नामकी पत्रिका में 1940 से 1960 ई० के दशक में प्रकाशित हुई थी और इसी में उन्होंने पढ़ा था। लेकिन दसियों बार मैंने टॉवर-चौक के फेरे लगाए होंगे और हर बार कोई सुराग नहीं मिलता।

द्विवेदीजी का निधन 2004 ई० में हुआ और दुर्भाग्य से यह कहानी मैं न ढूँढ़ सका। वैसे कुछ और किताबें और ऐतिहासिक व्यक्ति थे जिनकी खोज पर पण्डितजी ने मुझे लगा रखा था, लेकिन उनके जीवन-काल तक इनमें कई किताबों और ऐतिहासिक व्यक्तियों को मैं ढूँढ़ न सका। लेकिन ढूँढ़ना जारी है।

2019 ई० में कोरोना-महामारी से कुछेक माह ही पूर्व द्विवेदीजी की आजीवन अभिलषित इस मैथिली-कहानी अगिलही का पता-ठिकाना मिल गया और इससे पूर्व कि किताब तक पहुँचा जाए, कोरोना-महामारी पहुँच आई। एक वर्ष उथल-पुथल के बाद फिर इस पता-ठिकाने पर चलने की ठनी तो फिर लॉक-डाउन। 2021 के नवम्बर महीने में हार मान कर मैंने मेरे अभिन्न मित्र डॉ० पुष्कर आनन्द को यह पता-ठिकाना उनके हवाले किया और यथाशीघ्र इसे निकाल लाने की प्रार्थना की। पुष्कर स्वयं भी पिछले 20 वर्षों से इस कहानी के ढूँढ़ने पर मेरी ही तरह नियत थे इसलिए आजिज़ भी आ चुके थे। सो एक दिन उठे और

विश्वविद्यालय-मैथिली-विभाग, चन्द्रधारी सिंह मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा गए और वहाँ की लायब्रेरी से यह कहानी निकाल लाए।

हमारी खुशी के ठिकाने का अंदाज़ आप स्वयं भी कर सकते हैं। द्विवेदीजी जैसा अध्येता आजीवन किसी कहानी को ढूँढ़ता फिरे और वह कहानी न मिले, फिर वर्षों बाद वह मिल जाए तो खुशी के भाव और अनुभाव में भी गहराई का आ जाना तो स्वाभाविक ही है।

अस्तु, अब देखना यह है कि यह कहानी क्या है और इसमें ऐसा क्या है जिसने द्विवेदीजी जैसे व्यक्ति को आजीवन अपने पीछे फिराए रखा?.....

तो उचित यह होगा कि कहानी का सार-संक्षेप पहले प्रस्तुत कर दिया जाए, फिर यह देखा जाए कि इसमें ऐसा क्या है। कहानी इस तरह शुरू होती है-

एक ब्राह्मण था जिनकी एक कन्या थी चपला। नाम के अनुकूल; बल्कि उससे बढ कर कन्या बहुत ही चंचल थी। आस-पड़ोस के लोग और बच्चे-बूढ़े तक उसे 'अगिलही' पुकारा करते थे। मैथिली में इस शब्द का अर्थ बताने से अच्छा है कि कहानी में चपला का जो चित्र उकेरा है उसे देख लिया जाए। लड़की चंचल, शोख, शरीर (बदमाश), बातूनी, बालसुलभ जिज्ञासाओं से भरी, समझ में न आने पर बाल के खाल निकालने वाली और प्रत्युत्पन्नमति भी थी। मिनट को चैन नहीं। यहाँ वह गिराया, वहाँ वह पड़ाया। अनजाने में किसी को नुकसान पहुँचा दिया।

एक दिन बड़ी बहन बैठी कनिया-पुतरा (गुड़िया-गुड्डा) गढ़ रही थी। ना मालूम क्या सूझा कि पैर से एक उदुक्का मार बैठी। सुई बहन की उंगलियों में चुभ गई। मारने दौड़ी तो वह कब पकड़ में आती है। भाग कर फूल-काकी के आँगन में कोठी के पीछे छुप गई। सारा दिन बीत गया। माँ-बाप, बहन, घर की खवासिन सब पेरशान। किसी के ढूँढ़े न मिली। शाम हो आई। भूख ने तिलमिला दिया था। लेकिन घर जाएँ तो बड़ी बहन मारेंगी। फूल-काकी ही के रसोई की तरफ बढी, दबे पाँव। खाने की चीज़ें तलाशीं। कुछ न मिला तो छींके से दही उतारने की सूझी। छॉछ (बर्तन) गिर पड़ा और खुद दही से नहा बैठीं। घर के लोग दौड़े। देखा तो आप हैं- अगिलही।

फूलकाकी का क्रोध सातवें आसामान पर। ब्राह्मण को निमन्त्रण पड़ चुका था और घर में दूध का छटौक नहीं। कल ब्राह्मण को क्या खिलाएंगी। अगिलही को खूब कोसा, खूब गरियाई, सरापीं, चिल्लाई। हाथ पकड़ के उसके घर लाई जहाँ रोना-धोना मचा हुआ था।

खैर, इस तरह शुरूआती हिस्से में मूल पात्र का चरित्र तैयार किया है और उसे रंग-रौगन से सजाया सँवारा है। कहानीकार का मूल कथ्य उसका प्रयोजन इस कहानी के दूसरे चैप्टर में तब शुरू होता है जब-

बेटे के जनेऊ में लिवा जाने के लिए अगिलही के मामा उसके घर पधारते हैं और सबको निमन्त्रित करते हैं। बच्चा होने के कारण अगिलही को विशेष आमन्त्रण है - 'ऐऽ भाई का उपनयन है, आना! आएंगी न!' लड़की ने इससे पहले जनेऊ होते कभी न देखा था सो तुरत पूछ बैठी-

'मामा! उपनयन कैसे होता है?'

मामा ने संक्षेप में समूचा आचार और संस्कार बखान दिया। सब सुन कर लड़की ने पूछा-

'जनेऊ हो जाता है तो क्या होता है?'

उत्तर मिला- 'लोग ब्राह्मण हो जाते हैं!'
 तुरत ही प्रश्न हाज़िर- 'बिना जनेऊ लोग क्या रहते हैं?'
 उत्तर मिला- 'शूद्र!' तो पूछा - 'जैसाकि मनचनमा है?'
 उत्तर- 'हाँ!'
 फिर पूछा- 'बिनुओ (अपने भाई की ओर इशारा कर के) इस समय वही है?'
 उत्तर मिला- 'हाँ!'
 फिर प्रश्न- 'तो मनचनमा और बिनु दोनों एक बार ही ब्राह्मण होंगे?'
 उत्तर- नहीं, मनचनमा कैसे ब्राह्मण बनेगा; वह तो राड़ (छोटी जाति) का बेटा है। हाँ बिनु के उपनयन के बाद वह ब्राह्मण हो जाएगा।'
 फिर प्रश्न छूटा- 'तो राड़ ब्राह्मण नहीं होते हैं?'
 उत्तर- 'नहीं।'
 फिर प्रश्न दगा- 'तो उपनयन से पहले लोग राड़ कैसे रहते हैं?'
 उत्तर- 'छूति (स्पर्श) का विचार जनेऊ से पहले नहीं रखा जाता। अछूति (शुद्धि) हो जाती है।'
 प्रश्न- 'वह कैसे?'
 उत्तर- 'ब्राह्मण होता है इसलिए।'
 फिर प्रश्न- 'तो ब्राह्मण मनचनमा के छूने से छूत (अस्पृश्य) हो जाएगा?'
 मामा ने सोचा था, बच्ची है! ले दो-चार बातें किए लेते हैं। जब प्रश्नों की बौछार पड़ी तो उकता गए-
 'हेऽ तू तो बातों को बड़ा रेघाती है।... नहीं जानती कि राड़ का छुआ लोग खाते नहीं। पीते नहीं।... हाँ यदि खाते भी हैं तो रोटी, बिना नमक की तरकारी, मिठाई, दही। भात-दाल नहीं। रान्धा (पकाया) हुआ नहीं।'
 प्रश्न- 'वह क्यों?'
 उत्तर- 'वह तू नहीं समझेगी! रहो,.... (उकताए मामा ने नौकर को आवाज़ दी) रे बिकलाऽऽ... एक जून तमाकू दे!...
 इधर लड़की ने दिक किया- 'नहीं मामा बताओ!... रोटी क्यों अछूत है और भात क्यों नहीं?'..
 मामा- 'हैऽ.. अरे शास्त्र में वही लिखा है। लोग ऐसा ही करते हैं।'
 प्रश्न- 'मामा! शास्त्र क्या है?'
 'बाप रेऽऽ,.... ई त बड़ तिलबिखी छौंड़ी (छोकरी) अछि (है)!.. अब इसका क्या ज़वाब क्या दूँ- 'वही जो पण्डित पढ़ते हैं?'
 प्रश्न- 'पढुआ काका जो गोसाजि के नाम लेते हैं, वही है!'
 मामा- 'हाँ'...
 प्रश्न- 'और माँ जो गोसाजि के नाम लेती है?'
 मामा- 'हाँ'...
 प्रश्न- 'तो माँ भी पण्डित है?'..

गुलाब-मामा का धैर्य जाता रहा, बोले- 'जा खेल कूद! बड़ी होगी तो खुद जान जाएगी।'....

इसी बाच नौकर ने तमाकू चुना के दिया। हाथ में लेकर होठों के बीच रखा ही चाहते थे कि लड़की उचक कर गोद में जा बैठी और दाढ़ी पकड़ के, उनका मुँह अपनी ओर फिरा लिया। असावधान थे ही, सारा तमाकू का जून (बीड़ा) ज़मीन पर गिर पड़ा। क्रोध तो आया पर प्यार से ही कहा-

'तू बहुत शैतान है, जा नहीं तो अब मार खाएगी।'

लड़की ने नन्हीं अपनी टाँगों से एक लथाड़ लगाया और दाढ़ी पकड़ के मुँह घुमाते हुए कहा - 'मैं न जाऊँगी!'

'ऐसे करेगी तो पीटूँगा!'

अस्तु; कहानी इसी तरह आगे चलती, बढ़ती है। बचपने की शरारतों का अच्छा ख़ासा चित्र खँचा है। इन्हीं शरारतों के बीच लड़की ने निपट धर्मशास्त्र के ऐसे मुद्दे उछाले हैं कि जिनके उत्तर ब्राह्मण परम्पराओं, रीति-रिवाजों और आचार-विचारों से सुसम्पन्न, सुसंस्कृत जीवन जीने वाले स्वयं एक ब्राह्मण; लड़की के मामा को भी विचलित किए देते हैं। ब्राह्मण छह-सात बरस की एक लड़की के सामने निरुत्तर, बिल्कुल असहाय सा प्रतीत होने लगता है और अन्ततोगत्वा अपनी उस हेकड़ी पर उतर आता है जिस पर हज़ारों बरस से निरुत्तर ब्राह्मणवाद समय-समय पर उतर आया करता है - 'बड़ी होगी तो समझ जाएगी।' 'शास्त्रों को पढ़ोगे तो समझ जाओगे!' 'शास्त्रों पर विश्वास रखोगे तो समझ जाओगे!' 'शास्त्रानुकूल व्यवहार करोगे तो समझ जाओगे।' आदि और इत्यादि। मगर सात साल की बच्ची के एक छोटे से प्रश्न का जवाब देते नहीं बन पड़ता-

'रोटी क्यों अछूत है और भात क्यों नहीं?'...

मुझे लगता है, यही वह प्रश्न और इस प्रश्न का उत्तर देने में ब्राह्मण-परम्परा का वही भगोड़ापन, जिसने द्विवेदीजी को इस कहानी के ढूँढने पर दशकों तक लगाए रखा। यहाँ इस बात पर थोड़े विस्तार की ज़रूरत है। द्विवेदीजी को जानने वालों पर यह रहस्य प्रकट होगा कि आप सनातन धर्म, इसके मूल्यों, आचार-विचार, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि और इत्यादि में समाहित उन तत्त्वों या तथ्यों के घोर विरोधी थे जो मनुष्य को मनुष्य से पृथक् करते हों, उनमें अन्तर करते हों।

जातिवाद, स्पृश्यापृश्य विवाद के वह घनघोर विरोधी थे। कुछेक ऐसे धार्मिक विचारों, रूढ़ियों, सम्प्रत्ययों, तथ्यों, मान्यताओं आदि का तो वे उपहास तक उड़ाया करते थे जिनका तर्क की कसौटी पर खरा और विज्ञान-सम्मत उत्तर नहीं दिया जा सकता। ऐसे कई एक धार्मिक, पौराणिक और परम्परायुक्त रूढ़ियों, विचारों, सम्प्रत्ययों आदि से सम्बन्धित कथाएँ, प्रसंग और वृत्तान्त मुझे (और सार्वभौम में आपके अन्यान्य शिष्यों को भी) आज भी याद हैं। सनातन धर्म में ऋषियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित अजीबो गरीब कथाओं को आप अक्सर उन उन वैदिक, आरण्यक, ब्राह्मण, औपनिषदिक, पौराणिक आख्यानों से पढ़ कर हमें सुनाते और सम्बन्धित विषयों पर प्राच्य-प्रतीच्य विद्वानों के सांस्कृतिक-अध्ययन परक पुस्तकें हमारे सामने रख दिया करते कि इन्हें पढ़ो।...

कई एक किताबें; छोटी-छोटी, जैसाकि आप निकाला करते थे; इन विषयों पर भी निकालने का आपका प्रोग्राम था। इसके लिए मुकम्मल फाइलें बनी हुई थीं और गाहे-बगाहे

ऐसी चीजों की इसमें इंटी भी किया करते थे। जब स्वयं समय का अभाव पड़ने लगा, स्वास्थ्य से चूके और; और भी दूसरे कारणों से स्वयं न लिख पाते तो यह काम हम विद्यार्थियों के ज़िम्मे आता। मैंने खुद वर्षों तक दो फाइलें उनकी तैयार की थीं। एक “भारतीय ऋषियों के क्रान्तिकारी विचार” शीर्षक से और दूसरी का कोई शीर्षक न था। इसमें केवल उन उद्धरणों, सूक्तियों या ग्रन्थांशों को हवाले सहित लिख लिया जाता जिनकी चर्चा अभी-अभी ऊपर की गई है।

दूसरे कि पण्डितजी ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अपने संस्मरणों को इकट्ठा करके एक पुस्तक तैयार की थी। पद्यों में रचा यह संस्मरण अद्यापि के नाम से उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई। मुझे लगता है इस संस्मरण में उपर्युक्त परिचर्चा से सम्बन्धित विषयों, तथ्यों की पुष्टि हेतु भी पण्डितजी इस कहानी को ढूँढ रहे होंगे। क्योंकि अद्यापि की प्रविधि यही है। इसमें उन्होंने अपने संस्मरणों में आए तथ्यों की पुष्टि हेतु जगह-जगह ग्रन्थों या साक्ष्यों का हवाला दिया है।

इनसे अतिरिक्त भी कुछेक कारण यदि हो सकते हैं इस कहानी को ढूँढने में तो मेरा खयाल है पण्डितजी इसे इसकी भाषा के कारण भी ढूँढते होंगे। भारतीय भाषाओं और उपभाषाओं में कितने प्रतिशत संस्कृत शब्द और क्रियाएँ हैं, यह जानने और डाटा तैयार करने का बड़ा भारी शौक था उन्हें। यह शौक शोध का रूप लेकर हम विद्यार्थियों के सर भी उतरता और प्रायः विद्यार्थियों का यह गृहकार्य होता कि वह अपनी भाषा में संस्कृत के शब्दों और क्रियाओं को अलग-अलग लिखें। यह कहानी तत्सम मैथिली में लिखी होने के कारण हमारी शंका कुछ पुष्ट होती है।

पुनश्च स्वयं इस कहानी की भाषा-शैली भी एक कारण हो सकती है कि पण्डितजी इसे ढूँढते फिरे। दर-अस्ल, सरल संस्कृत गद्य के आप पैरोकार थे। कथा, उपन्यास आदि संस्कृत-गद्य की विधाओं के लिए आप सहज, सरल शैली को तलाशा करते और भारत की विविध भाषाओं में उपलब्ध कथा, कहानी, उपन्यास, यात्रादि वृत्तान्त परक गद्यग्रन्थों के चुनिंदा अंश संकलित किया करते और इनके अनुरूप संस्कृत-गद्य लेखन की प्रविधि आँका करते और सफलता का अनुमान किया करते। कुछेक किताबें उनकी इस प्रविधि परक प्रयोग का भी नतीजें हैं।

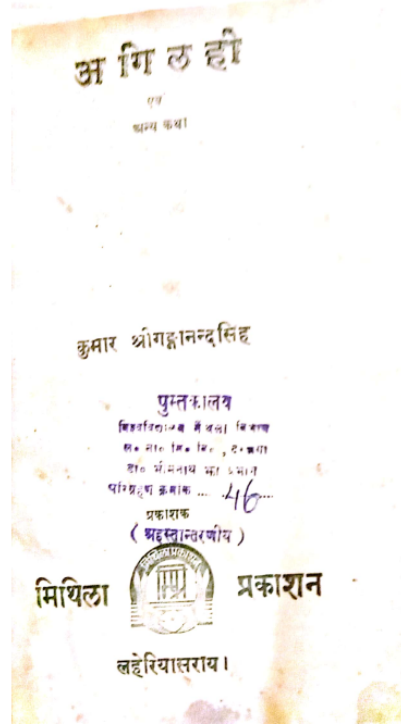
अस्तु; आज इस कहानी के उपलब्ध हो जाने से द्विवेदीजी की संस्कृत-सेवा का एक नवीन आयाम प्रस्तुत होता है। ढूँढने का वास्तविक उद्देश्य तो आप जानें, दो दशक तक जितना आपको जान और समझ सका उसकी बुनियाद पर यही कह सकता हूँ कि इस कहानी को इतनी व्यग्रता से ढूँढने का आशय यही कुछ हो सकता है, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

यहाँ एक बात और बतानी ज़रूरी जान पड़ती है और वह है कहानी की अपूर्णता। द्विवेदीजी कहा करते थे कि उन्होंने इसे मिथिला मिहिर नामक मैथिली पत्रिका में पढ़ा था। जबकि हमें जो कहानी प्राप्त हुई है वह एक मैथिली-कथा-संग्रह परक पुस्तक में समाहित है। यह पुस्तक कुमार गंगानन्द सिंह की सात मैथिली कहानियों का संग्रह है जो कि अगिलही शीर्षक से मिथिला-प्रकाशन, लहेरिया-सराय (दरभंगा) से दूसरे संस्करण के रूप में १९६६ ई० को प्रकाशित हुई। सम्पादक डॉ. शैलेन्द्र मोहन झा ने इसमें एक उपयोगी भूमिका लिखी है जिसमें कथाकार का परिचय और मैथिली-कहानियों में उनके योगदान पर विस्तार से प्रकाश पड़ा है। किन्तु सम्पादक ने यह नहीं बताया है कि यह कहानियाँ उन्होंने कहाँ से संकलित

पं० वासुदेव द्विवेदी और एक मैथिली कहानी 'अगिलही'

प्रताप कुमार मिश्र

कीं। सम्पादक ने ही यह भी बताया है कि अगिलही कहानी दर-अस्ल कुमार गंगानन्द सिंह जी के इसी नाम के अपूर्ण उपन्यास का अंश है।



अब हमें यह नहीं मालूम कि अगिलही उपन्यास बाबू गंगानन्द सिंह ने पूरा किया या नहीं। मेरा खयाल है कि यदि किया होता तो मैथिली-कहानी का मार्ग प्रशस्त करने वालों, उसके आदर्शों और भूमि का निर्माण करने वालों, प्रथम पंक्ति के मैथिली-कथा-लेखकों में अग्रणी इस लेखक की यह कृति अब तक प्रकाश में अवश्य आ गई होती। वैसे मैथिली-साहित्य के विज्ञ विद्वान् इस विषय पर प्रकाश डालेंगे, ऐसी हम आशा कर सकते हैं।

आशा है उस लोक में; इस कहानी की उपलब्धता और इसके उपर्युक्त विवेचन से पण्डितजी की आत्मा को तनिक ही सही; शान्ति प्राप्त होगी।

‘बालचन्द्रः’ बलचनमा का संस्कृत-अनुवाद

गुंजन गर्ग*

हिन्दी साहित्य में नागार्जुन, मैथिली में यात्री, लेखकों, मित्रों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं में नागा बाबा, संस्कृत में चाणक्य जैसे सम्मानसूचक नाम से प्रसिद्ध साहित्यकार का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। सादगी, सरलता, स्पष्टवादिता, गरीबों के प्रति सहानुभूति, सभी वर्गों के प्रति समान भाव, नारी के प्रति सम्मान उनकी विशेषता रही है। नागार्जुन के कथा साहित्य में रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, दुःखमोचन, वरुण के बेटे, नई पौध, कुम्भीपाक, हीरक जयन्ती, उग्रतारा, इमरतिया आदि प्रसिद्ध हैं। साथ ही अनेक मैथिल साहित्य और संस्कृत साहित्य भी हैं। हिन्दी साहित्य में कथाकार नागार्जुन के प्रसिद्ध उपन्यासों में बलचनमा उपन्यास प्रसिद्ध है। यह एक आंचलिक उपन्यास है, जिसमें लेखक ने समाज के निम्न वर्ग का चित्रण, उनकी अपनी समस्याओं, परिवेश और जनजीवन के साथ किया है। इसका संस्कृत अनुवाद संस्कृत विद्वान् डा. हृषीकेश झा के द्वारा ‘बालचन्द्रः’ ग्रन्थ के रूप में किया गया है। इसमें बालचन्द्र (हिन्दी कथा में बलचनमा) ने आत्मकथा के रूप में अपना जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। जैसे मात्र आम की चोरी करने पर बालचन्द्र के पिता की मालिक द्वारा मार-मारकर हत्या कर देना, मालकिन की अत्यन्त निम्नस्तरीय कृपणता, अत्याचार, सबूरी मंडल का भैंस पालन, सुखिया का भूत भगाना, बालचन्द्र का धान रोपना, बीमार बैल के प्रति सहानुभूति, बालचन्द्र की प्रथम रेलयात्रा, आश्रम की दिनचर्या, गांवों में जातिगत भेद की प्रचुरता, जमींदारों का निर्धन कृषकों पर किया अत्याचार, किसान आंदोलन, गांधीवादी, कांग्रेसवादी और साम्यवादी नीतियाँ, भ्रष्ट अधिकारी आदि के सजीव चित्र प्राप्त होते हैं। मिथिला के पारम्परिक संस्कृत आचार्य डॉ. हृषीकेश झा ने अपने सरल, हृदयग्राही दीर्घसमासों से मुक्त अनुवाद के द्वारा कथाकार नागार्जुन के भावों और निम्नवर्ग की पीड़ा को अक्षरशः प्रकट करने का प्रयास किया है। यहाँ देहाती जीवन के विविध पक्ष, बोली, उनके रीति रिवाज, खानपान, परिवेश, संस्कृति आदि की पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। यहाँ बालचन्द्र के पूर्ण व्यक्तित्व जैसे शोषण के विरुद्ध फरसा उठा लेना, जमींदार द्वारा बहिन के प्रति किये गये व्यवहार के आगे सिर न झुकाना, अपनी माँ के प्रति पूर्ण सम्मान, पूरी मेहनत से अपने काम को सम्पन्न करना, फूल बाबू की गिरफ्तारी पर रो पड़ना, लतीफ का हरा भरा खेत कटते देख रो पड़ना, अपनी फूल सी बच्ची मुंगिया के प्रति अपार प्रेम, किसान संघर्ष में साहसपूर्ण साथ निभाना आदि।

डॉ. हृषीकेश झा ने इस उपन्यास के अनुवाद को जीवन्त बनाने के लिए कई स्थानों पर बालचन्द्र के स्थान पर हिन्दी उपन्यास के मूल पात्र बलचनमा नाम का प्रयोग किया है-

तदैव दासी आह्वयति स्म-

“बलचनमाऽऽऽ! बलचनमाऽऽऽ कथं न प्रतिवदसि। जीवन् असि मृतो वा।” (पृ०-10)

“बलचनमा! धाव पुष्करिण्याः मत्स्याः पलायन्ते। (पृ०-16) कः बालचनः?” (पृ०-58)

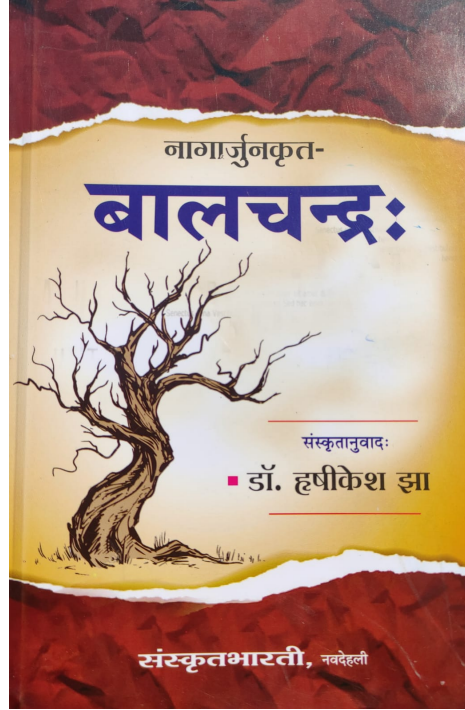
* सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, गंगापुर सिटी, सवाई माधोपुर, राजस्थान।

इसी प्रकार मनियार चाचा के लिए भी संस्कृत अनुवाद में ‘मनियार चाचा’ ज्यों का त्यों प्रयोग हुआ है-

“मनियारचाचा अपि बहि सूर्यातपं सेवमानः आसीत्।” (पृ०-102), “मनियारचाचा” (पृ०-103)

इसी प्रकार ‘धूम्रपान’ के लिए ‘बीडीपान’ शब्द का प्रयोग किया गया है - “बीडी-पानस्य।” (पृ०-50) “मत्कृते बीडीपानमेव शरणम् आसीत्।” (पृ०-94) भोजन के लिए ‘घण्टानाद’ हेतु ‘विज्ञओ’ नये शब्द का प्रयोग हुआ है - “विज्ञओ भवति।” (पृ०-68) ‘पोस्ट-कार्ड’ के लिए ‘समपत्रम्’ (पृ०-88) ‘रेलस्थानक’ के लिए ‘सकरी’ शब्द का प्रयोग - “किं नाम रेलस्थानकम् एतत्। अहम् उक्तवान् सकरी इति।” (पृ०-94), ‘सोशलिस्ट’ शब्द का ज्यो का त्यों प्रयोग प्राप्त होता है-

“यतो हि सः सम्प्रति सोशलिस्ट आसीत्।” (पृ०-106) “समाजवादिनां सोशलिस्टानां मते साधूनां महात्मनां विलपनात् वन्दनान् वा आङ्गलानां हृदयं न द्रवेत्।” (पृ०-106), “सत्यमेव कथयन्ति सोशलिस्टबान्धवः।” (पृ०-107)।



संस्कृत-अनुवाद में कहीं-कहीं स्वाभाविक टंकण अशुद्धि भी प्रतीत होती है। जैसे-
“यदा अहं ग्रमाद्बहिः आगतः उच्छिष्ट भक्षणस्य अवसरः एकवारं वारद्वयमेव वा लभः।” (पृ०-12)
“वयं तु निर्धानाः स्मः” (पृ०-48), “इत्यक्ते एतेषां दष्टिः कलुषिता एव भवति।” (पृ०-48), “कथंचित् दशग्रासान् विगीर्यं हस्तविरामं अमकरवम्” (पृ०-69)

संस्कृत-अनुवाद में एक स्थान पर कुछ अस्पष्टता भी प्रतीत होती है। फूलबाबू बालचन्द्र की स्वामिनी का भतीजा था लेकिन संस्कृतानुवाद में प्राप्त होता है-

“स्वामिन्याः पितुः त्रयो विवाहाः अभवन्। प्रथमा पत्नी पुत्रहीना जाता। द्वितीयायाः पुत्रः फूलबाबू आसीत्। तृतीयायाः गर्भात् मम स्वामिन्याः अवतारः अभूत्। सर्वाः एव सम्पदः फूलबाबू इत्यस्य पितुः अभवत्।” (पृ० 25-26)

उपन्यास के इस संस्कृत-अनुवाद के समग्र अध्ययन से यह कहा जा सकता है, कि अनुवादक ने लेखक नागार्जुन के भावों, भाषाशैली को पूर्ण अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। यहाँ लेखक बालचन्द्र के माध्यम से भारत के कृषकों को प्रगतिशील, परिश्रमी, साहसी, अन्याय तथा शोषण के आगे सिर न झुकाने वाला, चरित्रवान्, सरल हृदय बनने की प्रेरणा देता है। यहाँ कृषकों, श्रमिकों के तिरस्कार पूर्ण जीवन के अनेक दृश्य साक्षात् हृदय को झकझोर देते हैं जैसे- अमीरों की जूठन गरीबों की दावत, गालियों और मार खाने, दुत्कारने युक्त जीवन, बिना कागज दिये जमीन हथियाना, मेहनत के एवज में बहुत कम पारिश्रमिक देना आदि। साथ ही कनिष्ठ स्वामी के भवन का सुन्दर वर्णन किया गया है- “द्वाराणि शिंशपीयाः आसन् कपाटाश्च पनसकाष्ठनिर्मिताः।” (पृ०-13)। तथा धान्य की सुन्दरता का हृदयाकर्षक वर्णन प्राप्त होता है - “चक्षुस्तर्पिकोऽयं हरितिमा अनुभूतिमात्रैकगम्यः भवति न तु शब्दैः वर्णनीयः।” (पृ०-15) प्राप्त होता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इस प्रसिद्ध उपन्यास को संस्कृत-अनुवाद के माध्यम से संस्कृत-साहित्य का अंश बनाने के लिए डॉ० हृषीकेश झा साधुवाद के पात्र हैं। साथ ही संस्कृत में कुछ नया कार्य करने के लिए हमें प्रेरित करने के रूप में आदर्श है।

हिन्दी-उपन्यास 'बलचनमा' का संस्कृत-अनुवाद

आशुतोष पारीक*

समीक्ष्य पुस्तक

“पुस्तक – बालचन्द्रः, मूललेखकः - नागार्जुनः, संस्कृतानुवादकः - डॉ० हृषीकेश झा, प्रकाशकः - संस्कृतभारती, नवदेहली, प्रकाशनवर्षः - 2021 ई., पृष्ठसंख्या - 6,+132, पेपरबैक, मूल्य-100/-”

प्रख्यात कवि और कथाकार नागार्जुन का एक सशक्त मूलतः हिन्दी में लिखा आंचलिक उपन्यास है 'बलचनमा', जिसका संस्कृत-अनुवाद “बालचन्द्रः” इस शीर्षक के साथ डॉ. हृषीकेश झा द्वारा किया गया है। इसे संस्कृतभारती, नवदेहली ने इसी वर्ष 2021 में प्रकाशित किया है।

पुस्तक की समीक्षा के सन्दर्भ में सर्वप्रथम नागार्जुन और उनकी लेखनशैली से परिचित होना आवश्यक है। नागार्जुन प्रेमचन्द की परम्परा के उपन्यासकार हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में शुमार यह कृति मिथिला के ग्रामीण जीवन के उत्कट यथार्थ का प्रखर आस्वादन कराती है। यह आत्मकथा ज़मींदारों के शोषण और दमन के शिकार निम्नवर्ग के एक ग्रामीण की आपबीती को पाठकों के हृदयों तक पहुँचाती है। 'बलचनमा' जिसे संस्कृतानुवाद में 'बालचन्द्रः' कहकर सम्बोधित किया गया है, वास्तव में अनपढ़, अधिकारहीन, वंचित, शोषित और निरीह-सा प्राणी है, जिसे स्वयं के प्राणों पर भी विश्वास करने में एक अरसा लग गया। अपने परिवार की दयनीय स्थिति के सामने झुकता ही गया और न जाने कब उसने इसी मृतवत् जीवन को ही अपनी नियति मान लिया। कहा जाता है कि भगवान् हर एक को उसके जीवन में एक ऐसा पल ज़रूर देता है जब वह अपने वास्तविक ध्येय को जान सके। “बलचनमा” ने उस पल की महत्ता को समझा और धीरे-धीरे ही सही किन्तु उसके बाद अपने जैसे न जाने कितनों के जीवन को बचाने के लिए किसान आन्दोलन में कूद पड़ा।

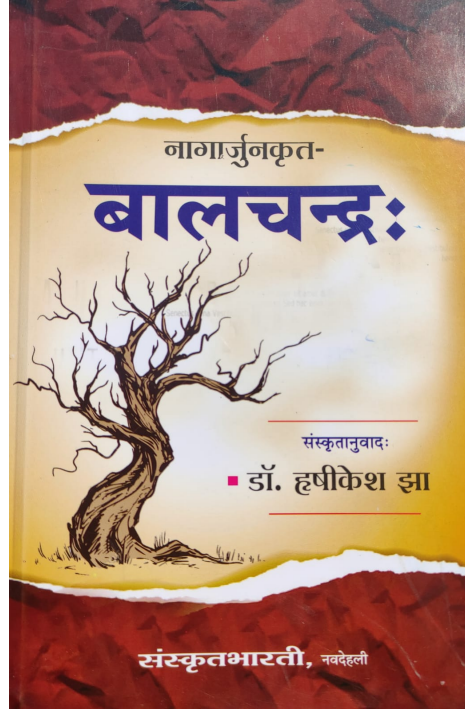
'बलचनमा' को 'बालचन्द्रः' के रूप में संस्कृत भाषा के माध्यम से पढ़ना संस्कृतानुरागियों के लिए निश्चय ही चित्ताकर्षक होगा, जिसके लिए डॉ. हृषीकेश झा का यह प्रयास संस्कृतपाठकों एवं भावी संस्कृतलेखकों व अनुवादकों के लिए प्रेरणास्पद है।

उपन्यास का प्रारम्भ ही हृदयविदारक उस घटना से होता है जिसमें केवल दो आम चुराने के लिए बालचन्द्र के पिता को एक खम्भे से बांधकर तड़पा-तड़पाकर मार दिया जाता है। इसी घटना का वर्णन करते हुए लेखक एक छोटे से 12 साल के बच्चे बालचन्द्र की आपबीती बताते हुए लिखते हैं-

“मम जीवनस्य सर्वप्रथमा घटना इयमेव यद् भूस्वामिनो गृहे एकस्मिन् स्तम्भे बद्धः मम पिता ताडितः आसीत्। तस्य जघने, पृष्ठे बाहौ च दण्डाघातस्य चिह्नानि स्पष्टानि आसन्।

* सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, सम्राट् पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

शरीरे आघातकारणात् स्थाने-स्थाने चर्म अपि अभिद्यत । अश्रुधाराभिः कपोलौ वक्षःस्थलं च क्लिन्नम् अभूत् । मुखाकृतिः कृष्णवर्णा, ओष्ठौ च शुष्कौ आस्ताम् । किञ्चिद् दूरे एकस्मिन् काष्ठासने यमराज इव मध्यमः स्वामी उपविष्टः आसीत् ।... मम पितामही कम्पमानाभ्यां हस्ताभ्यां स्वामिनः पादौ धृतवती । व्यग्रताधिक्यात् तस्याः मुखात् केवलम् एतावन्मात्रं निरगच्छद् यद् अस्य प्राणान्तः भविष्यति । क्षम्यतां स्वामिन्, क्षम्यताम् । मुच्यताम् अयं निरीहः ।... भयवशात् मम अनुजायाः तु वागेव अवरुद्धा अभूत् ।” (पृ०-1)



अपनी नियति को स्वीकार करते हुए पीड़ित और शोषित बालचन्द्र के ये शब्द पाठक के हृदय को कचोटने वाले हैं—

"ईश्वरस्तु कल्याणं विदधाति एव । चतुर्णां प्राणिनां परिवारं विहाय मम पिता मृतः एतदपि ईश्वरस्य सुकृत्यमेव । बुभुक्षया पीडिता माता पितामही च आम्रबीजानां चूर्णं खादति एतदपि ईश्वरस्य सुकृत्यमेव । एते स्वामिनः घृतदधिव्यंजनादिभिः साकं शाल्योदनं भुञ्जन्ते, एषापि ईश्वरस्यैव लीला वर्तते ।” (पृ०-10)

अपने गाँव के भूस्वामियों की कुदृष्टि का वर्णन करते हुए बालचन्द्र के भावों को उकेरते हुए लेखक लिखते हैं—

“आस्माकीनो ग्रामः भूस्वामिनां ग्रामः । स्वामिगृहाणां यूनां वृद्धानां च नेत्रयोः कुदृष्टि-रेवासीत् सततम् । इत्युक्ते एतेषां दृष्टिः क्लृप्तिता एव भवति । यदि कस्यचिद् गृहे नववधूः आगच्छेत् तर्हि एतेषां दुर्जनानां कुदृष्टिः सर्वदा तामेव नवागतां वधूम् अन्विष्यति । भ्रमरवत् ताम् अभितः भ्रमन्तीति मन्यस्व । यावदेते कटाक्षेण नवागतां वधूम् न पश्येयुः तावदेतेषां शा-

न्तिर्न भवति । कदाचित् एवं भवति याम् अवलोकितुं पिता स्पृहयति तामेव पुत्रोऽपि । तेषु दिनेषु तेषामेव भूस्वामिनां वर्चस्वम् आसीत् । तेषां विरोधे अंगुलीनिर्देशोऽपि दुष्करः आसीत् । कस्यापि नीचजातीयस्य प्रतिष्ठा अक्षुण्णा न स्यात् तथैव एषां प्रयत्नः ।” (पृ० 48)

किसानों की प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक और मानसिक दुर्गति का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं—

“दुर्दिनम् अपीडयत्तराम्, चिन्ता प्राणघातिनी जाता, ऋणम् आदाय क्षेत्रे उप्तेऽपि धान्यानि शुष्कानि जातानि । वृषभं विक्रीय धनं राज्ञे महाजनाय च दत्तम्, तथापि ऋणशेषः अवर्तत एव । भूस्वामिनाम् अत्याचारः विरुध्यताम्, कृषकाः जागरूकाः भवन्तु”.... (पृ० 116)

बालचन्द्र के अन्तिम क्षणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

“तस्मिन् क्षणे मृत्युं सम्मुखे नृत्यन्तं मे मनः चक्रवत् भ्रमति स्म । पुत्री, पत्नी, माता, इक्षुः, कुटीरे सुप्तौ स्वयंसेवकौ, ययोः मुखे प्रायः वस्त्रखण्डं निवेशितम् आसीत्, सर्वं स्मृतिपथम् आयातम् । “श्रमिकाः एव भोक्तारः”, “धरित्री कस्य यः कर्षति तस्य”, “कृषकाणां स्वातन्त्र्यम् आकाशात् नैव पतति, कर्षितात् क्षेत्रात् एव स्वातन्त्र्यम् उद्गच्छति” इत्यादयः घोषणाः कर्णयोः गुंजन्ति स्म । वृद्धः शिंशापाशवृक्षः नतः सन् अधुनापि मम शिरःप्रदेशं चुम्बन्नस्ति इव । अस्मिन्नेव क्षणे आश्रमस्य पश्चात्तनभागात् कश्चन जनः धावन् आगतः, तस्य हस्ते नेपालदेशीयः खड्गः आसीत् । अहं बद्धः आसम् । सर्वाणि अंगानि जाले निबद्धानि आसन् । अहं च दन्तैः एकस्य मणिबन्धप्रकोष्ठं धृतवान् आसम् । अस्यां स्थितौ एकः मल्लः मम शिरसि दाढ्यपूर्वकं दण्डं प्राहरत् वारद्वयम् । अचेतनः सन् अहं भूमौ लुठितः आसम् ।” (पृ० 131-132)

सम्पूर्ण उपन्यास वेदना, दमन, शोषण, भूखमरी से आप्लावित होने के बावजूद एक रोशनी की राह दिखाता है । “बालचन्द्र” को एक पाठक स्वयं में अनुभूत कर सके, इसकी अपार शक्ति इस उपन्यास में है । ग्रामीण जीवन से किसी भी रूप में जुड़े व्यक्ति के लिए इसे समझ पाना और उस असहनीय पीड़ा को अनुभूत करना कठिन नहीं होगा । संस्कृत भाषा के माध्यम से इस आंचलिक लोककथा के द्वारा भयोत्पादक त्रासदी और उसके विरुद्ध खड़े होने की शक्ति प्रदान करता है यह उपन्यास ।

भाषा और शब्दप्रयोग की यदि बात की जाए तो उपन्यासकार ने मिथिला के स्थानीय ग्रामीण शब्दों का बेजोड़ प्रयोग किया है लेकिन जब भाषानुवाद किया जाता है तो इस प्रकार के शब्दों का सटीक अनुवाद कर पाना दुरुह होता है । किसी अनूदित पुस्तक की समीक्षा के लिए आवश्यक होता है कि उसके मूल स्वरूप को भी जाना जाए । जिन पाठकों ने इस उपन्यास के मूल हिन्दी स्वरूप को पढ़ा होगा, उन्होंने यह निश्चित रूप से पाया होगा कि इसके स्थानीय ग्रामीण शब्दों ने ज़मींदारों की क्रूरता, दुराचार, घमण्डी स्वभाव और स्वयं को ईश्वर मानने के दम्भ को बखूबी प्रदर्शित किया है ।

संस्कृत-भाषा के माध्यम से यद्यपि भावात्मक सटीक विश्लेषण करने का अप्रतिम प्रयास किया गया है तथापि इन दुर्भावों को प्रदर्शित करने में संस्कृत कुछ दयालु-सी प्रतीत होती है । एक पाठक जितनी घृणा इन ज़मींदारों के प्रति हिन्दी के स्थानीय शब्दों के माध्यम से कर पाता है, उतनी इस संस्कृतानुवाद के माध्यम से शायद सम्भव नहीं । और यही कारण है कि संस्कृतानुवाद उपन्यास की कथा को तो पूरी तरह से प्रदर्शित करता है किन्तु उसके दमनकारी क्रूर व्यक्तित्व को अंशतः ही । यही कारण है कि संस्कृतानुवाद में भी डॉ० हृषीकेश झा ने अनेक अंग्रेज़ी व अन्य भाषा के शब्दों को बिना अनुवाद के ही प्रयोग किया

है जैसे- बच्चू, मिनिस्टर, कलस्टर, मजिस्टर, मनिस्टर, ट्रेनयानम्, रामखेलावनः, ज़िन्दाबाद, कामरेड्, कैम्पकारागारे, मनखप, सोशलिस्टबन्धवः, धन्नोचाची, पचकौड़ीबाबूमहोदयस्य, सुगनी, रेलस्थानकम्, विझओ, चुन्नी, चित्रवर्णा छागी, चायपानानन्दम्, लिथो ।

उपन्यास के दादी, माँ, मालकिन, रेवनी, बालचन्द्र, राधाबाबू, फूलबाबू, मोहनबाबू, डॉ० रहमान, धन्नोचाची, सुगनी के साथ आए अनेक पात्रों से जुड़ी विविध घटनाओं का उल्लेख किया गया है किन्तु लेखक का यह वैशिष्ट्य है कि किसी भी पल यह उपन्यास अपने मूल कथानक से नहीं भटकता है ।

यह अनूदित रचना और हिन्दी मूलकथा को समान रूप से ही पाठकों के समक्ष रखा गया है । मूल हिन्दी और संस्कृतानुवाद को यदि साथ-साथ पढ़ा जाए तो प्रायः भावात्मक दृष्टिकोण से अक्षरशः अनुवाद करने का सार्थक प्रयास किया गया है जिसके लिए डॉ० हृषीकेश झा साधुवाद के पात्र हैं । पुस्तक में कुछ स्थानों पर टंकण अशुद्धियाँ अवश्य हैं जिसे आगामी संस्करण में सुधारा जा सकता है ।

संस्कृतानुवाद की भूमिका में अनुवादक डॉ० झा ने अनुवाद की दुष्करता का उल्लेख करते हुए लिखा है-

“अनुवादकार्ये मूलकारस्य भावसंरक्षणं, विशिष्य देश्यशब्दानां भावस्फोरणक्रमे श्लेषालंकारस्थलेषु च कियत् कठिनम् इति अनुवादकाः एव जानीयुः ।” (भूमिका, पृ० 2) एक अनुवादक जहाँ मूललेखक के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए अपने प्रयासों की सार्थकता हेतु संघर्ष करता है वहीं एक समीक्षक उन दोनों (मूल और अनुवाद) की गम्भीरता, सहजता, मौलिकता, सहभाव और सटीकता को जानने के लिए प्रयत्नशील होता है ।

निश्चय ही एक समीक्षक के रूप में इस पुस्तक को जानने का जो अवसर है, वह एक पाठक के रूप में 'बालचन्द्र' के साथ यात्रा करने के आनन्द से बहुत कम है । एक पाठक इस उपन्यास को पढ़ते हुए बालचन्द्र के साथ ही दुःख झेलता है, दुःख से मुक्ति के लिए छटपटाता है और अपने जीवन के लक्ष्य को समझता है और उस लक्ष्य के लिए अपने जीवन को आहूत कर देता है और इसमें सबसे बड़े सन्तोष का विषय यह है कि यह मूल उपन्यास के साथ-साथ उसके संस्कृतानुवाद में भी होता है । अतः मेरा विश्वास है कि संस्कृतानुवागियों के लिए स्वातन्त्र्यप्राप्ति से पूर्व ग्रामीण जीवन की त्रासदियों का अनुभव करने और उस अनुभव से उत्पन्न सामर्थ्य से संघर्ष के कुछ कदम उठाने लिए यह उपन्यास प्रत्येक पाठक को पूर्णतः सशक्त बनाने की क्षमता रखता है । संस्कृतानुवाद के इस प्रकार के अधिक से अधिक प्रयासों की वर्तमान युग में आवश्यकता है । शुभास्ते पन्थानः सन्तु.... आपके पथ शुभ हों... इत्यलम्...

वर्ष 2021 ई० में प्रत्नकीर्ति द्वारा आयोजित ज्ञान-विज्ञान परक उल्लेखनीय कार्यक्रम : एक संक्षिप्त विवरण

विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी*

अपने स्थापना-वर्ष 2004 ई० से ही संस्थान विविध शोध-अनुसन्धान, सांस्कृतिक तथा सामाजिक कार्यक्रमों का आयोजन करता आ रहा है और प्रत्नकीर्ति के रूप में पुनर्गठित होने के बाद इन कार्यक्रमों में और भी विविधता और सार्वभौम उपयोगिता का संचार हो आया। वर्ष 2021 ई० में आयोजित ऐसे कुछ कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रत्नकीर्ति (षाण्मासिक पीयर रिव्यूज जर्नल) के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जाता है-

1 ऑनलाइन कथा-पाठ

फरवरी-2021 ई० को संस्थान ने सर्वप्रथम एक ऑन-लाइन 'कथा-पाठ' कार्यक्रम का आयोजन किया। इस कार्यक्रम में विश्वविश्रुत मासिक उर्दू-पत्रिका 'मखज़न' (लाहौर) के मार्च-1927 ई० के अंक में प्रकाशित एक अज्ञात एवं अल्पश्रुत उर्दू-कथा का संस्थान के वरिष्ठ सदस्य श्वेतकेतु द्वारा संस्कृत-अनूदित-पाठ प्रस्तुत किया गया। यह कार्यक्रम संस्थान के शोध-विभाग द्वारा प्रवर्तित 'अनूदित-साहित्य-शृंखला' के अन्तर्गत था और इस तरह की कथाओं या तत्परक साहित्य को भाषान्तर से संस्कृत में अनूदित करने के प्रयोजन, प्रविधि, प्रसार आदि पर अन्यान्य विद्वानों के विचार जानने हेतु संस्थान के विविध सदस्यों को आमन्त्रित किया गया था। कार्यक्रम में डॉ० सुनीलकुमार पाण्डेय (केरल), डॉ० राजीव त्रिगर्ती (हिमाचल प्रदेश), डॉ० शैख अब्दुल् गनी (तेलंगाना), डॉ० लालाशंकर गयावाल (राजस्थान), डॉ० रामप्रताप मिश्र (मरु), डॉ० राजेश सरकार (काशी) आदि सदस्यों ने कार्यक्रम के उपर्युक्त प्रयोजनों पर अपने-अपने विचार रखे और परियोजना के लक्ष्यों के अनुरूप इस तरह के साहित्य का संस्कृत में अनुवाद-परम्परा को ज़ारी रखने की सलाह दी। डॉ० सुनील पाण्डेय ने विश्वविश्रुत तेलुगु-कथा 'कन्यादानमु' को संस्कृत में लाने की अपील की।

2 प्रो० प्रभुनाथ-द्विवेदी श्रद्धांजलि-सन्ध्या

एक ओर यह वर्ष संस्थान की उपलब्धियों का वर्ष रहा तो एक ओर यह संस्थान के लिए बड़ा ही दुःखद वर्ष भी सिद्ध हुआ। वर्षान्त में संस्थान के 'शिक्षा एवं प्रसार विभाग' के मार्गदर्शक-मण्डल के वरिष्ठ सदस्य प्रो० प्रभुनाथ द्विवेदी जी के निधन ने संस्थान को एक तरह से असहाय कर दिया। प्रो० द्विवेदी संस्थान के स्थापना-वर्ष से ही इसके उद्देश्यों और

* संयुक्त-सचिव; शोध, प्रत्नकीर्ति प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी

लक्ष्यों से प्रभावित अहर्निश इसकी उन्नति में तत्पर रहा करते थे। सम्बन्धित विभाग के संयुक्त-सचिव डॉ० रामप्रताप मिश्र के प्रस्ताव पर 04.12.2021 को संस्थान ने जूम-मीटिंग द्वारा एक ऑन-लाइन 'श्रद्धांजलि-सन्ध्या' का आयोजन किया जिसमें प्रो० द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर वक्तव्य हेतु प्रो० गयाराम पाण्डेय (वाराणसी), प्रो० मनुलता शर्मा (वाराणसी) तथा प्रो० सन्तोषकुमार शुक्ल (नई-दिल्ली) को आमन्त्रित किया गया।

कार्यक्रम में प्रो० द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के संस्मर्ता आचार्यों में जे० एन० यू० (नई दिल्ली) के संस्कृत-संकायाध्यक्ष प्रो० सन्तोष कुमार शुक्ल ने कहा कि वे सरल व सहज व्यक्तित्व के धनी थे। संस्कृत के प्रति उनका अगाध समर्पण था। आजीवन संस्कृत की सेवा के प्रति समर्पित रहे। विज्ञान के विद्यार्थी होते हुये भी उनका संस्कृत के प्रति अगाध समर्पण का होना प्रेरणादायक है। काशी में संस्कृत से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों में अनिवार्य रूप से उनकी उपस्थिति और सहयोग अनुकरणीय है। वे विद्यार्थियों के लिये सम्बल थे और हम सबको सदैव प्रेरित भी करते रहते थे। उनका जाना हम सबके जीवन ही नहीं अपितु संस्कृत-जगत् के लिये अपूरणीय क्षति है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की पूर्व विभागाध्यक्षा, संस्कृत कवयित्री प्रो० मनुलता शर्मा ने प्रो० द्विवेदी को काशी ही नहीं अपितु समस्त भारत में विराजमान आचार्य परम्परा का प्रतिनिधि एवं उच्चकोटि के विद्वानों में वरेण्य बताया। प्रो० द्विवेदी के कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि- उन्होंने पठन-पाठन, एवं शास्त्रान्वेषण में तल्लीन रहते हुये भी अनेक कृतियों की रचना की। वे एक साथ चिन्तक, अन्वेषक और अनुसन्धाता रहे। उन्होंने बहुतों को साहित्यान्वेषण के लिये आजीवन प्रेरित किया। प्रो० द्विवेदी गतिशील आचार्यों की पीढ़ी के निदर्शन रहे। वे न केवल ज्ञानगाम्भीर्य सम्पन्न अपितु मानवीय भावनाओं से परिपूरित थे।

मुख्य संस्मर्ता प्रो० गयाराम पाण्डेय (पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत, म० गां० का० विद्यापीठ) ने प्रो० द्विवेदी के साथ बिताए अपने चार से अधिक दशकों की स्मृतियों को साझा किया। बताया- कि वे एक आदर्श शिक्षक ही नहीं बल्कि एक सफल लेखक, सिद्धहस्त कवि, समालोचक, मित्रों के मित्र व सम्बन्धों के निर्वहनकर्ता और कर्तव्यनिष्ठा की प्रतिमूर्ति थे। प्रो० पाण्डेय ने यह भी स्मरण दिलाया कि म० गां० का० विद्यापीठ का संस्कृत-विभाग प्रो० द्विवेदी के अवदान को कभी भी भुला नहीं सकता। कहा कि प्रभुनाथ जी ने सरस्वती-साधना को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और उसमें निरन्तर रत रहे। प्रो० पाण्डेय ने उनके व्यक्तित्व पर विस्तार में अपनी बात रखते हुये उन्हें अत्यन्त अनुशासित और समय का सदुपयोग करने वाला आचार्य, अपने दायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करने वाला विश्वविद्यालय-सहकर्मी बताया।

इस महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे राष्ट्रिय तथा अन्ताराष्ट्रिय संस्कृत-जगत् के विश्रुत आचार्य, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (नई दिल्ली) के पूर्व कुलपति प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी ने अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो० प्रभुनाथ द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालते हुये उन्हें महान् संस्कृतसेवी बतलाया। कहा कि उनके मन, वचन एवं कर्म में एकरूपता थी। वे निष्कलुष चित्त तथा गुणग्राही व्यक्ति थे। प्रो० त्रिपाठी ने बतलाया कि उन्होंने अनेक प्राचीन, दुर्लभ एवं जटिल ग्रन्थों का सम्पादन किया। प्रो० द्विवेदी संस्कृत-जगत् के लिये मानदण्ड स्वरूप हैं। संस्कृत की परम्परा में उन्होंने तार्किकता एवं वैज्ञानिकता के

सडनुवड डरु डल दलरुड आरुड सलरुडत डरु सुथडरुडरुडरुड डे सलथ डी उनुडने सुवसुथ तरुड करुड अलवलडुड डी ररुखल । सकरुडरुडतुड सुओ करुड डरुडुडड से सलरुडत डी सडसुथरुडरुडरुड करुड नलरुडरुडरुड करुडने डी उनडे अडूरुव एवड अनूठी कुषडतल थी । उनके असडड डले ऑरुड डरुड उनुडने दुःख वुडकुत करुडल ।

करुडरुडड डे डुरुड ररुडसडडरुडरी दुवलडेदी, डुरुड सदलशलव दुवलडेदी, डरुड वलवेक डरुडडेड, डरुड अरवलनुदुकुडरुड तुरलडरुठी, डरुड डनुदुरुकरुडनुत शुकुल, संसुथरुडन के 50 से अधलक सदसुथरुडरुड सडेत 70 से अधलक शुरुडतल उडसुथलत थे ।

3 डुरलनुकीरुतल-सुथरुडनल-डरुडरुडसव-2021

वलदलत डु करुड इस संसुथरुडन डी सुथरुडनल 27-दलसडुडरुड, 2004 ई० कुडु डुआ थल अतः वरुडरुडनुत डे इस संसुथरुडन डे 'सुथरुडनल-डरुडरुडसव-2021' डनरुडने करुड नलशुडरुड करुडल । इसके अनतुरुडत वलवलध डुरकरुड के शुरुडध-अनुसनुथरुडन डरुडक, शुरुडकुषणलक, सलसुकुरुडतलक तथल सलडरुडऑलक करुडरुडरुडड आरुडऑऑत कुलए ऑरुड । इनकरुड संकुषलत वलवरण नलडुडरुडवतु डे-

3.1 डुरुड वलसुडेवलदुवलडेदी-शरुडसुरुडरी सुडरुडरुडक 'डरुडल-सलरुडतुड सनुथुडरुड'

20.12.2021 कुडु संसुथरुडन डे अडने संसुथरुडनडक-संरकुषक डरुडणुडत वलसुडेवलदुवलडेदी शरुडसुरुडरी कुडी सुडुरुडतल डे 'डरुडल-सलरुडतुड-सनुथुडरुड' करुड आरुडऑन कुडल, ऑलसडे डेश के वलवलध डुररुडनुतुड से डकुडुडुड ने डरुड ऑललरुड आरुड ररुडरुडुरेड, डुररुडरुडवरण-संरकुषण, ऑन-ऑरुडरुडरुडकतल, डलतुरुडतल, डकुडन, डेवलसुतुडतल, आदल वलषरुडुड डुर संसुकुरुडत एवड डलनुदुडी डे डरुड डरुडरुडरुड कवलतलरुडरुडरुड कुडल डुरसुतुडतल कुडल ऑरुड । नुडनलरुडरुडरुडरुड के डुरतलडरुड संवधुरुडन के ललरुडे आरुडऑऑत इस ऑनलरुडलइन करुडरुडरुडड डे डकुडुडुड के अडलडरुडरुडरुड डी उडसुथलत ररुडे ।

लगडरुड डरुड डुड डे अधलक डले इस करुडरुडरुडड कुडी अधुडकुषतल वलशुरुडत डरुडल-संसुकुरुडत-सलरुडतुडवलदु, कुवल आरुड आलुओक डुरुड सडुडदरुडनुद डलशुरुड ने कुडल । आधुडकुषलड उदुडुडधन डे डुरुड डलशुरुड ने डकुडुडुड करुड डनुडडल डडरुडते डुरुड करुड शलकुषलडुरद डरुडते डडरुडई । संसुकुरुडत डे डरुडल-सलरुडतुड के नलरुडरुडरुडन सडुडनुथुड डुरवलधलरुडुड डुर डुरुड डलशुरुड करुड वकुतवुड नलशुडलत रुरुड से एक संऑुरुडरुडनीड दसुतलवेऑ डे । करुडरुडरुडड डे डरुडल-सलरुडतुड-लेखक डेश के तडरुडरुड कुवल आरुड शुरुडतल उडसुथलत ररुडे । करुडरुडरुडड करुड संऑुडऑन संऑुडकुत-सकलव; शलकुषल एवड डुरसरुडरुड वलडरुडरुड, संकललन डरुडरुड अननुतडरुडणल तुरलवेदी (देहररुडदुडन) तथल धनुडवलद ऑरुडन संसुथरुडन के सकलव ने कुडल ।

3.2 डुरुड शलवऑी उडरुडधुडरुड-सुडरुडरुडक 'सडसुथरुडरुडरुडतुड-डरुडक-कुवलऑुडरुडरुडरुड'

22.12.2021 कुडु संसुकुरुडत-कुवल-ऑुडरुडरुडरुडरुडरुड आरुड वलशुरुड करुड 'सडसुथरुडरुडरुडतुड-डरुडक-कुवलऑुडरुडरुडरुडरुड' कुडी वलरुडलतल कुडु धुडरुडन डे ररुखते डुरुड संसुथरुडन डे वलशुरुडत संसुकुरुडत-कुवल आकलरुडरुड डुरुड शलवऑी उडरुडधुडरुड (करुडशी) कुडी सुडुरुडतल डे 'सडसुथरुडरुडरुडतुड डरुडरुडरुडरुडरुडरुडरुड' करुड आरुडऑन कुडल । इस कुवलसनुथुडरुडरुड डे तु संसुथरुडन डे डेश के डूरुधनुड तीन संसुकुरुडत-कुवलरुडरुडरुडरुड से सडसुथरुड-डरुडकुतल आडनुतुरलत कुडल, ऑु कुडल नलडुडरुडवतु डे-

- 1- पद्मश्री प्रो० रमाकान्त शुक्ल (दिल्ली)
“नव्यशोभाधरा भाति वाराणसी”
- 2- प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र (शिमला)
“उत्पाटयामास गजो निपानम्”
“हा हन्त सूर्योऽस्तमितः प्रभाते”
“सुधापि वाणीव विषं कदापि”
- 3- प्रो० हरदत्त शर्मा (प्रयागराज)
“संशोभते संगमः”

नियत समय पर गुजरात, उड़ीसा, दिल्ली, उत्तराखण्ड, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के लगभग 10 कवियों ने उपर्युक्त समस्या-परक पंक्तियों के आधार पर स्वरचित समस्या-पूर्ति परक कविताएँ प्रस्तुत कीं, जिनमें उल्लेखनीय कवियों के नाम इस प्रकार हैं- प्रो० रहसबिहारी द्विवेदी (जबलपुर) जिन्होंने ‘उत्पाटयामास गजो निपानम्’ तथा ‘नव्यशोभाधरा’.... को कविता का विषय बनाया था। प्रो० शिवराम शर्मा (काशी) ने ‘नव्यशोभाधरा’... पंक्ति के भावसादृश्य के आधार पर इसी विषय से सम्बन्धित कविताएँ प्रस्तुत कीं। प्रो० सदाशिव कुमार द्विवेदी (काशी) ने ‘नव्यशोभाधरा’... को विषय बनाते हुए बड़ी ललित कविताएँ प्रस्तुत कीं जो कि श्रोताओं में काफी सराही गईं। इसी समस्या-पंक्ति को विषय बना कर डॉ० होंटा (उड़ीसा) तथा डॉ० शशिकान्त तिवारी ‘शशिधर’ (हरियाणा) ने भी अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं।

काव्य-सन्ध्या की अध्यक्षता कर रहे प्रो० हरदत्त शर्मा (इलाहाबाद) ने ‘समस्या-पूर्ति-परक कविताओं की निर्मिति, विधान एवं प्रविधि’ (जिसके लिए संस्थान ने उनसे विशेष अनुरोध किया था) विषय पर बड़ा ही सारगर्भित वक्तव्य दिया जो कि संग्रहणीय दस्तावेज़ है। प्रो० शर्मा ने उद्बोधन के ही बीच स्वयं द्वारा पूरित ‘संशोभते संगमः’ परक कविताएँ भी पढ़ीं। इस कार्यक्रम में ‘नव्यशोभाधरा भाति वाराणसी’ समस्या-पंक्ति को कवियों ने अपनी कविता का विषय अधिक बनाया। कुल मिला कर कहें तो आदरणीय प्रधानमन्त्री की काशी इस काव्य-सन्ध्या में छाई रही। 50-60 श्रोताओं की उपस्थिति में दो घंटे से अधिक चले इस कार्यक्रम का संयोजन संयुक्त-सचिव शिक्षा एवं प्रसार, संचालन डॉ० शरदिन्दु कुमार त्रिपाठी (वाराणसी) तथा धन्यवादज्ञापन संस्थान के सचिव ने किया।

3.3 आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व परिचर्चा

23/12/21 गुरुवार सायंकाल 7:00 बजे संस्कृत-हिन्दी के प्रसिद्ध कवि आचार्य जानकीवल्लभ-शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व परक परिचर्चा का ऑनलाइन आयोजन किया गया। कार्यक्रम का संयोजन संस्थान के शोध-विभाग द्वारा और संचालन सं० सचिव (शोध) द्वारा किया गया।

कार्यक्रम के तीन चर्चाकारों डॉ० रामविनय सिंह (देहरादून), डॉ० संजय पंकज (बिहार) एवं शेफाली शर्मा (राजस्थान) के द्वारा शास्त्रीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समग्र रूप से पारस्परिक चर्चा की गयी। उल्लेखनीय है कि तीनों ही विद्वान् चर्चाकार शास्त्रीजी के शिष्य रहे हैं।

करुडु के करुडु डें शरुडुडी डी की संसुकुत-कृतलडुडुं करुडु उलुलेख करुडु हुए डरुं ररडवलनडु सलंहे ने कवल की उस करुडुनुतल कुु सरडने रखा डलसे कवल ने कुषलण हुुती सडकललीन सलहलतुडुक रकुडल, सडडु और संवेदनल कुु डुररडु: तीन दशक डहले करुडुहलत कुरलडु थल। डरुं सलंहे ने कलल-उनकल ऐकलकीडन सुडन कल ऐकलकीडन थल। वे अरुडुडु डलदेव उडलधुडुडु के शलषुडु थे।

दुवलतुडु करुडुडुकर डरुं संडुडु डंकडु ने शरुडुडी डी की हलनुदी-कृतलडुडुं के डीडु कुु उनकी संसुकुत-कृतलडुडुं डें दुंडुते हुए कलल कल उनकल कलवुडु-संगुरह 'कलकली' कुु कल संसुकुत-नवगीत की डुरथडु रकुडुनल है, कवल की हलनुदी-रकुडुनलरुं कल डुरररंडुडुक उतुस है। डलद डें उनुहुुनें संसुकुत ऐवं हलनुदी दुुनुं सलहलतुडु कुु सडुदुधु कुरलडु। डरुं डंकडु ने 'अरुडुडुडु-रकुडुनलवली' के नलडु से शरुडुडी डी कल सडुगुर कलवुडु-संगुरह अरुडु तक डी डुरकलशलत न हुुने डुर दुख डुरकडु करुडुते कलल कल शरुडुडी डी के इस करुडु-अडुडुलषलत संगुरह के डुरकलशन डुर हडुं संनदुधु हुुनल कललहलडुे।

तीसरे करुडुडुकर डरुं शेषलली शरुडुडु ने शरुडुडी डी से सडुडुडुडुडु संसुडुरणुं और अडुने शुुध के डीक तलरतडुडुडुतल डुडुठलते हुए उनके कृतलतुव डुल डुरकलश डललल। डरुं शरुडुडु ने कलल कल अरुडुडुडु शरुडुडी कल सलहलतुडु अगलध सडुदुधु है डलसकल अवगलहन कठलन है। वलह सरल-सहडु सुुडुडु वुडुवलर के धनी थे। उनकुु डलतनी डलर डुदुडु अरुडुगु हर डलर नवीनतल की अनुडुडुत हुुगी। वे डुहलं डुरलर की संसुकुतलक डुरडुडुरल कुु लेकर कललते हैं वही नवीन वलकलरुं के डुरतल डी अनुरलगी रहे।

इस डुरकलर तीनुं वलदुडुनुं की डुरलसुडुरलक करुडुडु से शुरुतलरुं कुु शरुडुडी डी के वलषुडु डें डुररुडुडु डलनकलरी डुरलडु हुडुी। डुरलकुरुडु के उडुरलनुत डुरशुडुरडुर हडुं शुरुतलगण ने डुरशु के डलधुडुडु से शरुडुडी डी के सलहलतुडु डुर वलकलर-वलडुशु कुरलडु। करुडुडुकर के सडुडुडुन डुर संसुथलन के सकलव डरुं डुरतलडु डलशुरु ने सडुडी कल धनुडुवलद डुडुडुन कुरलडु और डरुं शडुडुनुलथ तलवलरी के डुरलर-ऐकतल गीत से करुडुडुकर कल सडुडुडुन हुअल। अरुडु के करुडुडुकर डें डरुं अननुतडुगुण तुरलवेदी (देहरलदुन), डुरुु शुकुदेव डुुई (दललुली), डरुं कनुदुरडुडु, रलडुकुरण कलडुल (अुरैरुडु), डरुं अडुणुडु डलणुडेडु (वलरणसुी), डरुं डुषुकर अननुदु (दुरडुंगल), डरुं शुरुीनलवलस डलशुरु (डुडुडुडुरडुर), डरुं तेडुडुरकलश कतुवेदी (कुरनलर), डरुं सुनील डलणुडेडु (केरल), डरुं सतुडुडुरकलश डलठक (हलडलकल) डरुं डुरदीडु डलशुरु, संदीडु डलदव (अरुडुडुगडु) सहलत 60 से अधलक शुरुतल उडुसुथलत रहे।

3.4 डुसुतक डुरलकुरुडु : 'हलकडुत-ऐ-इललही (ईशलवलसुुडुडुनलषदु)'

24/12/21 गुरुवलर सलरुडुकलल 7:00 डुडे सुथलडुनल-डुहुुतुसव के उडुलकुषु डें कल रहे शुुध-अनुसनुथलन, शुरैकुषुणलक ऐवं संसुकुतलक करुडुडुकरडुं के अननुतगुरत डुसुतक डुरलकुरुडु के करुडु डें ईरलन की डुरसलदुधु डुरलरतवेतुतल की डुसुतक 'हलकडुत-ऐ इललही' (ईशलवलसुुडुडुनलषदु की डुरलरसुी वुडुडुडुडु हलनुदी- उदुु अनुवलद सह) डुर डुरलकुरुडुडुडुडु वुडुडुडुडुन कल अरुडुडुन कुरलडु गडु। करुडुडुकर कल संडुडुन संसुथलन के संु सकलव (डुसुतकललडु) डरुं रलडेश सरकलर ऐवं संकललन डुरतलषुठलत संसुकुत-उदुु डुलषल ऐवं सलहलतुडुवलदु डरुं शुरेख अबुदुल गनी (तेलंगलनल) के दुरलर कुरलडु गडु।

करुडुडुकर कल अरुडुडु डलललनुदु डलशुरु और उदुडुन डलशुरु नलडुल दुु डललकुं के दुरलर ईशुडुनलषदु के डुनुडुडुडु से हुअल।

कार्यक्रम के संयोजक डॉ० सरकार ने मुख्य वक्ता डॉक्टर फ़रजाने आज़म लुत्फ़ी (आचार्य विदेशी भाषा एवं साहित्य विभाग तेहरान विश्वविद्यालय ईरान) का परिचय प्रस्तुत किया।

100 से अधिक प्राच्य-भाषा एवं विषयों के प्रेमी विद्वान् श्रोताओं की उपस्थिति में एक घंटे तक डा० लोत्फ़ी के द्वारा प्राचीन भारत-ईरान सम्बन्ध, अवेस्ता, प्राचीन फ़ारसी एवं वैदिक-संस्कृत की समानता के भाषावैज्ञानिक पहलू एवं स्वयं के द्वारा की गयी ईशोपनिषद् की फ़ारसी व्याख्या 'हिकमत-ए इलाही' पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। डा० लोत्फ़ी ने अपने सारगर्भित वक्तव्य के बीच ईरान में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के इतिहास एवं वर्तमान स्थिति पर भु तथ्यात्मक जानकारी दी। संस्कृत एवं उपनिषद् के महत्त्व को रेखांकित करते हुये डा० लोत्फ़ी ने बताया कि ईरान के प्रसिद्ध दार्शनिक अल्लामा तबातबाई ने कहा था कि एकेश्वरवाद की ज्योति उपनिषद् से निकली है। दाराशिकोह के उपनिषदों के अनुवाद एवं समुद्रसंगम की चर्चा करते हुए विद्वान् वक्ता ने ज़ोर डालते हुए कहा कि संस्कृत एवं फ़ारसी के तुलनात्मक अध्ययन के दृष्टिकोण से बहुत से शोध-परक कार्य किये जाने की आवश्यकता है।

ईशावास्योपनिषद् के अपने अनुवाद 'हिकमत-ए इलाही' से अनेक मन्त्रों को उद्धृत करते हुये उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला। संस्कृत मन्त्र, दाराशिकोह, रूमी, अत्तार के शेअर और कुरान, नहजुल बलागा आदि को उद्धृत करते हुये उन्होंने दोनों धर्मों की समानता पर भी प्रकाश डाला। पुस्तक परिचर्चा के उपरान्त प्रश्नप्रहर के अन्तर्गत श्रोतागण ने विविध तथ्य परक प्रश्नों द्वारा अपनी जिज्ञासा शान्त की। कार्यक्रम के अन्त में फ़ारसी भाषा और साहित्य के अन्ताराष्ट्रीय विद्वान् प्रो० सैयद हसन अब्बास (बी०एच०यू०) ने सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करते हुए ऐसे कार्यक्रमों की आवश्यकता पर संस्थान का ध्यान आकृष्ट किया।

कार्यक्रम की समाप्ति पर संस्थान के सचिव ने सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया। डॉ० शम्भू तिवारी एवं डॉ० विमलेन्दु त्रिपाठी (सं० सचिव, प्रबन्धीति) का तकनीकी और अकादमिक सहयोग रहा। आज के इस अन्ताराष्ट्रीय कार्यक्रम में प्रो० सदाशिवकुमार द्विवेदी, प्रो० याकूब यावर, डॉ० शिल्पा सिंह, डॉ० एहसान हसन, डॉ० फ़िरोज खान, डॉ० प्रीति वर्मा, डॉ० अपर्णा पाण्डेय, डॉ० महेश प्रसाद राय, डॉ० प्रदीप मिश्र (वाराणसी), प्रो० कृष्णमोहन, प्रो० राजेन्द्र कुमार, डॉ० महज़र (दिल्ली), डॉ० अरुण आचार्य, डॉ० लाला शंकर गयावाल (राजस्थान), डॉ० अनन्तमणि त्रिपाठी (देहरादून), डॉ० माधवदत्त पाण्डेय (मुंबई), रायचरण कामल (औरैया), डॉ० पुष्कर आनन्द (बिहार), डॉ० तेजप्रकाश चतुर्वेदी (चुनार), डॉ० रामप्रताप मिश्र (मऊ), डॉ० प्रवीण मिश्र (मुरादाबाद), संदीप यादव (आज़मगढ़), सन्दीप शर्मा (फ़िरोज़ाबाद) आदि के साथ भारी संख्या में शोधार्थी उपस्थित रहे।

3.5 आचार्य-वायुनन्दन-पाण्डेय : व्यक्तित्व, कर्तृत्व, साहित्यशास्त्र-अध्यापन-प्रविधि

आचार्य-परम्परा-स्मृति परक कार्यक्रमों के मध्य दिनांक 25.12.2021 को 'आचार्य-नन्दनपाण्डेय-स्मृति-सन्ध्या' का आयोजन किया गया, जिसमें आचार्य-श्री के व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं साहित्यशास्त्र-अध्यापन-प्रविधि परक परिचर्चा सम्पन्न हुई। इस कार्यक्रम का उद्देश्य काशी की विद्वत्परम्परा और आचार्य-परम्परा का स्मरण और उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व-स्मरण द्वारा वर्तमान पीढ़ी

कु उनके अवदरनरु से डररररत करररनर थर । डडर सुडुड-डुडुड के सरथ डुररकलुडत और आडडऑडत इस करुडकरड करर सुडुडऑन सुसुथरन के शुरुध-वलडरग द्दरर कररर डुडर ।

करुडकरड डुड आकरुडर-शुरी के दुु सररररत शलषुडुड डरु शरदलनुदुकुडरर तुरलडरठी (उडरकरुडर, सुसुकृत, कलर-संकुरर करर हलं वलं वलं) तथर डरु डनडुहुन तलवररी (उडरकरुडर, सुसुकृत, डुरुं ररकेनुदुर सुलं ह 'रकुडु डुडर' वलशुववलदुडरलड, इलरहरडरड) कु ररररकर के रुर डुड आहुत कररर डुडर । ररररकरुडरु ने अडने वलवलध सुसुडरगुुं की सहररतु से आकरुडर ऑी के वुडकुतलु एवं कुरुतुव डुर डुरकरश डरलर ।

डरु तुरलडरठी के वकुतुवु करर केनुदुरी वलषुड वरडुडुडऑी के वुडकुतलु, शलषुडुडु से उनके आतुडुी वडुडनुध, कुरुतुव, उनकी सुसुकृत-कवलतरुं, कररु वरदुड आदल थर । उनुहुने डतररर करर कलस डुरकर डरडुडुडऑी सुडुडुडरनुनदु सुं वलं वलं डर सरहलतु-वलडरग, सुं वलं धं वलं सुं, करर हलं वलं वलं की ककुशरुं सुडरर कर अडने आवरस डुर डुरतीकुशरत शलषुडुडु कु सरहलतुशरसुतुर करर डुरर दलडर करते थे । डुररत: से लेकर ररतुर के आठ और कडुी-कडुी नुु डुडे अनवरत कररुवुशरसुतुर करर अधुडरडन उनकर दुडनलक कुरुं और कुरुतुवु थर ।

डरु तलवररी के वकुतुवु करर केनुदुरी वलषुड आकरुडरऑी की अधुडरडन शुडुी थुी । तलवररीऑी ने 'धुवनल-सुथरडनर और सुलदुधल' डुरक डडुडत (कररुवुडुरकरश) की सुथरडनर के वलरुधुी डुीडरंसकुुं के खडुडन डुड आकरुडर डरडुडुड ऑी की अधुडरडनशुडुी करर उलुलेख डुडे वलसुतर डुड कररर ऑु कल अवशुडु शुरुतवुवु हुी । इस एक डुरसंग से हल डरडुडुडऑी की सरहलतुशरसुतुर-अधुडरडन शुडुी करर उदरहरण डुररत कररर ऑु सरकतर हुी । डुड सुडुुकर वकुतुवु सुसुथरन के डुडसडुकु-डुडऑु डुर ऑुन-लरडुन हुी, डुररक अवशुडु सुनुं ।

दुश के सुदुूर डुररनुतुं से ऑुडे 50 से अधलक वलदुडरनु शुरुतरऑुं से गुरुवरनुवलत इस करुडकरड करर सुंकरलन डरुं कंकन तलवररी (सहररक आकरुडर, उतुतरखडुड सुसुकृत-वलशुववलदुडरलड) एवं धनुडुवरद-ऑुडरडन सुसुथरन के सकरल ने कररर ।

3.6 शरहऑुडरद: दरर शुकुहु सरररक वुडरखुडरन

27.12.2021 कु डुगल शरहऑुडरद: दरर-शुकुहु की सुडुतल डुड 'सुसुकृत-कुलरसलक के डुररसुी अनुवरद' शुरुषक से एक वुडरखुडरन करर आडुऑन कररर डुडर । वुडरखुडरतर थे डुरररसुी-दुनलडर के वलशुरुत आकरुडर डुरुं सडुडद हसन अबुडरस (डुरुवु-नलदुशक, रऑु लरडुडुरी, ररडुडुर तथर वरुतुडरन वलडरगरधुडकुश, डुरररसुी, डुींएकडुुडुु) ।

दुश के तडरड हलसुुं से ऑुडे लगडुग 90 सुसुकृत-हलनुदुी-डुरररसुी तथर उरुु वलदुडरनुं की उडसुथलतल डुड डुरुं अबुडरस ने सुसुकृत तथर डुरररसुी डुररषरऑुं और इनके सरहलतु के डुीक अनुत:सडुडनुधुं कु दलखरते हुए कहर करर सुसुकृत-कुलरसलकुस के डुरररसुी अनुवरद की डुरडुडरर अबुडरसुी खलुीडुररऑुं के दुरु डुड शुरु हुडुी । खलुीडुरर हररुनु रशीद और खलुीडुरर अलु-डरडुनु के दुरु डुड वलऑुन, गडुनलत तथर आडुुवरुद की सुैकडुुं सुसुकृत कलतररुं करर अरडुी, डुरहलवुी और इससे डुरल डुरररसुी अनुवरद कलए गए । लुदुी-वुंश डुड डुरीरुऑु तुगलकुर ने नरगरकुऑु के ऑुवलरडुखुी डनुदुर से डुररत कुतुडखुडरने कु न केवल सुरकुशलत सुंरकुशलत कलडर डलकुल इस डुरसुतकलरडु की सुी से अधलक सुसुकृत-कुलरसलकु कल डुरररसुी अनुवरद डुी कररर । इनडुडु 'तुतीनरडर' (शुकसडुतल) और 'अडुत-कुणुड' करर डुरररसुी-अनुवरद दुनलडर डुर डुड डुशहर हुी । अकडुर ने तुु सरडुररऑु की

ओर से मुकम्मल 'दारुल् तर्जुमा' ही स्थापित किया जिसमें अनूदित फ़ारसी किताबों ने आज दुनिया भर को हैरत में डाल रक्खा है।

व्याख्यान सहायक डॉ० अब्दुल गनी ने दकन में हुए संस्कृत-ग्रन्थों के फ़ारसी-अनुवाद पर विस्तार से चर्चा की और आसफ़ज़ाई वंश की कुछेक ख़िदमात पर भी रोशनी डाली। भागवत के फ़ारसी और अवधी अनुवाद से कुछ नमूने पेश किए।

लगभग दो घंटे चले इस व्याख्यान में भारतीय इतिहास के विश्व-विश्रुत आचार्य प्रो० हरबंस मुखिया साहब की सतत उपस्थिति रही। अपने व्याख्यान की समाप्ति पर स्वयं प्रो० अब्बास ने माननीय मुखिया साहब से सभा को सम्बोधित करने और विषयवस्तु को श्रोताओं पर और प्रकट करने की प्रार्थना की। प्रो० अब्बास के निवेदन पर भारतीय इतिहास के वयोवृद्ध आचार्य; प्रो० मुखिया ने दस मिनट के अपने सारगर्भित वक्तव्य में संस्कृत से फ़ारसी-अनुवादों की प्रकृति और अनुवाद कराने वाले बादशाहों के प्रयोजन पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला। प्रो० मुखिया ने कहा कि- "मुगलों का अनुवाद-प्रयोजन 'समाज-संयोजन' 'रियाया को साथ ले कर शासन' से था। रियाया के बड़े हिस्से का धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला, संगीत आदि को समझने और इस समझ के आधार पर मुख्तलिफ़ क्रौमों को साथ लेकर चलना और राष्ट्र को गति देना इन अनुवादों का प्रयोजन था।"

आज के कार्यक्रम में प्रो० अराफ़त ख़ान, डॉ० चन्द्रगुप्त भारतीय (दिल्ली), डॉ० गजानन ज्योतकर, डॉ० रुद्राक्ष साक्रीकर (मुंबई), जीनत कैफ़ी, एस० अब्बास हसन आदि की विशिष्ट उपस्थिति रही। कार्यक्रम का संचालन डॉ० राजेश सरकार (सं० सचिव, पुस्तकालय, प्रबन्धीर्ति), संयोजन डॉ० विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी (सं० सचिव, शोध, प्रबन्धीर्ति) एवं धन्यवाद-ज्ञापन डॉ० प्रताप मिश्र ने किया।

3.7 आचार्य-जगन्नाथ पाठक स्मारक 'पुस्तक-लोकार्पण-सन्ध्या'

दिनांक 28.12.2021 को विश्रुत संस्कृत-आचार्य, कवि एवं अनुवादक प्रो० जगन्नाथपाठक की स्मृति में संस्थान द्वारा प्रकाशित वटेश्वरनाथः का लोकार्पण किया गया। यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य के स्वनामधन्य साहित्यकार नागार्जुन के हिन्दी-उपन्यास बटेश्वरनाथ का संस्कृत अनुवाद था। मिथिला के पारम्परिक संस्कृत-सेवी और आचार्य डॉ० हृषीकेश झा जी ने संस्कृत-भारती के प्रमुख आचार्य चमूकृष्ण शास्त्री के निर्देश पर इसका संस्कृत अनुवाद किया था। इस ग्रन्थ के सम्पादक डॉ० राघव कुमार झा भी पारम्परिक संस्कृत के युवा विद्वान् हैं।

ग्रन्थ का लोकार्पण संस्कृत के विश्रुत आचार्य प्रो०-गोपबन्धु मिश्र (पूर्व-कुलपति, सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, गुजरात) तथा आचार्य वाचस्पति मिश्र (अध्यक्ष; उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ) के हाथों ऑन-लाइन उपर्युक्त कार्यक्रम में सम्पन्न हुआ। प्रारम्भ में ग्रन्थ के सम्पादक डॉ० राघव कुमार झा ने इस ग्रन्थ के हिन्दी-संस्करण का परिचय देते हुए मूल उपन्यास की महत्ता, उपयोगिता और इसके संस्कृत में अनुवाद की आवश्यकता आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसके बाद संस्कृत-अनुवादक डॉ० हृषीकेश झा ने स्वानुभूत अनुवाद-प्रविधि, समस्याएँ समाधान, अनुवादकर्म आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार रखे। लोकार्पक विद्वान् प्रो० गोपबन्धु मिश्र ने संस्कृत-अनुवाद की गुणवत्ता और उपादेयता को चिह्नित करते हुए वटेश्वरनाथः के कई प्रसंगों को उद्धृत किया। इन प्रसंगों में अनुवादक की

की हिदायत आदि संस्मरण सुनाए। सम्पादक ने फ़िराक़ के संस्करण को अधूरा हिन्दी-अनुवाद बताते हुए स्वयं द्वारा इसके लगभग 200 से अधिक कठिन अरबी, फ़ारसी शब्दों तथा दर्जनों फ़ारसी-अरबी सूक्तियों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का हिन्दी अनुवाद दे इस पूरा करने की सूचना भी दी।

लोकार्पक प्रो० नसीम अहमद साहब ने फ़िराक़ के व्यक्तित्व के समानान्तर इस कृति का उल्लेख करते हुए कहा कि फ़िराक़ उन उर्दू-अदीबों में से थे जिन्होंने उर्दू की बेहतरीन चीज़ों को हिन्दी पढ़ने वालों के लिए मुहैया कराया। प्रो० अहमन ने साफ़ शब्दों में कहा कि फ़िराक़ की इस कृति से आज तक उर्दू दुनिया अनजान थी, आपने (प्रलकीर्ति) ने इसे प्रकाशित करा कर उर्दू वालों पर जो अहसान किया है उसकी तारीफ़ नहीं की जा सकती।

प्रो० अवधेश प्रधान ने इस संस्करण के प्रकाशन पर संस्थान और सम्पादक को बधाई देते हुए फ़िराक़ के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर चर्चा की। हिन्दी-साहित्य में ऐसे गौरव-ग्रन्थों; वह भी ऐसे विश्रुत उर्दू-साहित्यकारों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की उपलब्धता से हिन्दी को परिपूर्ण बताते हुए उन्होंने इस प्रकाशन को उल्लेखनीय घटना बताया।

लोकार्पण की इस संध्या में देश के कोने-कोने से 70 से अधिक उर्दू, फ़ारसी, हिन्दी, संस्कृत तथा इतिहास के विद्वान् श्रोता उपस्थित रहे। कार्यक्रम में विशिष्ट उपस्थिति द्वारा प्रो० हरीश त्रिवेदी (अंग्रेज़ी-भाषा एवं साहित्य के विश्वविश्रुत ज्ञाता, समीक्षक, लेखक, साहित्य-अकादमी-सदस्य, नई-दिल्ली), प्रो० सैयद हसन अब्बास (विभागाध्यक्ष, फ़ारसी, का० हि० वि० वि०), प्रो० याक़ूब यावर (विभागाध्यक्ष, उर्दू, का० हि० वि० वि०) एवं दिल्ली-विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़-मुस्लिम-यूनिवर्सिटी के उर्दू-विभागों के प्रोफेसर्स ने इस लोकार्पण-सन्ध्या को गौरवान्वित किया।

इस अपूर्व कार्यक्रम का संयोजन संस्थान के प्रकाशन-विभाग की ओर से संयुक्त-सचिव डॉ० प्रदीप कुमार मिश्र ने किया और संचालन उर्दू-भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ युवा-विद्वान् डॉ० आगा ज़फ़र हसैन (एसो० प्रोफेसर, उर्दू, राँची विश्वविद्यालय, राँची) ने। धन्यवाद-ज्ञापन संस्थान के अध्यक्ष डॉ० ज्ञानप्रकाश त्रिपाठी द्वारा किया गया।

3.9 प्रलकीर्ति-स्थापना-महोत्सव-सम्पूर्ति-सत्र

दिनांक 31.12.2021 को 'स्थापना-महोत्सव' की सम्पूर्ति परक यह कार्यक्रम साधारण-सभा के 'वार्षिक अधिवेशन' की तरह मनाया गया जिसमें संस्थान के शोध-विभाग के 'परामर्श-मण्डल' के सदस्यों क्रमशः 'संस्कृत-प्राकृत-विद्या एवं विषयों हेतु निर्दिष्ट आचार्य' प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी (भोपाल, म० प्र०), 'मध्यकालीन भारतीय इतिहास हेतु निर्दिष्ट आचार्य' प्रो० इशरत आलम (अलीगढ़, उ० प्र०), 'फ़ारसी, अरबी, उर्दू भाषा हेतु निर्दिष्ट आचार्य' प्रो० सैयद हसन अब्बास (वाराणसी, उ० प्र०), तथा शिक्षा एवं प्रसार-विभाग में 'परामर्शक-मण्डल' के सदस्य प्रो० कामेश्वर शुक्ल (गुवाहाटी, असम) एवं प्रो० सन्तोष कुमार शुक्ल (नई दिल्ली) की उपस्थिति में संस्थान के समस्त विभागों ने वर्ष भर में अपनी उपलब्धियों का विवरण साधारण-सभा के समक्ष प्रस्तुत किया।

जूम-पटल पर प्रवर्तित इस कार्यक्रम में संस्थान की साधारण-सभा सदस्यों के अतिरिक्त देश के कई प्रान्तों से प्राच्यविद्या-प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी उपस्थित रहे।

वर्ष भर की उपलब्धियों का विवरण प्राप्त कर परामर्शक-मण्डल के सदस्यों में प्रो० सन्तोषकुमार शुक्ल ने संस्थान के क्रियाकलापों के समानान्तर स्वर्गीय पण्डित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री के उन स्वप्नों का स्मरण कराया जिन्हें वह इस संस्थान की स्थापना का नींव बतला गए थे। प्रो० कामेश्वर शुक्ल ने प्रबन्ध-समिति और विशेषतः शोध-विभाग को सलाह दी कि संस्थान वैज्ञानिक संस्कृत-साहित्य पर शोध एवं अनुसन्धान की धारा भी प्रवर्तित करे और तत्सम्बन्धी कार्य भी प्रारम्भ करे। संस्थान में सुरक्षित हस्तलिखित-ग्रन्थों की सूची बनाने और इसे प्रकाशित करने की सलाह देते हुए प्रो० शुक्ल ने आश्चर्य व्यक्त किया कि संस्थान के पास ऐसी धरोहर संरक्षित है।

शोध-विभाग के परामर्श-सदस्यों में प्रो० सैयद हसन अब्बास ने संस्कृत-फ़ारसी के भाषिक और साहित्यिक अन्तः-सम्बन्धों, तुलनात्मक अध्ययन परक कार्य हेतु संस्थान का ध्यान आकृष्ट किया। आपने 'संस्कृत-साहित्य को मुस्लिमों का योगदान' शीर्षक परियोजना के अन्यान्य खण्डों पर कार्य करने, इन्हें पूरा कर प्रकाशित करने की सलाह दी। प्रो० अब्बास ने संस्थान द्वारा प्रवर्तित स्मृति-व्याख्यान माला के अन्तर्गत 'मुंशी नवल किशोर' से सम्बन्धित व्याख्यान कराए जाने की भी सलाह दी। संस्कृत से उर्दू और उर्दू से संस्कृत-अनुवाद प्रकाशित करने सम्बन्धी संस्थान की परियोजना की प्रशंसा करते हुए प्रो० अब्बास ने कहा कि ऐसे कार्यों से संस्थान 'मील का पत्थर' क्राइम कर रहा है, जिसकी आज के भारत में नितान्त आवश्यकता है। प्रो० अब्बास की इस टिप्पणी का संज्ञान लेते हुए कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी ने कहा कि- 'आज के भारत में, आज के वातावरण में युवकों; वर्तमान पीढ़ी की जानकारी के लिए, वास्तविक भारतीय इतिहास और संस्कृति से आज की युवा पीढ़ी को परिचित कराने के लिए ऐसे (संस्थान की परियोजनाओं के अन्तर्गत प्रवर्तित कार्य) नितान्त आवश्यक हैं। इनकी सही और प्रामाणिक जानकारी न होने के कारण आज की युवा पीढ़ी में ज़हर घोला जा रहा है।' आदि....

कार्यक्रम का संचालन डॉ० शरदिन्दुकुमार त्रिपाठी (वाराणसी) तथा धन्यवाद-ज्ञापन संस्थान के अध्यक्ष डॉ० ज्ञानप्रकाश त्रिपाठी द्वारा किया गया। डॉ० शम्भु त्रिपाठी द्वारा संस्थान के निम्नलिखित कुलगीत द्वारा कार्यक्रम की समाप्ति हुई-

भारतीयैकतासाधकं संस्कृतम्
 भारतीयत्वसम्पादकं संस्कृतम् ।
 ज्ञानपुञ्जप्रभादर्शकं संस्कृतम्
 सर्वदानन्दसन्दोहदं संस्कृतम् ॥
 नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे विलसतु संस्कृतवाणी,
 सद्ने सद्ने जन-जन-वदने जयतु चिरं कल्याणी ।
 सत्यशीलसौन्दर्यसमीरा ज्ञानजलागतिसारा
 छल-छल कल-कल प्रवहतु दिशि दिशि पावनसंस्कृतधारा ॥

उल्लेखनीय है कि कार्यक्रमों की महत्ता, सार्वभौम उपयोगिता आदि को ध्यान में रख संस्थान ने इन सभी कार्यक्रमों को रिकार्ड किया है और उपर्युक्त सभी कार्यक्रमों को पाठक संस्थान (प्रबन्धीर्ति) के फ़ेसबुक आभासिक-पटल पर साक्षात् देख-सुन सकते हैं। धन्यवाद।